ZO-01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

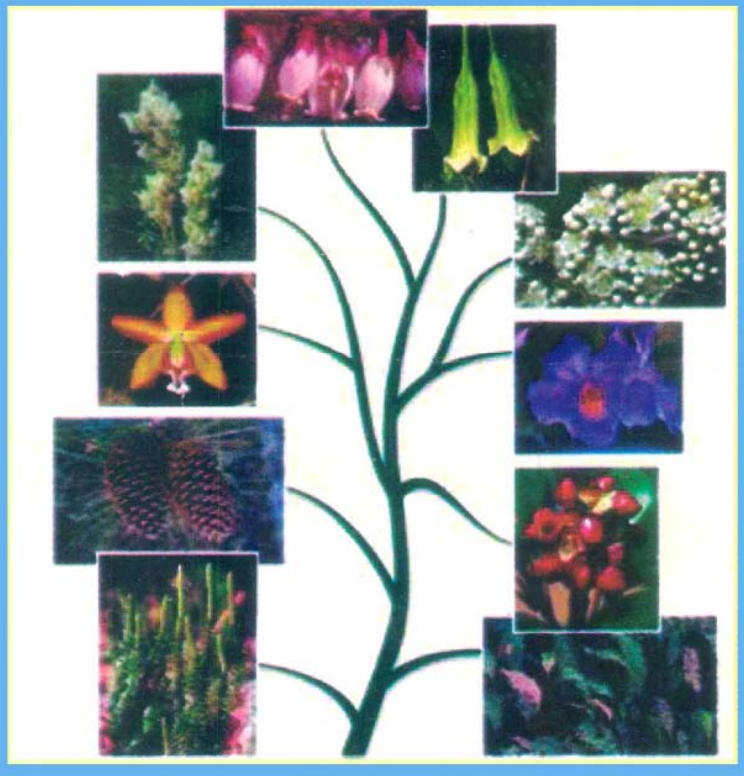

प्राणी विविधता तथा उद्विकास

प्राणी -- विविधता तथा उद्विकास

इकाई सं.	इकाई	पृष्ठ सं.
1.	प्राणी -भौगोलिक वितरण, विश्व के प्रमुख प्राणी भौगोलिक क्षेत्र विशेषत: स्तनी प्राणिजात के संदर्भ में(Zoogeographical distribution; principal zoogeographical regions of the world with special reference to their mammalian fauna)	6–13
2.	राजस्थान तथा भारत की प्राणिजात विविधता (Biodiversity of Animals of Rajasthan and India)	14–22
3.	जीवन एवं वातावरण के आधार पर अनुकूलन (Adaptations on the Basis of Mode of Life and Environment)	23–34
4.	जीव संरक्षण तथा प्रबंधीकरण (Bio-conservation and Management)	35–53
5.	महाद्वीपीय विस्थापन (Continental Drift)	54–63
6.	वर्गिकी के सामान्य सिद्धांत एवं पंच जगत संकल्पना (General Principles of Taxonomy and Concept of Five-Kingdom Scheme)	64–70
7.	प्रोटोजोआ तथा मेटाजोआ की संकल्पना एवं संगठन के स्तर (Concept of Protozoa and Metazoa and Level of organization)	71–77
8.	नान कार्ड़ेटा तथा कार्डेटा की वर्गिकी एवं वर्गीकरण का आधार (Basis of Classification, and Taxonomy of Non-Chordata and Chordata)	78–89
9.	नॉन कार्डेटस प्रारूपों का विस्तृत वर्गीकरण,स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्या लक्षण(Detailed Classification, Habits,Habital and External Characters of Non- Chordates Type)	90–134
10.	कार्डेटस प्रारूपों का विस्तृत वर्गीकरण,स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्या लक्षण(Detailed Classification, Habits,Habital and External Characters of Chordates Type)	135–176
11.	जीवन की उत्पत्ति व उद्विकासीय धारणाओं का इतिहास (Origin of Life and History of Evolutionary Thought)	177–193
12.	प्राकृतिक वरण, उद्विकास का आनुवांशिक आधार व जाति उद्भवन (Natural Selection, Genetic Basis of Evolution and Speciation)	194–203
13.	जैविक उद्विकास के प्रमाण (Evidences of Organic Evolution)	204–221
14.	विभिन्नताएँ, पार्थक्य, अनुकूलन (Variation, Isolation, Adaptations)	222–237
15.	जीवाश्मीकी (अवशेष विज्ञान), जीवाश्म, पृथ्वी का भूवैज्ञानिक विभाजन, भूअभिलेखों की अपूर्णता	238–253
16.	विलुप्त जीवों का अध्ययन : डाइनोसोर्स, आर्कियोप्टेरिक्स	254–267

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रोफेसर(डॉ) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान कोटा खुला विश्वविद्यालय,कोटा

विषय समन्वयक

प्रो.ए.एल.भाटिया
प्राणि-शास्त्र विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सदस्य सचिव/ समन्वयक

डॉ. अशोक शर्मा
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रो.डी.के.भट्ट**
   पूर्व विभागाध्यक्ष, प्राणि-शास्त्र विभाग
   एम.एल.सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
2. **प्रो.ओ.पी. अग्रवाल**
   विभागाध्यक्ष, प्राणि-शास्त्र विभाग
   जीवजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर(म.प्र.)
3. **प्रो. प्रदीप भटनागर**
   पूर्व विभागाध्यक्ष, प्राणि-शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **डॉ. अजय शर्मा**
   विभागाध्यक्ष, प्राणि-शास्त्र विभाग
   राजर्षि शासकीय महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)
5. **डॉ. मदन लौरी**
   प्राणि शास्त्र-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
6. **डॉ.एस.सी. जोशी**
   प्राणि-शास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
7. **डॉ. प्रीति गुप्ता**
   प्राणि शास्त्र विभाग, वैदिक कन्या महाविद्यालय, जयपुर
8. **डॉ. एस तायल**
   प्राणि-शास्त्र विभाग, अग्रवाल महाविद्यालय, जयपुर

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

प्रो.ए.एल. भाटिया
प्राणि-शास्त्र विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

लेखक

1. **ममता लौरी**
   प्राणि-शास्त्र विभाग
   महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड साइन्सेज, जयपुर
2. **डॉ.के.एस. कोहली**
   सेवनिवृत एशोसियेट प्रोफेसर
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
3. **डॉ. मदन लौरी**
   प्राणि शास्त्र-विभाग,
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **डॉ.आर.एस.गुप्ता**
   प्राणि-शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

पाठ्यक्रम निर्देशन एवं उत्पादन

निदेशक (अकादमिक)

प्रोफेसर (डॉ.) अनाम जेटली
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

निदेशक (सामग्री उत्पादन एवं वितरण)

प्रोफेसर (डॉ.) पी.के. शर्मा
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सर्वाधिक सुरक्षित: इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं हैं।
निदेशक (अकादमिक) द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित।

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक " **प्राणि-विविधता एवं उद्विकस**" वर्धमान महावीर खुलाविश्वविद्यालय, कोटा द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रमानुसार बी एससी. भाग प्रथम के प्राणि-शस्त्र प्रथम प्रश्न-पत्र के अध्ययन हेतु सृजित की गई हैं। पुस्तक की भाषा शैली को सरल, रोचक एवं सुग्रह्य बनाने का अथक प्रयास किया गया हैं। आवश्यकतानुसार समानार्थी अंग्रेजी शब्द,फ्लोटचार्ट, नामांकित चित्र एवं सारणियाँ भी दी गई हैं। पुस्तक की विभिन्न इकाईयों कोविद्वान लेखको द्वारा लिखा गया हैं। लेखकों ने पुस्तक को तथ्यपरक बनाने के लिए प्रमाणिक ग्रन्थो की सहायता प्राप्त की हैं, इन रचयिताओं के लिए कृतज्ञतापन इन पंक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत हैं। यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु भी सही मार्गदर्शन प्रदान करने में सहायक होगी

पुस्तक को अधिक उपयोगी एवं प्रामाणिक बनाने हेतु प्रबुद्ध पाठकों एवं जागरूक विद्यार्थियों के रचनात्मक सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

इकाई 1: प्राणि-भौगोलिक वितरण, विश्व के प्रमुख प्राणि-भौगोलिक क्षेत्र विशेषत : स्तनी प्राणिजात के संदर्भ में (Zoogeographical Distrubution; Principal Zoogeographical Regions of the World with Special Reference to Their Mammalian Fauna)

इकाई की रूपरेखा (Outline of Unit)

1.0 उद्देश्य (Objectives)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

1.2 प्राणि-भौगोलिक क्षेत्र (Zoo-geographical Regions)

1.3 इतिहास (History)

- 1.3.1 पैलीआर्कटिक क्षेत्र (Palaearctic Region)
- 1.3.2 इथोपियन क्षेत्र (Ethopian Region)
- 1.3.3 ओरिएन्टल क्षेत्र (Oriental Region)
- 1.3.4 आस्ट्रेलियन क्षेत्र (Australian Region)
- 1.3.5 निओट्रॉपिकल क्षेत्र (Neo-tropical Region)
- 1.3.6 निआर्कटिक क्षेत्र (Nearctic Region)

1.4 सारांश (Summary)

1.5 शब्दावली (Glossary)

1.6 संदर्भ ग्रन्थ (Further Readings)

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to Self-assessment Questions)

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1.0 उद्देश्य (Objectives)

प्राणि- शास्त्र पुस्तक के इस अध्याय में हमने प्राणियों की विविधता, उनका भौगोलिक क्षेत्र, उनकी अनुकूलताओ के बारे में चर्चा की है। यह इकाई पढ़ने के बाद आप :

- कई प्रकार के भौगोलिक क्षेत्रों को जान जायेंगे।
- भारत में पायी जाने वाली कई प्रजातियों को पहचान पायेंगे।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस खण्ड में प्राणियों की विविधता के बारे में बताया गया है। विभिन्न प्राणियों से सम्बन्धित उनके भौगोलिक क्षेत्र, राजस्थान व भारत में पायी जाने वाली विभिन्न प्रजातियाँ, उनकी

अनुमानित संख्या के बारे में भी आप इस खण्ड में अध्ययन करेंगे। प्राणियों के जीवन एवं उनके वातावरण से संबन्धित अनुकूलताओं के बारे में भी इस खण्ड से आप जानकारी लेंगे।

1.2 प्राणि - भौगोलिक वितरण (Zoo-geographical Regions)

प्रत्येक देश की कुछ अपनी विशेष प्राणि- जातियाँ होती है। कुछ ऐसी जातियाँ भी होती है जो अन्य स्थानों पर भी पायी जाती है। पहले ऐसा सोचा जाता था कि किसी खास क्षेत्र के प्राणि समूह का वितरण वहाँ की जलवायु एवं भौतिक विशेषताओं पर आधारित होता है। परन्तु दो देशों की समान जलवायु एवं भौतिक अवस्थाओं के समान होते हुए भी उनक प्राणि- समूह की भिन्नता को स्पष्ट नहीं करता। उदाहरण के लिये, ब्राजील एवं पश्चिमी अफ्रीका दोनों देश की जलवायुगत अवस्थाएँ अत्यधिक समान हैं, फिर भी इनके प्राणि- समूह एक -दूसरे से सर्वथा भिन्न है।

इसके विपरीत कई देशों की जलवायु में असमानता होते हुए भी उनमें पायी जाने वाली प्राणि- जातियाँ समान होती है। उदाहरणार्थ, चीता भारत के ऊष्णकटिबन्धीय जंगलों से लेकर अलताई की पहाड़ियों एव मंचूरिया के शीत मैदानी भागों तक में पाया जाता है।

सम्पूर्ण पृथ्वी के वातावरण में असंख्य जीवधारी निवास करते हैं तथा उनका वितरण सम्पूर्ण पृथ्वी पर असमान होता है। प्रत्येक सजीव जाति का एक निश्चित क्षेत्र होता है और वे उस क्षेत्र में पाये जाते हैं, जिनमें उनकी जाति आबादी की सम्पूर्ण आवश्यकताएँ होती है। पृथ्वी पर प्राणियों के वितरण के अध्ययन को **प्राणि- भूगोल** (Zoo-geography) कहते हैं। दो अंग्रेज प्रकृति वैज्ञानिक **फिलिप एल. स्क्लैटर** (1829 - 1913) **एवं एल्फ्रेड रसेल वैलेस** (1823 - 1913) को जन्तु भूगोल का जन्मदाता कहा जाता है।

1.3 इतिहास (History)

विभिन्न प्रकार के प्राणि - समूहों के आधार पर पृथ्वी को कई क्षेत्रों या परिक्षेत्रों मे विभाजित करने के अनेक प्रयास किये गये हैं। पैसेरिन या पाक्षपाद पक्षियों को आधार मानकर डॉ. पी. एल. स्क्लैटर (1857) ने सम्पूर्ण पृथ्वी को छ : विशाल क्षेत्रों में विभाजित किया है। ये क्षेत्र हैं -

1. पैली - आर्कटिक क्षेत्र (Palaearctic Region)
2. इथोपियन क्षेत्र (Ethopian Region)
3. ओरिएन्टल क्षेत्र (Oriental Region)
4. आस्ट्रेलियन क्षेत्र (Australian Region)
5. निओट्रॉपिकल क्षेत्र (Neo-tropical Region)
6. निआर्कटिक क्षेत्र (Nearctic Region)

1.3.1 पैलीआर्कटिक क्षेत्र (Palaearctic Region)

यह क्षेत्र सबसे बड़ा है। इसके अन्तर्गत 14, 00, 000 मील का क्षेत्र आता है। इसमें सम्पूर्ण **यूरोप, एजोरस, मडेइरा, कैनेरी द्वीप** एवं **कर्क-रेखा** के उत्तर का **अफ्रीका** एव **अरेबिया** का समस्त हिस्सा, **एशिया महाद्वीप** तथा **ब्रिटेन द्वीप** और **जापान** सम्मिलित है।

ऊष्णता की सीमा में अधिक अन्तर, वर्षा में विविधता तथा धरातल में अधिक असमानता इस क्षेत्र के विशेष लक्षण हैं। पैलीआर्कटिक क्षेत्र में प्राणि - समूह की प्रचुरता अधिक गर्म तथा उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में है। पैलीआर्कटीक के पर्वतीय एवं सूखे क्षेत्र में प्राणि- समूह अत्यधिक न्यून मात्रा में

पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में स्थलीय पृष्ठवंशीय प्राणियों के 135 कुलों के प्रतिनिधि विद्यमान है। उनमें से 33 कुल स्तनधारी प्राणियों के, 68 पक्षियों के, 24 सरीसृपों के तथा 10 उभयचर प्राणियों के हैं।

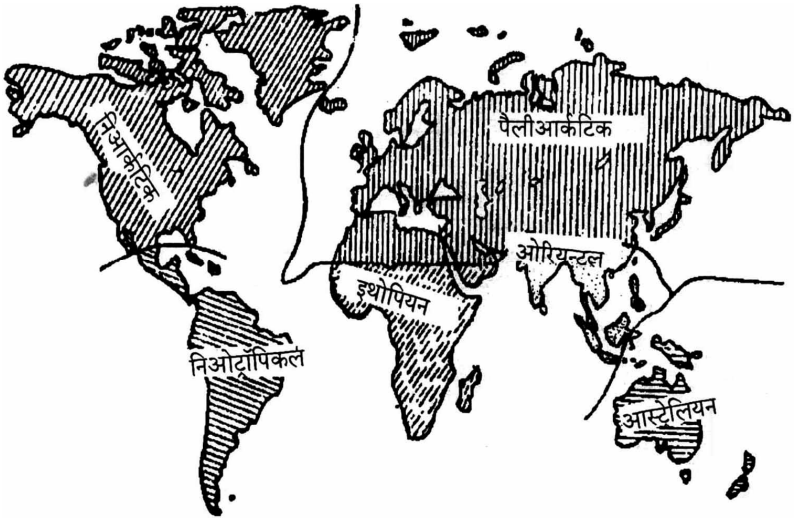

चित्र 1.1 पृथ्वी के प्राणि- भौगोलिक परिमण्डल

पैलीआर्कटिक क्षेत्र के मृदु जल (fresh water) मैं पाये जाने वाली जातियों में मुख्यत: **साइप्रिनाइड** मछलियाँ प्रमुख हैं। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले उभयचर प्राणी विशेषतया **सेलेमेण्डर, पीलोबेटेड,बूफा, हाइला राना** तथा कुछ **रेकोफोरस** हैं। **कछुआ, वाइपर, पिट वाइ**पर इत्यादि सरीसृप पाये जाते हैं। पैलीआर्कटिक में पाये जाने वाले पक्षी **हॉक्स, सारस, कुक्कू, किंगफिशर, वुडपैक**र इत्यादि हैं।

पैलीआर्कटिक क्षेत्र को चार उपक्षेत्रों में विभाजित किया गया है

(A) यूरोपियन उपक्षेत्र

(B) मैडीटेरेनियन उपक्षेत्र

(C) साइबेरियन उपक्षेत्र

(D) मंचूरियन उपक्षेत्र

1.3.2 इथोपियन क्षेत्र (Ethopian Region)

इस क्षेत्र में कर्क रेखा के दक्षिण का सम्पूर्ण अफ्रीका और अरेबिया, मेडागास्कर द्वीप तथा उसके निकटवर्ती द्वीप सम्मिलित हैं। पैलीआर्कटिक जीवन सम्बन्धी परिस्थितियों में अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा काफी अधिक स्थिरता रहती है। इस क्षेत्र के उत्तर में सहारा का मरूस्थल हैं, जो संसार का सबसे बड़ा मरुस्थल है। यह पैलीआर्कटिक और इथोपियन क्षेत्रों के बीच रोधक का कार्य करता है। इस क्षेत्र के दक्षिण में अत्यधिक उष्णकटिबन्धीय वन स्थित हैं।

इस क्षेत्र की यह विशेषता है कि इसमें बहुत कुछ ऐसे प्राणी है जो अन्यत्र और किसी क्षेत्र में नहीं पाये जाते, जैसे **चिम्पैंजी, गोरिल्ला, कई किस्म के लंगूर, दरियाई घोडा, अफ्रीकन हाथी, जेबरा, बारहसिंघा** आदि। अनेक सर्प, कई किस्म के सरीसृप तथा अलवणीय जल में पायी जाने वली अनेक जातियों की मछलियाँ, जैसे फेफड़ों वाली मीन उपवर्ग (Dipnoi) की प्रोटोप्टेरस तथा गैनाइड

जाति की मछली **पॉलिप्टेरस** इत्यादि। **सिंह. चीता तथा शतुरमुर्ग** भी इस क्षेत्र में पाये जाने वाले जानवर हैं।

इथोपियन क्षेत्र के प्राणि-समूह में स्थलीय पृष्ठवंशी प्राणियों के 161 कुल हैं, जो अन्य और किसी क्षेत्र की कुल गणना रो बहुत ही अधिक है। इनमें से प्राणियों के 30 कुल, इस क्षेत्र में विशिष्ट रूपसे पाये जाते हैं, जिनमें से 12 स्तनधारियों के, 13 पक्षियो के, 4 सरीसृपों के तथा 1 उभयचर प्राणियों के समूह हैं।

इथोपियन क्षेत्र को निम्नलिखित चार उपक्षेत्रों मे विभक्त किया गया है -

(A) पूर्व अफ्रीकन उपक्षेत्र

(B) पश्चिमी अफ्रीकन उपक्षेत्र

(C) दक्षिणी अफ्रीकन उपक्षेत्र

(D) मेलागेसी उपक्षेत्र

1.3.3 ओरिएन्टल क्षेत्र (Oriental Region)

इस क्षेत्र में एशिया के वे सभी हिस्से आते हैं जो पेलीआर्कटिक और इथोपियन क्षेत्र में नहीं आते है जैसे, **श्रीलंका, मलापा द्वीप समूह** तथा उससे सम्बन्धित सभी द्वीप जैसे **सुमात्रा, जावा, बोर्निओ, फरमोसा** तथा **फिलीपिन्स** इत्यादि सम्मिलित है। सघन एवं अत्यधिक वन जिनमें नाना प्रकार के अति उन्नत प्राणि-समूह पाये जाते हैं, इस क्षेत्र की एक बड़ी विशेषता है। दक्षिणी भाग में, जो इात्तउ्यन उपक्षेत्र कहा जाता है, ऊष्णकटिबन्धीय वनों की प्रचुरता है। इस क्षेत्र में स्थलीय पृष्ठवंशी प्राणियों के 153 कुलों में से 10 कुल विशिष्ट है। इन 10 कुलों में 4 कुल स्तनधारियों के, 1 कुल पक्षियों का एवं 5 कुल सरीसृपों के हैं। इस क्षेत्र के उभयचर प्राणी सिसीलियन, कुछ सैलेमेण्डर, हाइला इत्यादि है। ओरिएन्टल क्षेत्र के मृदु या अलवणीय जल में पायी जाने वाली मछलियों में कोई भी समूह आदिम नहीं है।

इस क्षेत्र का पक्षी - समूह इथोपियन क्षेत्र के पक्षी समूह के समान हैं। इस क्षेत्र के स्तनधारी प्राणी श्रू,उड़न लंगूर, बिल्लियाँ, रीछ, हाथी, गैंडे, नेवले, चूहे तथा गिलहरियाँ हैं।

ओरिएन्टल क्षेत्र को चार उपक्षेत्रों में बांटा जाता है. -

(A) इंडियन उपक्षेत्र

(B) सीलोनीज उपक्षेत्र

(C) इण्डो - चाइनीज उपक्षेत्र

(D) इण्डो - मलायन उपक्षेत्र

1.3.4 आस्ट्रेलियन क्षेत्र (Australian Region)

ऑस्ट्रेलियन क्षेत्र में सम्पूर्ण ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, न्यूगिनी, मलक्का और उसके निकटवर्ती द्वीप तथा प्रशान्त महासागर के समस्त द्वीप सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र के लक्षण आशिक रूप से ऊष्णकटिबन्धीय तथा शीतोष्ण हैं। यह क्षेत्र विश्व के अन्य महाद्वीपों से अलग है। इसके कारण ही यहाँ के प्राणि समूह भी विशिष्ट हैं। पॉलिनिशन उपक्षेत्र में **ज्वालामुखी द्वीप** तथा **प्रवाल-द्वीप वलय (atolls)** स्थित है। ज्वालामुखी द्वीपों पर वन स्थित है , किन्तु प्रवाल -द्वीप वलयों पर

वनस्पति एवं प्राणि-समूह पूर्ण रूप से अनुपस्थित हैं। ऑस्ट्रेलियन महाद्वीप के आन्तरिक भाग में सूखे मैदान तथा मरूस्थल स्थित हैं, किन्तु उत्तरी भाग के लक्षण प्राय: ऊष्णकटिबन्धीय हैं।
आस्ट्रेलियन क्षेत्र में उच्च एवं अपरास्तनी (placental mammals) स्तनधारी प्राणी की अनुपस्थिति तथा आदिम स्तनधारी प्राणियों की अधिकता इस क्षेत्र की विशेषता है। धानी - प्राणी (marsupials) तथा मोनोट्रीम समूह के स्तनधारी प्राणी केवल इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं। ऑस्ट्रेलियन क्षेत्र के मृदु या अलवणीय जलों में पायी जाने वाले मछलियाँ सिरेटोड़स है, जिनकावितरण इसी क्षेत्र में सीमित है। इस क्षेत्र के सरीसृप प्रमुखत: **कैरोटोकैलीस, मगर, वेरेनस**, **अजगर,** एलापिड आदि हैं।
पक्षियों मे **केसोवरीज़** की 6 जातियाँ , **एमूज** की 2 जातियाँ , **डाइनॉरर्निस** शहद खाने वाली चिड़ियाँ,तोते, कबूतर इत्यादि प्रमुख हैं। इस क्षेत्र में स्थलीय पृष्ठवंशी प्राणियों के 134 कुल विद्यमान हैं। इनमें से 30 कुल इस क्षेत्र में विशेष रूप से पाये जाते हैं, जिनमें 8 कुल स्तनधारियों के, 17कुल पक्षियों के, 3 कुल सरीसृपों के तथा 2 उभयचर प्राणियों के हैं।
कंगारू, फैलेन्जर, मारसूपिअल मोल, चींटीखोर, डक-बिल आदि स्तनधारी प्राणि है जो इस क्षेत्र में पाये जाते हैं।
ऑस्ट्रेलिया क्षेत्र को निम्नलिखित चार उपक्षेत्रों में बांटा गया है
(A) ऑस्ट्रो-मलायन उपक्षेत्र
(B) ऑस्ट्रेलियन उपक्षेत्र
(C) पॉलिनेशियन उपक्षेत्र
(D) न्यूज़ीलैण्ड उपक्षेत्र

1.3.5 निओट्रॉपिकल क्षेत्र (Neo-tropical Region)

इस क्षेत्र में सम्पूर्ण दक्षिणी एवं मध्य अमेरिका, वेस्ट इण्डीज तथा मेक्सिको का दक्षिणी भाग सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र निश्चित रूप से ऊष्णकटिबन्धीय है, किन्तु इसका दक्षिणी शीतोष्ण भाग दक्षिणी भाग तक फैला है। यह क्षेत्र अपने अत्यधिक सघन वनों की अधिकता के लिये प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की एक विशेषता यह भी हैं कि यहाँ मरूस्थल बिलकुल नहीं हैं।
इस क्षेत्र में पाये जाने वाले बहुत से प्राणी विशेष क्षेत्री हैं। यहाँ पायी जाने वाली चमगादड़े विशेष प्रकार की होती हैं। कीटभक्षी प्राणि बिलकुल नहीं पाये जाते हैं। माँसभक्षी प्राणियों की केवल एक विशेष जाति पायी जाती है। मृदु व अलवणीय जलों में पायी जाने वाली मछलियाँ **ईल** और **लैपिडोसाएरेन** है। **गारपाइक** नामक मछलियाँ भी इस क्षेत्र के विशेष प्राणियों में से है। निओट्रोपिकल क्षेत्र के मुख्य उभयचर प्राणी **सैसीलिअन, बुफो, हाइलिड, रानिड** इत्यादि हैं। इस क्षेत्र में सरीसृप **कच्छप, अजगर, इगुआना, मगर, वाइपर** इत्यादि है। पक्षी प्राणि-समूह अद्भुत रूप से उन्नत तथा बिल्कुल ही भिन्न है। निओट्रॉपिकल क्षेत्र में पाये जाने वाले स्तनधारी प्राणी **ओपोसम, मारसूपिअल, हिरण, खरगोश, ऊँट, मूषक** इत्यादि हैं।
इस क्षेत्र में पाये जाने वाले स्थलीय पृष्ठवंशी प्राणियों के 155 कुलों में से 39 कुल पूर्णत: इस क्षेत्र में सीमित हैं। इनमे से 10 कुल स्तनधारी प्राणियों के, 23 कुल सरीसृपों के तथा 4 कुल उभयचर प्राणियों के हैं।

निओट्रोपिकल क्षेत्र के कटि अत्यधिक ध्यान देने योग्य एवं भिन्न हैं। तितलियों के इस क्षेत्र में पाये जाने वाले 17 कुलों में से 15 कुलों के प्रतिनिधि यहाँ पाये जाते हैं और ब्रेसोलिडी कुल की तितलियाँ विशिष्ट है **कैस्टीनिडी** तथा **यूरेनिडी** कुल के शलभ (moth) इस क्षेत्र के विशिष्ट कटि है।

निओट्रोपिकल क्षेत्र को निम्नलिखित चार उपक्षेत्रों में विभक्त किया गया है. -

(A) चिलियन उपक्षेत्र

(B) ब्राजीलियन उपक्षेत्र

(C) मैक्सिकन उपक्षेत्र

(D) एन्टीलियन उपक्षेत्र

1.3.6 निआर्कटिक क्षेत्र (Nearctic Region)

इस क्षेत्र में सम्पूर्ण उत्तरी अमेरिका तथा ग्रीनलैण्ड का पूरा हिस्सा है। निआर्कटिक क्षेत्र के भौतिक लक्षणों में बड़ी विविधता है। ग्रीनलैण्ड पूर्णत: उत्तर-ध्रुवीय है तथा बर्फ की न जाने कितनी मोटी सतह के नीचे दबा है। उत्तरी अमेरिका पूर्वी भाग पतझड़ एवं मिले-जुले वनों का प्रदेश है। इस क्षेत्र के मध्य भाग मे घास स्थल विद्यमान है। इस क्षेत्र के उत्तरी भाग में कोनिफर वनों का एक लम्बा- चौड़ा फैलाव है।

निआर्कटिक क्षेत्र में पायी जाने वाली मछलियाँ पैडिलमीन बोफिन, मार्जार मीन, पक्षिसाद इत्यादि है। इस क्षेत्र के उभयचर प्राणी **सेलामेण्डर, बुफ़ों, हाइला, रानिडी** कुल के प्रतिनिधि है।

सरीसृपों में **कच्छप, ट्रायोनिक्स एलीगेटर, मगर, गीको** और विषैली छिपकली **हेलोडर्मा, एग्विड** है।

पक्षी समूह में बाज, गिद्ध, बगुले, पैलीकन, सारस, कंठफोडवा इत्यादि महत्वपूर्ण है

स्तनधारी प्राणियों के प्रतिनिधि है **ओपोसम, मोल, भालू हिरण, खरगोश** इत्यादि।

इस क्षेत्र के स्थलीय पृष्ठवंशी प्राणियों के 120 कुलों के प्रतिनिधियों में से 26 कुल स्तनधारी प्राणियों के, 59 कुल पक्षियों के, 21 कुल सरीसृपों के तथा 14 कुल उभयचर प्राणियों के हैं।

निआर्कटिक क्षेत्र को चार उपक्षेत्रों में विभक्त किया गया है :-

(A) कैलीफोर्नियन उपक्षेत्र

(B) चट्टानी - पर्वतीय उपक्षेत्र

(C) एलीधानी उपक्षेत्र

(D) कैनेडियन उपक्षेत्र

बोध प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1. निम्न में से किस क्षेत्र में न्यूजीलैण्ड उपक्षेत्र आता है -
   (a) ओरिएन्टल क्षेत्र
   (b) आस्ट्रेलियन क्षेत्र
   (c) निआकटिक क्षेत्र
   (d) पैलीआर्परटिक क्षेत्र
2. निम्न में एक विशिष्ट से इथोपियन क्षेत्र का प्राणी है -
   (a) धानी-प्राणी
   (b) डकबिल

(c) शुतुरमुर्ग

(d) चींटीखोर

3. निम्न में से एक उपक्षेत्र निआर्कटिक क्षेत्र का भाग है :-

(a) मेलोगेसी उपक्षेत्र

(b) कैनेडियन उपक्षेत्र

(c) इण्डियन उपक्षेत्र

(d) यूरोपियन उपक्षेत्र

4. इंडियन उपक्षेत्र निम्न में से एक क्षेत्र का भाग है -

(a) ओरिएण्टल क्षेत्र

(b) पैलीआर्कटिक क्षेत्र

(c) निओट्रोपिकल क्षेत्र

(d) निआर्कटिक क्षेत्र

5. इथोपियन परिमण्डल की सीमाओं तथा उसके विशिष्ट स्तनधारी जन्तु- समूह का सविस्तार उल्लेख कीजिये।

.....

.....

6. विश्व के मुख्य प्राणी - भौगोलिक क्षेत्र कौन -कौन से हैं? ओरिएन्टल परिमण्डल की सीमाओं और विशेष स्तनधारी समूह का वर्णन कीजिये।

.....

.....

7. ऑस्ट्रेलिया परिमण्डल की भौगोलिक सीमाएँ बताते हुए उनमें पाये जाने वाले प्राणियों की विशिष्टता बताइये।

.....

.....

8. निओट्रोपिकल परिमण्डल की भौगोलिक सीमाएँ बताते हुए इसके प्रमुख जन्तु-जात का वर्णन कीजिये।

.....

.....

1.4 सारांश (Summary)

सम्पूर्ण पृथ्वी के वातावरण में असंख्य जीवधारी निकास करते हैं तथा उनका विवरण सम्पूर्ण पृथ्वी पर असमान होता है। किसी खास क्षेत्र के प्राणी-समूह का वितरण वहाँ की जलवायु एवं भौतिक विशेषताओं पर आधारित होता है। पृथ्वी पर जन्तुओं के वितरण के अध्ययन को प्राणि भूगोल कहते हैं। सभी भौगोलिक क्षेत्र एक -दूसरे से विशिष्ट रोध द्वारा पृथक् रहते हैं। जैसे पेलिआर्कटिक को सहारा मरूस्थल तथा पेलिआर्कटिक व ओरिएन्टल क्षेत्र हिमालय पर्वत शृंखला द्वारा पृथक् रहते हैं। प्राणी समूह भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से कई प्रकार के होते हैं। कुछ जन्तु

समूह सर्वव्यापी होते हैं और कुछ जन्तु विशेष- क्षेत्री होते हैं अर्थात् वे किसी एक्। क्षेत्र में ही पाये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के जन्तु-समूहों के आधार पर पृथ्वी को छः विशाल क्षेत्रों में विभाजित किया है। इन छः क्षेत्रों को कई उपक्षेत्रों में भी विभाजित किया गया है।

1.5 शब्दावली (Glossary)

पीक्षमाद	Pearching
ऊष्णकटिबन्धीय वन	Tropical forest
प्रवाल-द्वीप वलय	Atolls
अपरास्तनी	Placental manmmals
धानी-प्राणी	Marsupials
शलभ	Moth

1.6 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली, रंगा एवं लौरी प्राणि विविधता तथा उद्विकास रमेश बुक डिपो, जयपुर
2. डॉ. वी.एस पवाँर. प्राणि विविधता एवं उद्विकास; कॉलेज बुक सेन्टर, जयपुर
3. जैन, देवर्षि प्राणि विविधता एवं उद्विकास; कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to Self-assessment Questions)

1. (b)
2. (c)
3. (b)
4. (a)
5. देखें इकाई संरचना 1.5
6. देखें इकाई संरचना 1.2, 1.3 एवं 1.6
7. देखें इकाई संरचना 1.7
8. देखें इकाई संरचना 1.8

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. मुख्य भूजन्तु क्षेत्रों के नाम लिखिए और उनकी सीमाएँ बताइये। ओरिएन्टल परिमण्डल के जन्तु-समूह की विशेषतों का विवेचन कीजिये।
2. निआर्कटिक परिमण्डल की भौगोलिक सीमाएँ बताते हुए इसमें पाये जाने वाले जन्तुजात का वर्णन कीजिये।

इकाई 2: राजस्थान तथा भारत की जैव-विविधता (Biodiversity of Animals of Rajasthan and India)

इकाई की रूपरेखा (Out-line of Unit)

2.0 उद्देश्य (Objectives)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

2.2 राजस्थान व भारत की जैव विविधता (Biodiversity of Animals of Rajasthan and India)

2.3 जैव विविधता के विभिन्न पहलू (Various aspects of Biodiversity)

2.4 भारत में जैव-विविधता (Biodiversity of Animals in India)

2.5 राजस्थान में जैव-विविधता (Biodiversity of Animals in Rajasthan)

2.6 अनुकूली समाभिरूपता तथा अपसारिता (Adaptive Convergence and Divergence)

2.7 सारांश (Summary)

2.8 शब्दावली (Glossary)

2.9 संदर्भ ग्रंथ (further Readings)

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to Self-assessment Questions)

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Question)

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में हमने राजस्थान व भारत में पायी जाने वाली जैव -विविधता को दर्शाया है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप

- जैव -विविधता के विभिन्न पहलुओं को जान पायेंगे।
- अनुकूली समाभिरूपता तथा अपसारित को समझ पायेंगे।
- विविधता की स्थिति को जानेंगे।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

जैव - विविधता प्रत्येक देश एवं प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र की अलग होती है। जैव - विविधता पारिस्थितिकी तन्त्र विविधता, प्रजाति विविधता एवं आनुवांशिकी विविधता पर भी निर्भर करती है। प्रत्येक जीवित तन्त्र में विविधता पाई जाती है। जैसे रूप में, आकार में, स्वभाव में, रचना में, कार्यिकी में इत्यादि। भारत में पाये जाने वाले भौगोलिक क्षेत्रों की संख्या दस है जैसे ट्रान्स हिमालयन प्रदेश, मरूस्थलीय प्रदेश, दक्कन क्षेत्र इत्यादि। राजस्थान में पाई जाने वाली विषम जलवायु के उपरान्त भी यहाँ पर वन्य जीव-जन्तुओं की विविधता पाई जाती है। राजस्थान में वन्य जीव संरक्षण के लिये कई वन्य अभयारण्य क्षेत्र है।

2.2 राजस्थान व भारत की जैव - विविधता (Biodiversity of Animals of Rajasthan and India)

जैव- मण्डल (biosphere) में 5 से 30 मिलियन जीवित संरचनाएँ पाये जाने का अनुमान है जिसमें से मात्र 17 मिलियन जीवित संरचनाओं की पहचान हो सकी है। इसमें से 1. 2 मिलियन जन्तु प्रजातियाँ व 0. 5 मिलियन वनस्पति प्रजातियाँ है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार उष्णकटिबन्धीय वर्षा वन व उष्णकटिबन्धीय समुद्र की प्रवाल भित्ती की कुछ प्रजातियों की पहचान अभी होनी है। परन्तु मानव के दुष्कृत्यों के कारण इन वनों व प्रवालों का कहीं इनकी पहचान से पूर्व ही विनाश न हो जाये। जीवित प्रजातियाँ पृथ्वी के 3. 5 मिलियन वर्षों के कार्बनिक विकास का परिणाम है। उस काल में कई जातियाँ प्रकट हुई व कई नष्ट हो गई। हमें उन जातियों का ज्ञान है जो हमारे आस- पास के पर्यावरण में पायी जाती है। जब हम इन प्रजातियों का अध्ययन करते हैं तो हमें विविधता दृष्टिगोचर होती है। घरेलू मक्खी पालतू कुत्ते से व फर्न (पादप) गुलाब के पौधे से विभिन्नता दर्शाता है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि जैव मण्डल में विविधता पाई जाती है।

2.3 जैव - विविधता के विभिन्न पहलू (Various aspects of Biodiversity)

जैव विविधता शब्द के अन्तर्गत तीन विभिन्न पहलू सम्मिलित किये जाते हैं जो कि एक दूसरे से अन्त: सम्बन्धित हैं. -

1. **परिस्थितिकी-तन्त्र विविधता (Ecosystem Diversity)** पारिस्थितिकी तन्त्र में विभिन्न प्रकार की धरातलीय संरचनाएँ वातावरणीय कारक व जैव कारक होते हैं जो कि विभिन्न प्रकार की विशिष्ट वनस्पति एवं जातियों को सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

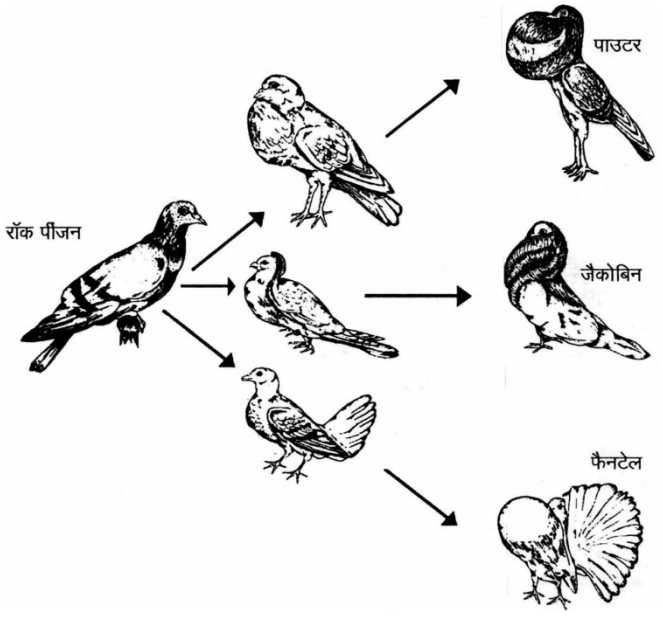

चित्र 2.1 : कबूतर की आकृति में विविधता

2. **प्रजाति विविधता** (Species Diversity). प्रजाति विविधता से तात्पर्य एक क्षेत्र विशेष में जातियों के विभिन्न प्रकारों से है।
3. **आनुवंशिकी विविधता** (Genetic Diversity) : आनुवंशिकी विविधता में एक जाति के अन्तर्गत जीनों की विभिन्नताएँ सम्मिलित हैं। उदाहरण - कबूतर की आकृति में विविधता।

विविधता की स्थिति:

प्रत्येक जीवित तन्त्र में विविधता देखी जा सकती है। जैसे आकारिकी, स्वभाव, आवास रचना व कार्यिकी विविधताएँ। प्राणियों 'में वनस्पतियों की तुलना में अधिक विविधताएँ होती है। विविधताओं का आधार प्राणियों में पाये जाने वाले अनुकूलनों के कारण हैं। इन्हीं अनुकूलनों के कारण प्राणी पर्यावरण की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रह सकते हैं। प्राणियों में निम्न प्रकार की विविधताएँ पायी जाती है -

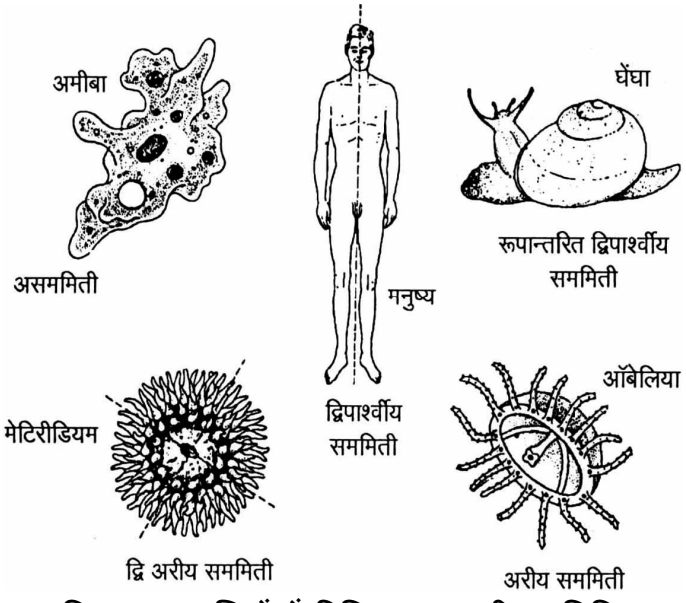

चित्र 2.2 : प्राणियों में विभिन्न प्रकार की सममिति

i. **रूप में विविधता :** प्राणियों में विभिन्न प्रकार पाये जाते हैं, जैसे गोल, अण्डाकार, सिलेन्डरनुमा, छतरी जैसा, पत्ती के आकार का व अनियमित। प्राणियों में विभिन्न प्रकार की सममिति पाई जाती है।
ii. **आकार में विविधता :** प्राणियों के आकार में विविधता पायी जाती है, जैसे कुछ प्राणी इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें नग्न आखों से नहीं देख सकते हैं। सबसे छोटा प्राणी प्लूरोनिमोनिया का बैक्टिरिया (bacterium of pleuropneumonia) है। इसका आकार 0. 1 से 0. 5 हम होता है। सबसे बड़ा प्राणी ब्लू व्हेल (blue whale) है, ये 100 फीट लम्बी होती
iii. **आवास में विविधता :** जैव मण्डल में सभी प्रकार के आवासों में प्राणी निवास करते हैं जैसे कुछ प्राणी जलीय आवास में रहते हैं जबकि कुछ प्राणी मरूस्थलीय आवास में रहते हैं।
iv. **स्वभाव में विविधता :** प्राणियों के स्वभाव में भी विविधता पायी जाती है जैसे कुछ प्राणी अकेले रहते हैं जबकि कुछ प्राणी समूह में रहते हैं। वे प्राणी जो दूसरों पर निर्भर रहते हैं, परजीवी कहलाते हैं जबकि कुछ प्राणी सहजीवी होते हैं।

v. **रचना में विविधता :** अधिकतर प्राणियों की कोशिका में केन्द्रक पाया जाता है, इन्हें यूकैरियोट्स कहते हैं। जिनमें स्पष्ट केन्द्रक नहीं पाया जाता है, उन्हें प्रोकैरियोट्स कहते है.

vi. **कार्यिकी प्रक्रियाओं में विविधता :** प्राणियों में कार्यिकी प्रक्रियाओं जैसे श्वसन, पोषण, उत्सर्जन, जनन व संवेदनशीलता में भी विविधता पाई जाती है।

प्राणियों की यह विशेषता होती है कि ये पर्यावरण के अनुसार अपने आप को परिवर्तित कर लेते हैं, अत: जिन गुणों से प्राणी विशेष वातावरण में विशेष प्रकार के जीवन-यापन के लिये योग्य बन जाता है उन गुणों को उत्पन्न करना व संरक्षण करना अनुकूलन कहलाता है।

2.4 भारत में जैव -विविधता (Biodiversity of Animals in India)

जीव प्रजातियों की दृष्टि से भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचुरता पायी जाती है। यहाँ लगभग 81, 000 पशु प्रजातियाँ पायी जाती है। हाथी, हूलक और गिबन दक्षिण पूर्वी एशिया मूल के जीव है। रीछ, कृष्णमृग और चौसिंगा भारतीय मूल के प्रमुख जन्तु है। भारत में 1200 जातियों व 100 उपजातियों के पक्षी पाए जाते हैं। यहाँ पक्षी घनत्व 136 पक्षी प्रति 10, 000 वर्ग किमी है, जो लैटिन अमेरिका के बाद सर्वाधिक है। यहाँ मोर, सारस, सोहन चिड़िया इत्यादि बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। इनका मुख्य आवास कच्छ का रण है।

प्रजातियों की इस विभिन्नता का कारण भारतीय उपमहाद्वीप का अक्षांशीय विस्तार और उच्चावच है। इस धरातलीय और जलवायविक विविधता के कारण भारत में पाये जाने वाले पारितंत्रों के प्रकारों में भी विविधता पायी जाती है। भारत में अब तक हुए जैव विविधता संरक्षण के प्रयत्नों में स्तनपोषियों, मगर और पक्षियों पर अधिक ध्यान दिया गया। जैव मण्डल में पाये जाने वाले विभिन्न जन्तुओं की विभिन्न प्रक्रियाएँ अक्षांशीय स्थिति, उच्चावन, खाकर, जलवायु, सूर्यातप, मिट्टी व जल आदि भौगोलिक कारकों से नियंत्रित होती है। अलग-अलग भौगोलिक विशेषताओं वाले प्रदेशों के जीवों का विकास क्रम भिन्न होता है। यद्यपि प्रत्येक जीव की शारीरिक संरचना विशिष्ट होती है, किन्तु अनुकूलन की समान आवश्यकताओं के कारण किसी भौगोलिक क्षेत्र में पाये जाने वाले जैविक घटकों की प्रकृति में समानताएँ पायी जाती है।

तालिका 2.1 : प्राणी प्रजातियों में जैव-विवधता

क्र.स	समूह	भारत मे प्रजातियों की संख्या	स्थानिकता का प्रतिशत
1.	स्तनधारी	372	8
2.	सरीसृप	435	33
3.	पक्षी	1,200	4
4.	उभयचर	181	6.2
5.	मछलियाँ	2,000	—
6.	कीट	60,000	—
7.	मोलस्क	5,000	—

भारत सरकार के वन एवं पर्यावरण मन्त्रालय ने प्राणियों की विविधता के आधार पर देश को 10 जैव- भौगोलिक क्षेत्रों (प्रदेशों) में विभाजित किया है।

1. **ट्रान्स हिमालय प्रदेश :** इस प्रकार के प्रदेशों में लद्दाख (जम्मु कश्मीर) और लाहुल स्थिति (हिमालय प्रदेश) शामिल है। ये चारागाह क्षेत्र जंगली भेड़ों और बकरियों, जंगली याक, तिब्बती गधा, हिरन और बारहसिंघे के लिये भोजन व उपयुक्त आवास उपलब्ध करवाते हैं। इस क्षेत्र के मांसाहारी पशुओं में हिम तेन्दुआ, तिब्बती भेडिया व मारमोट जैसे जीव पाये जाते हैं।
2. **हिमालय प्रदेश :** इस क्षेत्र के हिमालय पदीय क्षेत्रों में सांभर और जंगली सूअर, शीतोष्ण उप हिमालय क्षेत्र में कच्छी मृग, गोरल और भूरा भालू और हिम तेन्दुआ जैसे प्राणी जाये जाते हैं।
3. **मरूस्थलीय प्रदेश :** कच्छ के रण और थार मरूस्थल पर फैला यह जैव भौगोलिक प्रदेश एक नाजुक पारितंत्र है। इस क्षेत्र के जीवों में मरूस्थलीय लोमड़ी, मरूस्थलीय बिल्ली, गोड़ावन, चिंकारा, कृष्ण मृग आदि जीवों की विभिन्न प्रजातियाँ पायी जाती है।
4. **अर्द्ध शुष्क प्रदेश :** इस प्रदेश के अन्तर्गत पजाब, गुजरात, हरियाणा, राजस्थान का एक विस्तृत रेतीला अर्द्ध मरूस्थलीय क्षेत्र आता है। मुख्य स्तनधारी प्राणियों में कृष्णमृग, चिन्कारा, नील गाय, मरूस्थलीय लोमडी, खरगोश व रेतीले टीलों में रहने वाले चूहे मिलते हैं। मुख्य पक्षियों में तिलोर तीतर, बटेर, गिद्ध, चील व बाज मुख्य है।
5. **पश्चिमी घाट प्रदेश :** प्रायद्वीपीय भारत के पश्चिमी तट के समानान्तर 1500 किमी. लम्बाई में विस्तृत फैला यह पर्वतीय क्षेत्र है। यह क्षेत्र भारत का जीन भण्डार (genetic store) कहलाता है। इस क्षेत्र के स्थानीय वन्य जीवों में नीलगिरि लंगर, शेर, मैकाक, त्रावणकोर कछुआ आदि आते हैं।
6. **दक्कन क्षेत्र :** दक्षिणी प्रायद्रीपीय पठार में फैला यह क्षेत्र वन और वन्य जीवों में सर्वाधिक सम्पन्न है। यह क्षेत्र बाघ, तेडर, गोड, चीतल, जंगली हाथी, जंगली भैंसे और बारहसिघों के लिये अनुकूल जैव भौगोलिक परिस्थितियाँ उपलब्ध करवाता है।
7. **गंगा का मैदान :** यह विश्व के सर्वाधिक उपजाऊ मैदानों में से एक है। यहाँ हाथी, गैण्डा, कृष्ण मृग, बाघ, स्वच्छ जल के कछुए, घड़ियाल इत्यादि पाये जाते हैं।
8. **सागरतटीय प्रदेश :** इसमें बंगाल की खाड़ी और अरब सागर तट के क्षेत्र आते हैं। यहाँ पर रायल बंगाल टाईगर, ओलिव रिडले कछुए पाये जाते हैं।
9. **पूर्वान्चल :** ब्रह्मपुत्र घाटी, खासी-जयन्तिया आदि पर्वतीय और मैदान क्षेत्रों मे विस्तृत यह क्षेत्र भारत का एक जैव भौगोलिक गलियारा है। यहाँ पर हुलोक प्रजाति के बन्दर, पहाड़ी व सामान्य चीते, जंगली बिल्ली, हाथी, गैण्डा, भैंसा, दलदली, मृग, विभिन्न प्रकार के हिरन, उड़न गिलहरी आदि पाये जाते हैं।
10. **भारतीय द्वीपीय क्षेत्र :** इस क्षेत्र में जीवों की अत्यधिक विविधता पायी जाती है। मछलियों की विविधता भी यही पायी जाती है।

2.5 राजस्थान में जैव-विविधता (Biodiversity of Animals in Rajasthan)

राजस्थान में विषम जलवायु और वन क्षेत्रों के सीमित क्षेत्र के उपरान्त भी राज्य में वन्य-जीवों की विविधता पायी जाती है। वनों और वन प्राणियों के प्रति राज्य के निवासियों का सदियों से अभूतपूर्व लगाव रहा है। राज्य में वन्य प्राणियों के संरक्षण के उद्देश्य से वर्ष 1972 में वन्य जीव

संरक्षण अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम में आखेट निषेध क्षेत्रों एवं वन्य जीवों को सरंक्षण प्रदान करने हेतु राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्यों की घोषणा की गई। विलोपन के कगार पर पहुँच चुका राजस्थान का राज्य पक्षी गोडावन है। राज्य सरकार ने 2001 की वन्य गणना में पहली बार मोर की गणना करने का निर्णय लिया था।

इस क्षेत्र में स्तनपोषी जन्तुओं की लगभग 250, पक्षियों की 450, रेंगने वाले जीवों की 20 और उभयचरी जीवों की 14 प्रजातियाँ पाई जाती है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में अनेक प्रकार के कटि - पतंगे, तितलियाँ, मधुमक्खियाँ, मच्छर तथा नदी व तालाबों में रहने वाले जीव जन्तु मिलते हैं। राज्य में देश के कुछ दुर्लभ पशु -पक्षी जैसे तेंदुआ, बाघ, चिन्कारा, बारहसिंघा, नोड, सारस, बतख आदि पाये जाते हैं।

राज्य में वन्य जीवों के सरंक्षण की आधारशिला 7 नवम्बर, 1955 को तब रखी गई जब **सरिस्का** (अलवर), **दर्रा** (कोटा), **रणथम्भौर** (सवाई मा धोपुर), **जयसमन्द** (उदयपुर), **वन विहार** (धौलपुर) और **केवलादेव घना** (भरतपुर) क्षेत्रों को वन्य जीवों के लिये संरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया।

2.8 अनुकूली समाभिरूपता त था अपसारिता (Adaptive Convergence and Divergence)

एच. एफ. ऑसबोर्न (1896) ने सम्भावित उद्विकासीय उद्गम के आधार पर अनुकूलनताओं का वर्गीकरण किया है। उसके अनुसार वातावरणीय परिस्थितियों में दो प्रकार के अनुकूलन होते हैं।

(A) समाभिरूप अनुकूलन (Convergent adaptation)

(B) अपसारी अनुकूलन (Divergent adaptation)

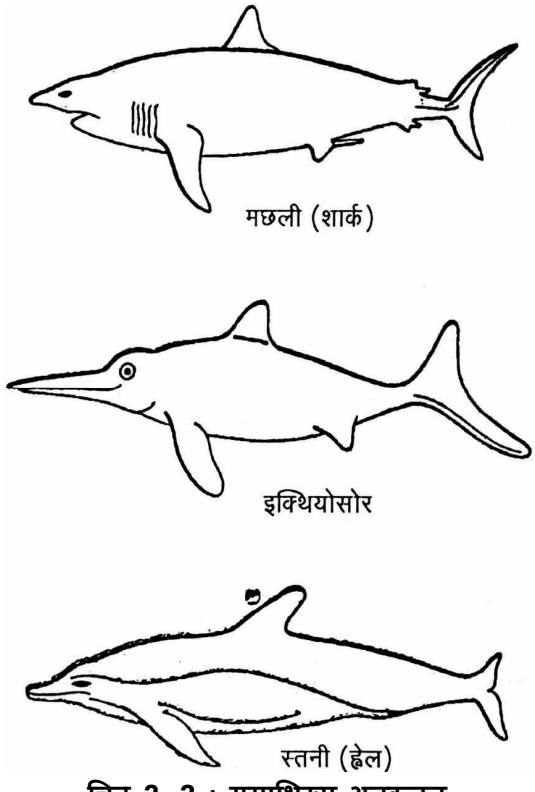

चित्र 2. 3 : समाभिरूप अनुकूलन

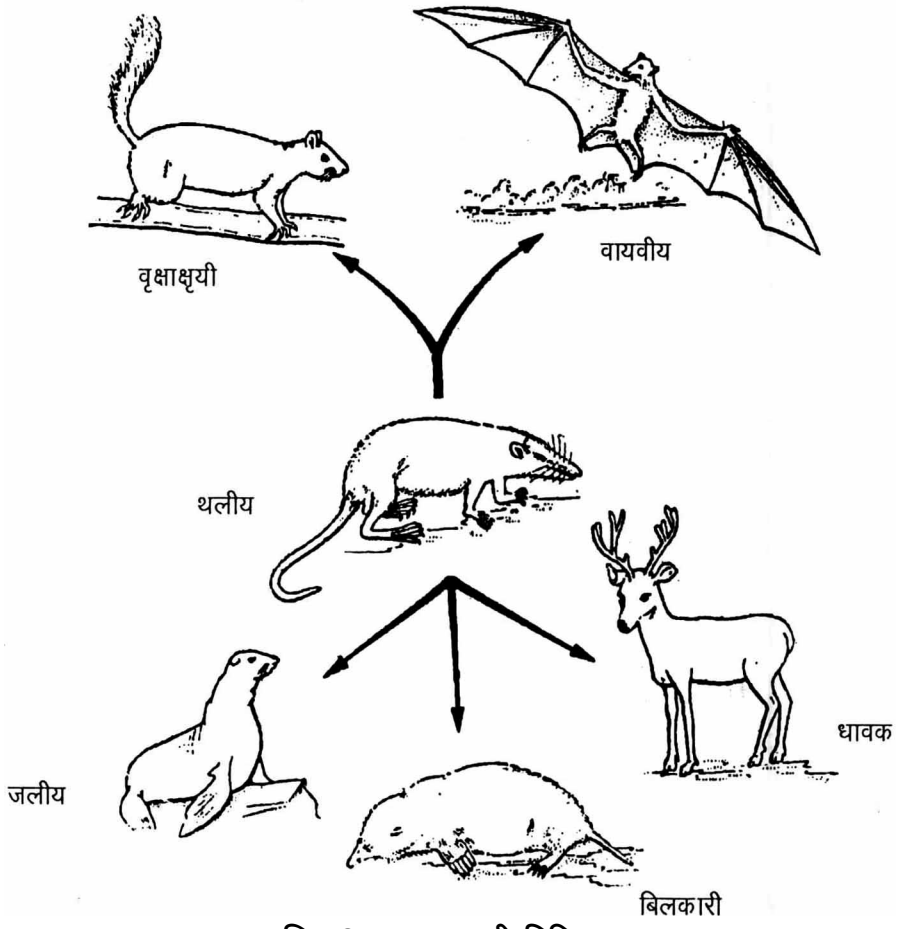

चित्र 2. 4 : अनुकूली विकिरण

इन दोनों प्रकार के अनुकूलनों में वातावरण ही निर्धारक कारक प्रतीत होते हैं।

(A) **समाभिरूप अनुकूलन :** इस अनुकूलन में असम्बन्धित जन्तु समान वातावरणीय परिस्थितियों में समान प्रकार की संरचनाएं विकसित करते हैं। कई जलीय कशेरूकी में इसके उदाहरण मिलते हैं, जहाँ ये मत्स्याकार रूप ग्रहण करते हैं। शार्क (मछली), व्हेल (स्तनधारी) इत्यादि में समान प्रकार का शरीर पाया जाता है जो पानी में तेज गति के लिये अनुकूलित है तथा उनमें पुच्छीय-पखने, पृष्ठ- पखनें तथा जोड़ीदार पखनें पाये जाते हैं जो तैरते समय मोड ने व सन्तुलित करने वाले अंग होते हैं, जो इनके तैरने के अंग कहे जाते हैं। **ऑसबोर्न** ने इस प्रवृति को **"समाभिरूपता या समानान्तरता का नियम" कहा।**

(B) **अपसारी अनुकूलन:** इससे सम्बन्धित जातियाँ विभिन्न वावतावरणीय परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न अनुकूली संरचनाएँ विकसित करती है। कशेरूकी प्राणी की लगभग प्रत्येक सफल क्लास व आर्डर के सदस्यों ने अपने आपको जीवन की समस्त पद्धतियों के अनुकूल कर लिया है। ऑस्ट्रेलिया के **मार्सुपियल** स्तनधारियों में अनुकूली विकिरण देखा जा सकता है। इनमें से कई प्राणियों ने स्वयं को दौड़ ने, कूदने, आरोहण, खोदने या ग्लाइड करने योग्य बना लिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राणियों की विविधता एवं वितरण सदा एक समान नहीं होती। भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से यह पाया गया है कि कुछ प्राणी समूह सर्वव्यापी होते हैं और कुछ विशेष क्षेत्रीय।

बोध प्रश्न(Answer to Self-assessment Questions)

1. मार्सूपियल प्राणी पाये जाते हैं. -
   (a) एशिया में
   (b) अफ्रीका में
   (c) आस्ट्रेलिया में
   (d) अमेरिका में ( )
2. निम्न में से एक जीवित जीवाश्म है. -
   (a) प्लैटिपस
   (b) स्फीनोडॉन
   (c) एकिडना
   (d) टीरोसॉर ( )
3. इनमें से कौनसा प्राणी स्तनि नहीं है?
   (a) कीटभक्षी
   (b) शुतुरमुर्ग
   (c) एकिडना
   (d) डॉल्फिन ( )
4. कंगारू है
   (a) पक्षी
   (b) प्रोटोथीरियन
   (c) यूथीरियन
   (d) मेटाथीरियन ( )
5. भारत की प्राणि - विविधता पर लेख लिखिए।
   .....
   .....
6. जैव विविधता के विभिन्न पहलू क्या हैं?
   .....
   .....
7. प्राणियों की विविधता के आधार पर देश को कितने और कौनसे जैव - भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया गया है?
   .....
   .....
8. राजस्थान में प्राणि-विविधता के बारे में लिखिये।
   .....
   .....

9. अनुकूली समाभिरूपता एवं अपसारिता से आप क्या समझते हैं

.....

.....

2.7 सारांश(Summary)

इस इकाई में आपने जैव - मण्डल में पायी जाने वाली अनेकों जीवित संरचनाओं के बारे में जानकारी ग्रहण की। परिस्थितिकी, प्रजाति एव आनुवांशिकी विविधता को समझा। भारत के किस प्रदेश में किस प्रकार की विविधता पायी जाती है यह भी आपने जाना। जैसे मरूस्थलीय प्रदेश में पाये जाने वाले प्राणी पश्चिमी घाट में पाये जाने वाले प्राणियों से अलग है। राजस्थान में उपस्थित वन्य - जीव संरक्षण क्षेत्रों के बारे में भी आपको बताया गया है।

2.8 शब्दावली (Glossary)

1. अनुकूलन (adaptation) अनुकूल पर्यावरण
2. प्रोकैरियोटस (prokaryotes). जिन कोशिकाओं में स्पष्ट केन्द्रक नहीं पाया जाता है।
3. यूकैरियोटस (eukaryotes) जिन कोशिकाओं में केन्द्रक पाया जाता है।
4. अभयारण्य (National Park). जहाँ पर वन्य जीवों को अनेक संरक्षण के लिए रखा जाता है

2.9 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली, रंगा एवं लौरी प्राणि- विविधता तथा उद्विकास' रमेश बुक डिपो, जयपुर।

2.10 बोध प्रश्नो के उत्तर (Answer to Self-assessment Questions)

1. (स)
2. 2.(ब)
3. 3.(ब)
4. (द)
5. देखें इकाई संरचना 2.4
6. देखें इकाई संरचना 2.3
7. देखें इकाई संरचना 2.4
8. देखें इकाई संरचना 2.5.
9. देखें इकाई संरचना 2.6.

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. भारत में पाये जाने वाले प्राणियों की विविधता पर लेख लिखिये।
2. समाभिरूपता व अपसारिता के बारे में लिखिये।

इकाई 3: जीवन एवं वातावरण के आधार पर अनुकूलन (Adaptations on the Basis of Mode of Life and Environment)

इकाई की रूपरेखा (Out-line of Unit)

3.0 उद्देश्य (Objectives)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.2 अनुकूलनताएं (Adaptations)

3.3 अनुकूलन की कोटियाँ (Categories of Adaptations)

- 3.3.1 परजीविता (Parasitism)
- 3.3.2 क्रियात्मक अनुकूलन (Physiological Adaptation)
- 3.3.3 आचरणात्मक अनुकूलन (Behavioural Adaptation)
- 3.3.4 अनुहरण (Mimicry)

3.4 आवासीय अनुकूलन (Habitat Adaptations)

- 3.4.1 समुद्रीय आवास के अनुकूलन (Adaptations of Marine Habitat)
- 3.4.2 अलवणजलीय आवास के अनुकूलन (Adaptation of Fresh Water Habitat)
- 3.4.3 स्थलीय अनुकूलन (Terrestial adaptations)

3.5 सारांश (Summary)

3.6 शब्दावली (Glossary)

3.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to Self-assessment Questions)

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

3.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- अनुकूलन को पूर्णतया समझ पायेंगे।
- परजीविता क्या है, यह जान पायेंगे।
- आवासीय अनुकूलन के प्रकारों को जान पायेंगे।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

अनुकूलनता किसी भी प्राणी को उनके आवासों में जीवित रहने योग्य बनाती है। इसलिये अनेक प्राणियोंके कारण अनुकूलता की कोटि भीभिन्न-भिन्न होती है। जिस प्रकार का जीवन प्राणी व्यतित करता है उसी प्रकार के अनुकूलन में वह जीवन जीता है; जैसे परजीवी भी होते हैं और अनुहरण (mimicry) दर्शाने वाले प्राणी भी होते हैं। कुछ प्राणी केवल समुद्र में मिल सकते हैं

लेकिन कुछ केवल अपना जीवन मरूस्थल में ही व्यतीत करते हैं। किसी को अपने चारों ओर जल की अत्यन्त आवश्यकता है, तो किसी के अन्दर ही जल का भण्डार है। इसी व्यापकता को अनुकूलता का नाम दिया गया है।

3.2 अनुकूलनताएँ (Adaptations)

अनुकूलनताएँ वे विशेषताएँ है जो प्राणियों को उनके आवासों में जीवित रहने योग्य बनाती है। **ऑसबोर्न** ने सम्भाविता उद्विकासीय उद्‌गम के आधार पर अनुकूलनता का वर्गीकरण किया है। उनके अनुसार वातावरणीय परिस्थितियों में दो प्रकार के अनुकूलन होते हैं। पहला **समाभिरूप अनुकूलन** में असम्बन्धित प्राणी समान वातावरणीय परिस्थितियों में समान प्रकार की संरचनाएँ विकसित करते है। दूसरा **अपसारी अनुकूलन** में सम्बन्धित जातियाँ विभिन्न वातावरणीय परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न अनुकूली संरचनाएँ विकसित करती हैं। इन दोनों प्रकार के अनुकूलनों में वातावरण ही निर्धारक कारक प्रतीत होता है।

3.3 अनुकूलन की श्रेणियों (कोटियाँ) (Categories of Adaptations)

सभी प्राणी अपने आवास अथवा वातावरण में जीवित रहने के लिये उपयुक्त होते है। अनुकूलन प्राणियों को उनके आवासों में जीवित रहने योग्य बनाते हैं। प्राणियों में अनुकूलन की कोटियाँ भिन्न- भिन्न होती है। कुछ प्राणी कम व अधिक अनुकूलित होते हैं तथा अन्य सामान्य रूप से यहाँ उन्हीं अनुकूलताओ का अध्ययन करेंगे जो कि अकशेरूकीय प्राणियों में होती है। परजीविता में एक जीवधारी किसी दूसरे जीवधारी पर भोजन के लिये स्थाई या अस्थाई रूप में आश्रित रहता है। परजीवी अपने पोषक पर भोजन लाभ के लिये आश्रित होता है, लेकिन कुछ स्थितियों में परजीवी अपने पोषक के लिये अनजाने में प्राणघातक सिद्ध हो जाते हैं।

3.3.1 परजीविता (Parasitism)

परजीवी एक ऐसा प्राणी होता है जो अपने से बड़े और शक्तिशाली प्राणी के निकट एवं गहरा कार्यिकी सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। परजीवी इस प्राणी के ऊतकों से पोषण प्राप्त करता है। एक प्राणी को परजीवी तब कहा जाता है जब वह किसी जैविक जीव पर पूर्ण या अपूर्ण रूपसे उसके ऊपर निर्भर रहता है, अथवा दूसरे शब्दों में ये जीव दूसरे जीवों से अपना आहार प्राप्त करते हैं तथा उन्हें हानि पहुँचाते है। लाभ प्राप्त करने वाला जीव **परजीवी** (parasite) कहलाता है तथा हानि उठाने वाला जीव **पोषक** (host) कहलाता है।

i. सामान्यत: परजीवी दो प्रकार के होते हैं -

a. बाह्य-परजीवी

b. अन्त:परजीवी

(a) **बाह्य-परजीवी** (Ectoparasite): वे सब परजीवी जो अपने पोषक की बाहरी त्वचा या आवरण पर चिपक कर पोषक तत्वों का पोषणकरते हैं, इस वर्ग में आते हैं। उदाहरण - जूँमच्छर, खटमल आदि मानव के बाह्य परजीवी है। पशुओं पर भी अनेक परजीवी कटि चिपके रहते हैं।

(b) **अन्त:परजीवी** (Endoparasite) : इस वर्ग क परजीवी प्राणियों के शरीर में विभिन्न अंगों जैसे आत, देहगुहा, यकृत आदि के अन्दर प्रवेश करके पोषण लेते हैं। उदाहरण - फीता कृमि, मलेरियल पैरासाइट, एन्ट-अमीबा ऐस्केरिस आदि मानव के साधारण अन्त: परजीवी है।

परजीवन का प्रभाव परजीवी और पोषक की शारीरिक रचना, कार्यिकी और वितरण के अतिरिक्त अनेकों अन्य जैविक क्रियाओं पर पड़ता है। सबसे अधिक सफल परजीवी वे हैं जो अपने पोषक को बिना कोई हानि पहुँचाये या कम से कम हानि पहुँचाकर जीवन निर्वाह करते हैं

ii. परजीवियों के लक्षण (Characters of Parasites):

a. सफल परजीवन के लिये एक प्राणी अपने जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन तथा संरचनाओं में परिवर्तन अपने पोषक के अनुसार कर लेते हैं।

b. परजीवी अपने में ऐसे **संरचनात्मक परिवर्तन** ला सके जिससे पोषण कर सके, अपने को पोषक से चिपका सके या प्रजनन कर सके (अगर आन्तरिक परजीवी है)।

c. सभी आन्तरिक परजीवियों में **प्रजनन शक्ति** प्रबल होती है।

d. आन्तरिक परजीवियों में **स्वनिषेचन** व **द्विलैंगिता** सामान्य है, जिससे अत्यधिक जातियों की निरन्तरता को बढ़ाने में सफल होते हैं।

e. जटिल जीवन चक्र वाले परजीवी **द्वितीयक पोष** काम में लेते हैं।

3.3.2 क्रियात्मक अनुकूलन (Physiological Adaptation):

प्राणियों में क्रियात्मक अनुकूलन सदैव उपस्थित होता है, उदाहरण के लिये जलयान कृमि - टेरीडो (Teredo) लकड़ी के जहाजों को अत्यधिक हानि पहुँचाता है तथा लकड़ी को पचाने के लिये विशेष एन्साइम भी इसके शरीर में होते हैं। जिसके कारण विशिष्ट आवास का लाभ उठाता है। इसे **शिपवर्म** (ship-worm) भी कहते हैं।

सरीसृप, पक्षियों व थलीय कीटों में **यूरिक अम्ल** का उत्सर्जन जल के संरक्षण के लिए होता है। निर्जलीकरण को रोकने के लिये मरूस्थलीय आवास में यह जरूरी है।

जैव-मण्डल के सभी प्राणी अपने शरीर में क्रियाओं का एक संतुलन बनाये रखता है। जब कभी यह सन्तुलन अस्थायी रूप से बिगड़ जाता है तो इसे पुन: स्थापित कर लिया जाता है। वे क्रियायें जिनसे संतुलन पुनस्थापित किया जाता है, **समस्थैतिक विधियाँ** (homeostatic processes) कहलाती है। ये विधियाँ कार्यिकीय अनुकूलनों के उदाहरण है।

3.3.3 आचरणात्मक अनुकूलन (Behavioural Adaptation):

एक ही या अलग जातियों के प्राणी ज्यादातर समूहों व सह-समूहों का निर्माण करते हँ। जीवमण्डल में कोई भी प्राणी अलग नहीं रह सकता। प्रत्येक प्राणी अपने समुदाय के प्राणी पर निर्भर रहता है, इसी निर्भरता के कारण इनमें आचरणात्मक अनुकूलनों का निर्माण होता है। ये निम्न प्रकार के होते हैं -

i. **सामाजिकता** (Socialism) : ये अनुकूलन एक ही प्रजाति के प्राणियों में पाये जाते हैं। मधुमक्खियाँ, ततैया एवं दीमकों में श्रम-विभाजन के कारण समूह बन जाते हैं। मधुमक्खियों में तीन प्रकार की सामाजिक व्यवस्था है, वे अलग-अलग कार्यों के लिये अनुकूलित होती है। रानी अण्डे देती है, नर अण्डों को निषेचित करता है व श्रमिक भोजन को एकत्रित करता है।

ii. **सहभोजिता** (Commensalism) : इसमें दो अलग-अलग जाति के प्राणियों के मध्य इस प्रकार सम्बन्ध होता है कि वे दोनों एक दूसरे को हानि नहीं पहुँचाते। उदाहरण - समुद्री एनीमोन व साधु केकड़ा।

iii. **सहजीवन** (Symbiosis). विभिन्न जातियों के मध्य सहजीवी सम्बन्ध आवास, भोजन व परिवहन के कारण होता है। यह सम्बन्ध अनवरत, श्रणिक, अविकल्पी या विकल्पी प्रकार का होता है। दोनों को फायदा होता है।

iv. **परजीविता** (Parasitism) : यह परजीवी व पोषक प्राणी के बीच पाया जाने वाला सम्बन्ध है। जिसमें एक को फायदा व दूसरे को नुकसान होता है।

3.3.4 अनुहरण (Mimicry) :

अनुहरण एक प्राणी का दूसरे प्राणी से बाहरी परन्तु निकट समानता है या अनुहरण प्राणी की प्राकृतिक आवास से समानता है जिसमें प्राणी निवास करता है। यही अनुहरण प्राणी को सुरक्षा, छिपाना या अन्य लाभ प्रदान करता है। अनुहरण दो प्रकार के होते हैं -

i. सुरक्षात्मक अनुहरण (Protective Mimicry)

ii. आक्रामक अनुहरण (Aggressive mimicry)

i. **सुरक्षात्मक अनुहरण:** इसे प्रच्छन्न (concealing) तथा **भयसूचक** (warning) प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं।

   a. **प्रच्छन्न प्रकार :** प्राणियों में प्रच्छन्न या गोपक अनुहरण में प्राणी अन्य प्राणियों का रंग-रूप धारण कर उनके साथ छिपने का प्रयास करता है। कुछ प्राणी वातावरण के अनुसार अपने शरीर का वर्ण बदलकर शत्रुओं से अपनी रक्षा करते हैं। गोपक अनुहरण प्राकृतिक वरणवाद का उत्पाद हैं। प्रच्छन्नता प्राणियों में अति सामान्य होती है।

चित्र3.1 :टहनी पर उपस्थित एक जियोमेट्रिड केटरपिलर
(देखें यह टहनी की भाँति प्रतीत होता है।)

जियोमेट्रिड मोथ के कृमिरूपी केटरपिलर में अधिकतर सुरक्षात्मक वर्ण पाया जाता है तथा साथ ही इसका रूप कई पौधे जैसे **क्लीमेटिस** तथा पियर-वृक्ष की टहनियों तथा छोटी शाखाओं के अनुरूप या सदृश्य होता है।

b. **भयसूचक प्रकार :** इस तरह के अनुहरण में विषहीन व हानि नहीं पहुँचाने वाले प्राणी, आक्रामक, घातक व विषैले प्राणियों की तरह व्यवहार कर शत्रुओं से स्वय रक्षा करते हैं। विषहीन **हेटेरोडोन** वंश का सर्प अपने सिर को चपटा करके फुफहार मार कर व आक्रमण करने का व्यवहार विषैले सर्प जैसा करता है।
मोथ डरावने वास्प की तरह व्यवहार कर अपने को सुरक्षित रखता है।

ii. **आक्रामक अनुहरण :** यह अनुहरण ज्यादातर मांसाहारी प्राणियों में मिलता है इस अनुहरण से इन्हें शिकार पकड़ने में सहायता मिलती है। इसे गोपक (concealing) तथा मोहक (alluring) प्रकारों में विभाजित किया है।

a. **गोपक अनुहरण:** इस प्रकार के अनुहरण में प्राणी अपने पर्यावरण में अदृश्य होने के लिये कुछ गोपक वर्ण विकसित कर लेता है। उदाहरण - अमेरिकन बाज वहाँ के गिद्धों के साथ रहता है और उन्हीं के समान होता है। गिद्ध छोटे प्राणियों का शिकार नहीं करते हैं, अत: बाज छोटे प्राणियों का शिकार कर लेता है।

b. **मोहक अनुहरण:** इस अनुहरण में भक्षक शिकार को अपनी ओर आकर्षित करता है व स्वयं आवास में मिलकर अदृश्य हो जाता है। कुछ मकड़े आर्किड के पुष्पों के अनुहारक होते हैं अत: उनकी ओर आकर्षित होने वाले कीटों को ये आसानी से पकड़कर भक्षण कर जाते है।

3.4 आवासीय अनुकूलन (Habitat Adaptations)

3.4.1 समुद्रीय आवास के अनुकूलन (Adaptations of Marine Habitat).

समुद्रीय आवास पृथ्वी के 70%भाग पर उपस्थित है व जीवन के लिये सबसे बड़ा आवासीय क्षेत्र है। समुद्रों का पानी खारा होता है। इनमें 80%लवणता सोडियम तथा क्लोरीन के कारण होती है। समुद्रों में चरम तापमान -3^0Cसे 40^0Cतक होता है जबकि भारतीय महासागरों में तापमान 18^0Cसे 25^0Cतक होता है। प्रकाशीय भेदन के आधार पर समुद्री क्षेत्र अप्रकाशित, प्रकाशित व दुष्प्रकाशित क्षेत्र में विभक्त होता है। सूर्य चन्द्रमा के गुरात्वीय आकर्षण के कारण समुद्रों का जल स्तर नियमित रूप सेकमव अधिक होता रहता है यह प्राकृतिक घटना ज्वार (tide) कहलाती है।
संसार का सबसे विस्तृत प्राकृतिक निवास समुद्रो और महासागरों मे है। इसमें अनेक समुदाय निवास करते हैं व भिन्न प्रकार की अनुकूलन की विशेषताएँ प्रदर्शित करते हैं

i. प्लवकयि अनुकूलन (Planktonic adaptations)
ii. तरणकीय अनुकूलन (Nektonic adaptations)
iii. गहरे समुद्रिक अनुकूलन (Deep sea adaptations)

i. **प्लवकयि अनुकूलन :** ये छोटे जलीय व समुद्री जीव हैं जो हवा या पानी के प्रवाह पर निर्भर करते हैं। ये समुद्रों या जलाशयों के जल पर पाये जाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं, वनस्पति प्लावक उदाहरण सूक्ष्मदर्शीय पादप जैसे श्वाल, प्राणी प्लावक जैसे प्राणियों के लार्वा व अण्डे। ये अन्य प्राणियों के भोजन के रूप में काम आते हैं।
प्लवकयि जीवधारियों को वेलापवर्ती प्रदेश में रहने के कारण तैरने की समस्या सबसे प्रबल होती है। प्लवक की शरीर-रचना का घनत्व पानी के घनत्व से अधिक होने के कारण ये डूब सकते हैं,

अत: इनको तैरते हुए रहने के लिये कुछ विशेष प्रकार के अनुकूलन अपनाने पड़ते हैं जो निम्नलिखित हैं -

a. साधारणत: प्लवक का शरीर आकार में छोटा होता है। ये अधिकतर बिम्बाकार, थैलाकार, गोल, कुण्डलित सुई के आकार के व चेनाकार के होते हैं।
b. कुछ प्राणियों का आकार सुई के समान हो जाता है। यदि इस प्रकार के प्लवक पानी के ऊर्ध्वाधर दशा में आ जायें, तो उनके डुबने की सम्भावना ज्यादा होती है।
c. कुछ डायटम अपनी कोशिकाओं में तेल आदि रखते हैं, जिससे उनका घनत्व कम हो जाता है। तेल की उपस्थिति के कारण इनका विशिष्ट गुरुत्व कम हो जाता है जिससे सतह पर तैरने में सहायता मिलती है।
d. प्लवकीय जातियों का कंकाल हल्का एवं पतला होता है। इनका बाही कंकाल अकैल्सीभूत होता है।

ii. **तरणकयि अनुकूलन :**तरणक या नेक्टॉन तीव्र तैराकी होते हैं तथा अपने स्थान को इच्छा के अनुसार बदल सकते हैं। इसलिये सभी नेक्टान प्राणी होते हैं तथा वे सभी प्रकार जल की सतह तथा तल में पाये जाते हैं। जैसे- स्थ्यिड्स (Squids), मछलियाँ, व्हेल।

इस श्रेणी में तैरने वाले प्राणी सम्मिलित होते है जो बहिस्तल पर पाये जाते हैं। इनमें दक्ष चलनांग उपस्थित होते हैं जिनकी. सहायता से ये लहरों एवं ज्वार के विरुद्ध तैरने में समर्थ होते हैं। इनका मांसपेशी तन्त्र काफी विकसित होता है। तन्त्रिका तन्त्र व प्रकाशग्राही अंग भी विकसित होते हैं।

iii. **गहरे सामुद्रिक अनुकूलन:** गहरा समुद्रीक आवास एक विशेष प्रकार की प्राणीजात प्रदर्शित करता है क्योंकि यहाँ पर पर्यावरणीय परिस्थितियाँ स्थिर होती है। इस भाग की प्रमुख विशेषताएँ निम्न है

a. समुद्री सतह के गहरे आवास की तरफ लगातार ताप कम हो जाता है
b. गहरे समुद्रीय आवास से पहले प्रकाश विसरित व अवशोषित हो जाता है, गहरे भाग में नहीं पहुँच पाता है। प्राणियों द्वारा उत्पन्न **जैवसंदीप्तता** (squids) के कारण ही प्रकाश उपस्थित होता है।
c. गहरे समुद्र में लवणता एकसमान होती है। यह 3.47% से से 3.49%तक होती है।
d. गहरे समुद्र में ऑक्सीजन कम होती है। भोजन की भी कमी पायी जाती है क्योंकि प्रकाश की अनुपस्थिति के कारण वनस्पति नहीं पाई जाती है।
e. गहरे पानी में पाये जाने वाले ज्यादातर प्राणी छोटे होते हैं, ये कमजोर व नाजुक भी होते हैं।
f. गहरे समुद्र में रहने वाली मछलियों की पूँछ चाबुकनुमा हो जाती है, जैसे-काईमेरा (bioluminescence)।
g. ये प्राणी ज्यादातर शिकारी होते हैं अर्थात् दूसरे को मारकर खा जाते हैं क्योंकि यहाँ वनस्पतियों का अभाव होता है।

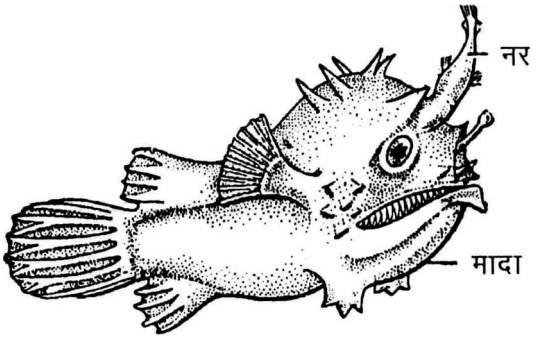

चित्रे3.1: एंग्लर मछली में लैंगिक अनुकूलन

h. गहरे समुद्री आवास में रहने वाले प्राणियों में पार्श्व रेखा तन्त्र (Chimera) अधिक विकसित होता है। यह संवेदाग के रूप में कार्य करता है 1

i. तापमान कम होने के कारण **उपापचय दर** (metabolic rate) कम होती है।

j. लैंगिक अनुकूलन. इस आवास में जीव समष्टि-घनत्व (biodensity) कम होती है इसलिये साथी को ढूँढना कठिन कार्य है। **एंग्लरमछली** (Photcrynus spiniceps) में नर सदस्य प्रजनन काल में मादा के शरीर पर चिपक जाता है।

k. अधिकतर मछलियों में बहु पीतकी अण्डे पाये जाते हैं।

l. कुछ मछलियों में वायु आशय (air bladder) उपस्थित होते हैं।

3.4.2 अलवणजलीय आवास के अनुकूलन (Adaptation of fresh water habitat):

जल प्रवाह के आधार पर स्वच्छ जल दो उपवर्गो में विभाजित किया गया है -

i. गतिमय जलीय आवास के अनुकूलन (Adaptations of Lotic Habitat)

ii. स्थिर जलीय आवास के अनुकूलन (Adaptations of Lentic Habitat)

i. **गतिमय जलीय आवास के अनुकूलन:** इसमें पानी बराबर बहता है जैसे- झरने, सरिता, नदियाँ आदि। अत: इसमें रहने वाले प्राणियों को कुछ विशेष प्रकार के अनुकूलन अपनाने पड़ते हैं.

a. जन्तुओं में ज्यादातर **अंकुश** (hooks) एवं **चूषक** (suckers) होते हैं, जिनकी सहायता से यह किसी भी आधार से मजबूती से चिपक जाते हैं, जैसे- **सिम्यूलियम** (Simulium) के **डिंभक** (larvae)।

b. ज्यादातर जन्तुओं में धारा-रेखन पाया जाता है अर्थात् इनके शरीर आगे से चौड़े एवं गोल तथा पश्च-भाग में धीरे-धीरे नुकीले होते हैं ताकि शरीर के ऊपर पानी के बहाव में कम से कम प्रतिरोध हो।

c. जन्तुओं के लार्वा स्वतंत्र रूप से बहते जल में तैर सकते हैं। कुछ प्राणियों के अण्डे में योक (yolk) की मात्रा अधिक होती है।

d. इन प्राणियों में से अधिकांश में धनात्मक स्पर्शानुचलन पाया जाता है अर्थात् इनमें सतह पर चिपकने या अपने शरीर को सतह के निकट सम्पर्क में रखने का जन्मजात व्यवहार प्रतिरूप पाया जातां है।

e. जलीय कीटों में वायु-श्वसन के लिये विशेष रचनाएँ जैसे त्वचा, श्वसनीय नलिका स्पाइरेकल्स, गिल्स, ट्रेकिया आदि होते हैं।

ii. **स्थिर जलीय आवास के अनुकूलन :** इसमें वे जल स्रोत आते हैं जिनमें जल प्रवाह अनुपस्थित होता है व जल एक स्थान पर स्थिर होता है। इसमें जल का क्षैतिज प्रवाह (horizontal movement) नहीं होता है। जैसे- झील, तालाब। ये मृदुजल के प्राकृतिक स्रोत है। इनका समुद्री जल से कोई सम्पर्क नहीं होता है।

किसी क्षेत्र विशेष में सभी झीलों (प्राकृतिक) एवं तालाबों के समान ही भूगर्भीय उत्पत्ति एवं सामान्य गुण होते हैं। धाराओं की अनुपस्थिति के कारण जल की सतह पर रहने वाले प्राणियों को कॉलोनी बनाने का अवसर मिलता है तथा वायुमण्डलीय ऑक्सीजन श्वसन के लिये उपयोग में लाई जाती है। सतह के नीचे के क्षेत्र, जहाँ तेज प्रकाश होता है, अधिक पादप मिलते हैं। इस क्षेत्र में ऑक्सीजन की सान्द्रता बहुत अधिक होती है।

इस क्षेत्र मे पाये जाने वाले कीटों में से अधिकांश दो प्रकार से वायुमण्डलीय ऑक्सीजन को श्वसन के लिये होते है : -

a. श्वास-नलियों या साइफन (siphons) द्वारा जो सतही परतों पर प्रवेश कर सकती है।
b. समय-समय पर सतह पर आकर स्वच्छ जल को हवा के साथ परिवहित करते हैं।
c. अधिकांश तलैया एवं स्थायी जल पर कीचड़ होता है, जहाँ स्थायी निवासी कम होते हैं, क्योंकि वहाँ भोजन तथा ऑक्सीजन की कमी होती है। अगर पानी भली प्रकार वायु-युक्त हो तो अक्सर द्विकपाटी मौलस्का, जो गिल्स द्वारा श्वसन करते हैं, मिलते हैं। उथले जल में पाये जाने वाले वर्टिब्रेट्स में मछलियाँ ही सबसे विशिष्ट निवासी है।

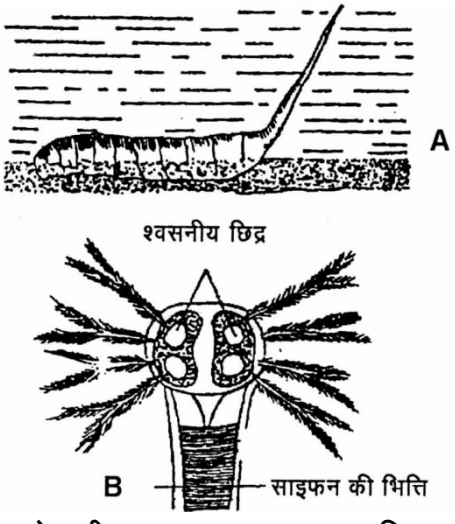

चित्र 3.2 : (4) मैगट् (कीड़ा) जो नली (siphon) द्वारा श्वसन-किया करता है। यह नली पानी की सतह तक ले जायी जाती है। (8) श्वसन नली का सिरा (आवर्धित - Magnified)। बाल (hair) जैसी संरचनाएँ पानी को श्वसन- छिद्रों में प्रवेश करने से रोकती है।

3.4.3 स्थलीय अनुकूलन (Terrestial adaptations) :

स्थलीय पर्यावरण अन्य आवासों की तुलना में ज्यादा जटिल होता है, इसमें पर्यावरणीय अन्तःक्रियाएँ ज्यादा होती है, इस कारण विभिन्न प्रकार के विचलन इस आवास में दृष्टिगोचर होते हैं यहाँ के अजैविक कारक व जैविक कारक भी कई प्रकार का विचलन दिखाते हैं, इसी कारण यहाँ प्राणी जात में अधिक विविधताएँ पाई जाती है। स्थलीय आवास पृथ्वी एवं वायु के द्वारा

ऊष्मा अवशोषण के कारण गर्म हो जाता है, साथ ही जल की तुलना में ऊष्मा की प्राप्ति एवं क्षय जलीय आवास की तुलना में अधिक तेजी से होता है। इस कारण स्थलीय आवास में दैनिक तापीय परिवर्तन अधिक प्रभावी होते हैं। तापीय परिवर्तन के आधार पर **समतापी** (hemeothermal) प्राणियों में अपने शरीर के ताप को स्थिर बनाये रखने की क्षमता है, इसी प्रकार **असमतापी** (poikilothermal) प्राणियों में वातावरण का तापमान कम होने के कारण **शीत निष्क्रियता** (hibernation) की प्रक्रिया सम्पन्न होती है, अत: प्राणियों की विविधताएँ तापमान के कारण भी प्रभावित होती है।

जलीय सामुदायिक आवासों की तुलना में स्थलीय आवास अधिक भिन्नता दर्शाते हैं और स्थानीय विविधता एवं विशिष्ट वातावरण के आधार पराये अनेकों उपवर्गों में विभाजित किये गए हैं। स्थानीय विविधता का मुख्य आधार भौगोलिक परिस्थितियों की भिन्नता है, जिनके कारण वर्षा, वायुवेग तापमान आदि प्राकृतिक कारक सभी स्थानों पर समान नहीं होते हैं

i. रेगिस्तानी जन्तुओं का अनुकूलन (Desert Adaptation)
ii. घासस्थल का अनुकूलन (Grassland Adaptation)
iii. वन्य प्राणियों का अनुकूलन (Forest Animal Adaptation)

i. **रेगिस्तानी जन्तुओं का अनुकूलन :** रेगिस्तान में रहने वाले प्राणी तथा पाये जाने वाले पौधों को मुख्यत: तीन समस्याओं का सामना करना पड़ता है -

a. नमी या आर्द्रता प्राप्ति।
b. नमी या आर्द्रता संरक्षण।
c. भौतिक तथा कार्बनिक वातावरण का सामाना करना।

मरूस्थलीय प्राणी जल के सभी स्रोतों का उपयोग करने का प्रयास करते हैं जैसे टर्टल व शशक सरस व गूद्देदार पादप खाते हैं। मरूस्थलीय प्राणियों में निम्न पानी संरक्षण उपाय पाये जाते हैं -

a. मरूस्थलीय प्राणियों की त्वचा मोटी होती है इसलिये स्वेदन में कम पानी की हानि होती हैं।
b. इन प्राणियों में पसीना ग्रन्थि या तो अनुपस्थित होती है या अविकसित होती है।
c. कुछ प्राणियों के त्वचा अपारगम्य होती है।

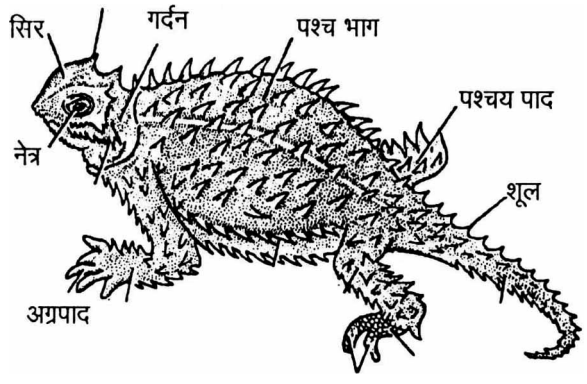

चित्र 3.3 : कटिदार टोड, फ्राइनोसोमा

d. ऊँट अपने आमाशय के रूमन में पानी को संचित रखता है। इसकी दीवारों पर विशेष प्रकार की जल कोशिकाएँ होती है। पानी ग्रहण करने पर इसका आमाशय तथा जल कोशिकाएँ पानी से भर जाती है। इस प्रकार संचित पानी कई दिनों तक उपयोग में लाया जा सकता है।

e. स्केल व कांटे मरूस्थलीय छिपकली मोलोश (Molach) व कांटेदार टोड, फ़ाइनोसोमा (Phrynosoma) में विकसित होते हैं।

ii. **घासस्थल का अनुकूलन :** इसमें निम्न अनुकूलन पाये जाते हैं :

a. इन क्षेत्रों में स्तनधारी **धाबी** (cursorial) या **बिलकारी** (burrowing) स्वभाव के लिये अनुकूलित होते हैं।

b. झुण्डों में समुच्चय बनाना इनका अभिलाक्षणिक गुण होता है। खुले प्रकार के आवास में यह स्वभाव एक सुरक्षा-साधन का कार्य करता है।

c. कई प्राणियों में **रक्षीरंजन** सुविकसित होता है।

d. पक्षियों में प्रवास सुविकसित रूप में पाया जाता है।

e. छोटे स्तनधारियों, सरीसृपों, अभयचारियों एवं अकशेरूकियों में शीतनिष्क्रियता पायी जाती है।

iii. **वन्य प्राणियों के अनुकूलन :** वन में रहने वाले प्राणियों में मुख्य रूप से निम्न अनुकूलन पाये जाते हैं -

a. वन्य प्राणी प्राय: अधिक बलवान एवं पेशीय होते हैं।

b. वृक्षीय स्वभाव का विकास इन प्राणियों में स्पष्ट पाया जाता है।

c. इन प्राणियों में **रक्षीरंजन** (protective colouration) पाया जाता है।

d. वन्य प्राणियों में जनन स्वभाव जीवन के अनुकूलन होते हैं।

e. इनमें **श्रवण संवेदांग** (sense of hearing) अत्यधिक सुविकसित होता है।

बोध प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1. परजीवी के अन्दर उच्च विकसित स्वरूप होता है -
   (a) तन्त्रिका तन्त्र
   (b) संवेदी अंग
   (c) जननांग
   (d) प्रजनन अंग ( )

2. जन्तु जो समुद्र के नीचे निवास करते हैं, कहलाते हैं
   (a) लैन्टिक
   (b) लोटिक
   (c) बैन्थिक
   (d) पैलेजिक ( )

3. वे परजीवी जो कोशिका के अन्दर जीवन व्यतीत करते हैं, कहलाते हैं -
   (a) अन्त : कोशिकीय
   (b) अन्तराकोशिकीय
   (c) अवकोशीय
   (d) बाह्य कोशिकीय ( )

4. कौनसा सम्बन्ध भाग लेने वाले दोनों सजीवों के लिये हानिकारक नहीं है?
   (a) परजीविता
   (b) सहजीविता
   (c) परभक्षी

(d) इनमें से कोई नहीं ( )

5. निम्न में से कौनसा प्रवासी जन्तु है?

(a) साल्मन

(b) ईल

(c) झींगा

(d) उपरोक्त सभी ( )

3.5 सारांश(Summary)

अकशेरूकियों मे पायी जाने वाली अनुकूलताओं के बारे में हमने जाना। इसकी एक कोटी है परजीविता, जहाँ एक जीवधारी किसी दूसरे जीव धारी पर भोजन के लिये आश्रित रहता है। ये बाह्य परजीवी या अन्त : परजीवी होते हैं। प्राणियों में क्रियात्मक अनुकूलन सदैव पाया जाता है। इसी प्रकार अनुहरण एक प्राणी की दूसरे प्राणी से बाहरी परन्तु निकट समानता है। जो कि सुरक्षात्मक भी है और आक्रामक भी। आवासीय अनुकूलता के अन्तग्रत समुद्रीय आवास, स्थलीय आवास व अलवणजलीय आवास आते हैं। समुद्रीय आवास प्लवकयि, तरणकयि व गहरे समुद्रिक अनुकूलता में विभक्त है। जबकि अलवणीय आवास, गतिमय जलीय व स्थिर जलीय आवास में विभाजित है। स्थलीय भी रेगिस्तानी, घासस्थल व वन्य प्राणियों के अनुकूलन में विभाजित है।

3.6 शब्दावली (Glossary)

-अकैल्सीभूत	Uncalcified
वेलापवर्तीप्रदेश	Pelagic zone
परजीवी	Parasite
समस्थैतिक विधियां	Homeostatic processes
अनुहरण	Mimicry
गोपक	Concealing
मोहक	Alluring
प्लवकीय	Planktonic
तरणकीय	Nektonic
जैवसंदीप्तता	Bioluninescence

3.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली, रंगा एवं लौरी : प्राणी विविधता तथा उद्विकास रमेश बुक डिपो, जयपुर
2. डॉ. वी.एस. पँवार Diversity of Animals and Evolution, कॉलेज बुक सेन्टर, जयपुर

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to Self-assessment Questions)

1. (द) 2. (स) 3. (ब) 4. (ब) 5. (द)

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions

1. अनुकूलता को परिभाषित कीजिये।
2. परजीवी व परजीविता में क्या अन्तर है?
3. कार्यिकी अनुकूलन का वर्णन कीजिये।
4. स्थिर व बहने वाले जल में पाये जाने वाले प्राणियों के अनुकूलन लिखिये।

इकाई 4 : जीव संरक्षण तथा प्रबंन्धीकरण (Bio-conservation)

इकाई की रूपरेखा (Out-line of Unit)

4.0 उद्देश्य (Objectives)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

4.2 वन्य प्राणियों का महत्व (Significance of Wild Life)

4.3 विलुप्त होते वन्य प्राणी तथा पौधे (Vanishing and Threatened wild Animals and Plants)

4.4 वन्य प्राणी संरक्षण तथा प्रबन्धीकरण (Wild-life conservation and managment)

4.5 वन्य प्राणी के प्रबन्धीकरण के प्रयास (Wild-life Management efforts)

4.6 सारांश (Summary)

4.7 शब्दावली (Glossary)

4.8 संदर्भ ग्रंथ (Futher Readings)

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to self assessment questions)

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise questions)

4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न बिन्दु जानने योग्य हो जायेंगे :

- वन्य प्राणियों के महत्व के कारण जीव संरक्षण क्यों आवश्यक है।
- कौनसे प्राणी तथा पादप विलुप्त होने के कगार पर है।
- वन्य प्राणियों के संरक्षण का प्रबन्धीकरण किस प्रकार किया जा सकता है।
- वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिये अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर क्या प्रयास किये जा रहे हैं।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

वन्यजीवों की उपयोगिता के कारण इनका संरक्षण हमारी संस्कृति का विशिष्ट अंग रहा है। अनेक. पर्व-त्यौहारों पर हम उनकी पूजा-अर्चना भी करते हैं। मोर को सरस्वती देवी, सिंह को महाशक्ति काली के वाहन तथा नरसिंह अवतार के रूप में मान्यता है। हाथी इन्द्र को प्रिय है। पौराणिक विश्राम है कि आठ हाथी इस पृथ्वी की आठों दिशाओं के प्रहरी हैं। यह भी मान्यता है कि पृथ्वी शेषनाग पर स्थित है। हिरण का ब्रह्मा एवं गरुड़ का विष्णु के साथ पौराणिक सम्बन्ध है। सूअर को पृथ्वी की रक्षा के लिए वराह अवतार के रूप में मान्यता है। ज्योतिष शास्त्र की बारह राशियों में कई राशियाँ पशुओं के नामों पर हैं। अनेक ग्रंथ प्राकृतिक जीवों तथा वनों के वर्णन से भरे हैं।

सामान्यत: वनों में पाये जाने वाले जन्तुओं को वन्य प्राणी कहा जाता है। यद्यपि सीमित अर्थों में वन्य प्राणी शब्द का प्रयोग केवल आखेट योग्य जन्तु तथा समूरधारी (fur bearing) कशेरुकी

प्राणियों तथा आखेट प्रजातियों को सीधे प्रभावित करने वाले पौधों तथा अन्य लघुतर जन्तुओं के संदर्भ में किया जाता है, परन्तु यथार्थ में इसके अन्तर्गत "किसी भी या सभी आकृष्ट तथा अपालित जीवन (Fur bearing)" का समावेश होता है। इन दोनों धारणाओं में से बाद वाली धारणा वन्य जीवन की वृहद संकल्पना है। जिसके अन्तर्गत " अ-आखेख्य (non-domesticated) प्रजाति' ' को भी सम्मिलित किया जाता है तथा वन्य जीवन का अध्ययन उसकी पूर्ण सम्पूर्णता के साथ वन्य जीवन पारिस्थितिकी तन्त्र के रूप में किया जाता है। इस प्रकार वन्य जीवन को संक्षेप में " अपने प्राकृतिक पर्यावरण में उपस्थित जंगली पौधों तथा प्राणियों" के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

4.2 वन्य प्राणियों का महत्त्व (Significance of Wild Life)

वन्य प्राणी हमारे जैव परिमंडल का एक अंग हैं, अत: उनकी उपस्थिति तथा अनुपस्थिति का वही महल है जो कि जैव परिमंडल की अन्य इकाइयों या कारकों का हो सकता है। इसके अतिरिक्त वन्य प्राणी कई और कारणों से भी हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, जिनमें से कुछ निम्नानुसार हैं-

1. **व्यावसायिक मूल्य** (Commercial Value) वन्य प्राणियों से मनुष्य को भोजन, वस्त्र बनाने के लिए रेशे तथा खाल, आश्रय या मकान या तम्बू बनाने की सामग्री तथा अन्य उत्पाद प्राप्त होते हैं। कुछ क्षेत्रों तथा कुछ जातियों **(स्पेशीज)** के सन्दर्भ में तो वन्य प्राणियों की उपयोगिता सीधे- सीधे बाजार में बेचे जाने योग्य उत्पादन प्रदान करने के कारण मुख्यतया व्यावसायिक ही है। **व्हेल मछली** तथा **समूर सील** के लिए यह बात शत-प्रतिशत सत्य है। **समुद्री ऊदबिलाव** (Sea otter) अपनी रोयेंदार खाल (pelt) के कारण लगभग लुप्त होने के बिन्दु तक पहुँच गया था। हाथी दाँत के बाजार मूल्य के कारण अफ्रीका के कुछ भागों में हाथियों का भविष्य खतरे में एक़ गया है। **गेंडा** तथा **हाथी** के सींग की माँग अधिक होने के कारण उनकी रक्षा कर पाना कठिन हो गया है। इसके अतिरिक्त मांस के लिए भी वन्य-प्राणियों की बहुत उपयोगिता है।

2. **मनोरंजन में उपयोगिता** (Recreational Value as Game) : वन्य प्राणियों का **आखेट** सदा ही से मानव समाज के मनोरंजन का एक प्रमुख साधन रहा है। अनेक देशों में तो वन्य प्राणियों की आर्थिक उपयोगिता उनके माँस या खाल से भी अधिक उनके आखेट के लिए होती है। आखेट के अतिरिक्त वन्य प्राणियों का **सौंदर्यात्मक आकर्षण** भी लोगों को लुभाता हैं। इसी कारण विश्व के सभी देशों में राष्ट्रीय उद्यानों तथा वन्य प्राणी संरक्षण केन्द्रों की संख्या में वृद्धि हुई है। संरक्षित क्षेत्रों में आखेट की इजाजत नहीं होती है फिर भी लाखों लोग वन्य प्राणियों को उनके प्राकृतिक आवासों में देखने तथा उनकी फोटोग्राफी करने के उद्देश्य से इन स्थानों पर आते हैं।
आर्थिक रूप से सीमित साधनों वाले परन्तु वन्य जीवन की दृष्टि से धनी देशों में **विश्व पर्यटन व्यवसाय** की काफी गुंजाइश रहती है। प्राथमिक रूप से वन्य प्राणियों को देखने के लिए आये पर्यटकों द्वारा जो मुद्रा आती है वह अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में प्रवाहित हो उसे शक्तिशाली बनाती है, यद्यपि उसका वन्य जीवन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है।

3. **प्रायोगिक उपयोगिता** (Practical Value) : विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों में वन्य प्राणियों को सदा से उपयोग में लिया जाता रहा है। जीव विज्ञान तथा चिकित्सा के क्षेत्र में शोध में प्रगति विभिन्न वन्य प्राणियों के अध्ययन के फलस्वरूप ही सम्भव हुई है। उदाहरणार्थ, रीसस बन्दर

(Rhesus Monkey) के अध्ययन से मानव रक्त के रासायनिक संगठन तथा रोगों के बारे में ज्ञान में वृद्धि हुई है।

पारिस्थितिक दृष्टि से भी वन्य प्राणियों की उपयोगिता अत्यन्त महत्व की है। मानव गतिविधियों के फलस्वरूप प्रकृति के पारिस्थितिक तंत्र में होने वाले परिवर्तनों के अध्ययन में वन्य प्राणियों से युक्त **अविक्षुब्ध** (Un-disturbed) आवास स्थलों का तुलनात्मक अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराता है।

4. **आनुवंशिक पूल** (Genetic Pool) इसके अतिरिक्त पृथ्वी पर उपस्थित प्रत्येक वन्य-जाति स्पीशीज़ **आनुवंशिक सामग्री** के एक भंडार का प्रतिनिधित्व करती है। प्रत्येक स्पीशीज़ **अप्रतिस्थापनीय** (irreplaceable) है, इस कारण अगर वह लुप्त होती है तो उसे।उन: उत्पन्न करना असम्भव है। इनमें से प्रत्येक उस आनुवंशिक सूचना की भंडारगृह है जो पता रूप में भविष्य में हमारे महत्व की सिद्ध हो सकती है।

4.3 विलुप्त होते वन्य प्राणी तथा पौधे (Vanishing and Threatened wild Animals and Plants)

वन्य प्राणियों के शिकार पर रोक के बावजूद भी विश्व भर में अनेक प्राणी तथा पादप स्पेशीज़ तेजी से विलुप्त होने की अवस्था की ओर बढ़ रही हैं। इसका कारण यह भी है कि वन्य प्राणियों का अनियन्त्रित शिकार तो सभी जगहों पर रोक दिया गया है पर वनों का विनाश अभी भी जारी है। वनों के विनाश के कारण वन्य प्राणियों के आवास-स्थल कम हो ते हो रहे हैं। सुरक्षित तथा अनुकूल आवास-स्थलों के अभाव में वन्य प्राणी तेजी से नष्ट होते जा रहे हैं। कुछ विलुप्त होते प्राणी तथा पौधों का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

1. **प्राणी. 'रेड डाटा बुक'** (Red data book) नामक पुस्तक में विलुप्ति का खतरा झेल रहे प्राणी तथा पक्षियों की सूची में 600 प्रजातियों (स्पेशीज) के नाम दिये गये हैं। इनमें से कई ऐसी स्पेशीज़ हैं जिसके सदस्यों की संख्या 100 से नीचे हैं तथा कुछ की तो संख्या सिर्फ 10 ही है। इससे इन स्पेशीज के अस्तित्व के सम्भावित खतरे का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

यद्यपि आजकल हमारे देश में वन्य प्राणियों के संरक्षण को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा है, पर कुछ वर्ष पूर्व तक इसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। यह एक दुःखद तथ्य है कि ईसा सम्वत् के प्रारम्भ से अब तक भारत में लगभग 200 प्राणी तथा पक्षी स्पेशीज नष्ट हो चुकी हैं। अभी भी लगभग 250 अन्य स्पेशीज विनाश के कगार पर हैं। विलुप्त होने के खतरे से घिरे कुछ प्रमुख प्राणी हैं- **कृष्णसार** (Black buck), **चिंकारा** (Chinkara), **भेड़िया** (Wolf), **अनूपमृग** (Swamp deer), **नीलगाय** (Gir lion), **भारतीयकुरंग, बारहसिंगा** (Crocodile), **बाघ** (Tiger), **गेंडा** (Rhinoceros), **गिर सिंह** (Gir lion), **मगर** (Crocodile), **हंसावर** (Flamingo), **हवासिल** (Pelican), **सारंग** (Bustard), **श्वेत सारस** (White crane), **धूसर बगुला** (Grey heron) तथा **पर्वतीय बटेर** (Mountain quail)।

हमारे देश के अतिरिक्त अन्य देशों में भी वन्य प्राणी संकट के दौर से गुजर रहे हैं। अमेरिका के **दक्षिण पर्वतीय सिंह** (Eastern mountain lion), **यात्री कबूतर** (Passenger pigeon), **कैरोलिन तोता** (Carolin parkeet) तथा **क्षुपी मुर्गी** (Neath hear) इत्यादि तो विलुप्त हो

चुके हैं। किसी समय हजारों की संख्या में पाये जाने वाले **श्वेत पुंछ प्रेअरी कुत्ता** (White tailed prairie dog) आजकल दुर्लभ प्राणी हो गया है। इसके अतिरिक्त **कुक्कुट सारस** (Whooping crane), **डार्टर घोंघा मछली** (Snail darter fish), **मूज** (Moose), **ग्रिजली भालू** (Grizzly bear), **कैरीबू** (Caribou), **कशीका** (Marten), **गजदन्त चोंच कठफोड़वा** (Ivory billed), **हवाई राजहंस** (Hawian geese), **फ्लोरिडा तेंदुआ** (Florida panther) इत्यादि प्राणियों का अस्तित्व भी खतरे में है।

ऐसे ही **अफ्रीकी चीता** (Cheeta), **श्याम गेंडा** (Black rhino), **अफ्रीका शेर** (African lion), **गोरिल्ला** तथा **रूसी ध्रुवीय भालू** (Polar bear) एवं **साइबेरिया का सारस** (Siberian crane) इत्यादि विलुप्त हो रहे प्राणियों की गिनती में आते हैं।

2. संकटग्रस्त जीव - जन्तु

अन्तरराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ की रेड डाटा बुक के अनुसार भारत में स्तनपायियों की 16 जातियाँ, पक्षियों की पाँच जातियाँ और सरीसृपों की तीन जातियाँ खतरे में पड़ी हैं, इनका विस्तृत विवरण अग्र सारणी में दिया गया है

अन्तरराष्ट्रीय प्रकृति संघ की रेड डाटा बुक के अनुसार खतरे में पड़ी प्रजातियों की सूची में शामिल किये गये भारतीय पशुओं और पक्षियों की सूची

क्र:सं:	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	देश का क्षेत्र जहाँ वे पाये जाते हैं
1	2	3	4
क-स्तनपायी			
1.	सिंहपुच्छी बंदर	मकाका साइलेनस	पश्चिमी घाटों में सदाबहार वन,
2.	सुनहरा लंगूर	प्रेसबाइटिस गोई	असम, भूटान के साथ हिमालय की तराई
3.	दृढ़लोमी खरगोश	केप्रोलेगस हिसीपडस	हिमालय की तराई, असम
4.	भारतीय डालफिन	प्लेटेनिस्टा इंडि	गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ
5.	मालाबार बड़ा धारीदार मुश्कबिलाव	विवेरा मेंगास्पिला	केरल का तटवर्ती क्षेत्र
6.	एशियाई सिंह	पैंथरा लिओ	गिर राष्ट्रीय उद्यान
7.	तेंदुआ	पैंथरा पार्डस	सम्पूर्ण भारत में
8.	बाघ	पैथरा टाइग्रिस	सम्पूर्ण भारत में
9.	हिम तेंदुआ	पैंथरा अंसिया	लद्दाख से सिक्किम तक उच्च हिमालय में
10.	भारतीय हाथी	एलिफास मेक्सिमस	उत्तर प्रदेश से मेघालय तक हिमालय की तराई, बिहार, उड़ीसा और दक्षिण के चार राज्य
11.	भारतीय जंगली गधा	इक्वस हैमियोनस	कच्छ का रन
12.	पिगमी सूअर	सस सल्वानियस	मानस बाघ रिजर्व तथा उसके

			आसपास क क्षेत्र
13.	दलदली सुअर	सस सल्वानियस	मानस बाघ रिजर्व तथा उसके आसपास का क्षेत्र
14.	हंगुल	सरक्स एलेक्स	कश्मीर घाटी का उत्तरी भाग
15.	मणिपुरी ब्रो एंटलर्ड	सरक्स एल्डी	काइबुल लामजाओ राष्ट्रीय उद्यान, मणिपुर
16.	जंगली एशियाई	बुबालस बुबालिस	असम, अरुणाचल प्रदेश, मध्य जल भैंसा प्रदेश, पूर्वी महाराष्ट्र, पश्चिमी उड़ीसा के तराई क्षेत्र
ख - पक्षी			
1.	सफेद पंखों वाला जंगली बत्तख	कैरिना स्कु टूलाटा	असम के पूर्वी जिले और अराणाचल प्रदेश
2.	चीर फीजेन्ट	केट्रेयस बलिची	कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल और कुमाऊँ
3.	वेस्टन ट्रेगोपान	ट्रेगोपान मेलानोसेफलेस	कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल और कुमाऊँ
4.	भारतीय सोन चिड़िया	अर्डेओटिस नाईग्रिसेप्स	राजस्थान के मरु क्षेत्र
5.	जोर्डन कर्सर	कर्सेरियस बिटोक्वेटस	आन्ध्र प्रदेश
ग - सरीसृप			
1.	एस्च्यूरियन घड़ियाल	क्रोकोडायलस पोरोसस	भारत का पूर्वी समुद्र तट और अण्डमान व निकोबार
2.	घड़ियाल	गेबिथालिस गंजेटिकस	गंगा, महानदी और ब्रह्मपुत्र
3.	रिवर टेरापिन	बटागुर बास्का	दक्षिण - पश्चिमी बंगाल

उपरोक्त के अतिरिक्त, शीत ऋतु के दौरान भारत में आने वाले प्रवासी पक्षियों की प्रजातियों को भी खतरे में पड़ी प्रजाति के रूप में माना गया है, ये हैं : साइबेरियन क्रेन (ग्रूस ल्यीसो- जेरानस) और ब्लैक - नेक्ड क्रेन **(ग्रुस नागरी कोलिस),** पहली प्रजाति शीत ऋतु में केवलादेव घना राष्ट्रीय उद्यान भरतपुर में आती है और दूसरी प्रजाति लद्दाख और अराणाचल प्रदेश के कुछ भागों में आती है।

3. **पौधे-** प्रकृति तथा प्राकृतिक संसाधनों के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources) के उत्तर - जीविता सेवा आयोग (Survival Service Commission) द्वारा प्रकाशित रेड डाटा बुक (Red data book), में विलुप्त प्राय: पौधों के नामों की सूची दी गई है। उसके अनुसार विश्वभर में लगभग 20, 000 पादप जातियाँ विलोपन का खतरा झेल रही हैं। इनमें से कुछ प्रमुख हैं- **ऐकेशिया कोआ** (Acacia koa), **मैस्ककारीना रिवेन्जिलिनी** (Mascarena revanglinil), लोडोइसिआ स्केचेलारम (Lodoicea schellarum), **सिप्रिपीडियम कैलकोलस** (Cypripedium calcoelus)इत्यादि। हमारे देश में भी पिछले कुछ वर्षो में कृषि के तीव्र विस्तार, शहरीकरण,अतिचारण इत्यादि के कारण

अनेक पादप जातियाँ गम्भीर रूप से प्रभावित हुई हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण पौधे हैं- **बैलेनोफोरा इन्वोल्यूक्रेटा** (Balanophora involucrata)**पैराटाइओपसिस इजेक्युमोन्टिना** (Paratiopsis ijacquemontiana)**सॉसार्ड लापा** (Saussared lappa), **डाइआस्कोरिया** (Dioscorea)अनेक **ऑर्किड़स** (Orchids), इत्यादि।

जैसा कि आप डोडो के बारे में जानते हैं कि उसके जाने से काल्वेरिया के भी काल-कलवित होने का खतरा पैदा हो गया था। यही सम्पूर्ण जीव-तंत्र के लिए सच है। क्योंकि चाहे जीव-जन्तु हों या पेड-पौधे, यह सब एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। 'इकोलॉजी' या पारिस्थिति विज्ञान नामक जीव विज्ञान की शाखा में जीव-जन्तु और वनस्पतियों की लाखों जतियों की पारस्परिक निर्भरता के रहस्य ही खोजे जाते हैं। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि इस पृथ्वी पर जीव-जन्तु और पेड़ - पौधों की एक सौ लाख के करीब जातियाँ हैं। अभी तक इनमें से केवल 15 लाख जातियों का ही पता लगाकर उनके ब्यौरे तैयार किये गये हैं। कुछ वैज्ञानिकों का तो विश्वास है कि जीव जगत में 300 लाख के करीब जातियाँ हैं, जीव जगत अर्थात् जीव-जन्तु, पेड़-पौधे दोनों।

एक भी जीन, कोई भी जाति, कोई भी प्राणी या कोई भी वनस्पति इस धरती से लुप्त होता है, तो कोई नहीं जानता कि उसके साथ पता नहीं पृथ्वी किन-किन प्राकृतिक वरदानों से वंचित हो जाती है। क्या पता किसी विलुप्त हुए पौधे में कोई ऐसा जीन रहा हो, जो 'ग्रीन हाउस प्रभाव' के बावजूद अधिक पैदावार देने की खूबी फसलों में बरकरार रखता हो। उदाहरण के लिए समुद्री तटों के पास उगने वाली मैंग्रोव वनस्पतियों की अपनी अलग ही विशेषता होती है। जब समुद्र गरम होंगे और लहरें ऊँची उठेंगी और **मैंग्रोव** वनस्पतियाँ नहीं होगी, तो धरती को अधिक विनाश का सामना करना पड़ेगा।

हमारे देश में **'जूलॉजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया** 'और' **बॉटेनीकल सर्वे ऑफ इण्डिया'** ने विलोप की आशंका से त्रस्त जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों की सूची तैयार की है।

हमारे देश में स्तनधारी प्राणियों की 500 और पक्षियों की 1200 जातियाँ हैं। इनमें से **पक्षियों की दो जातियाँ और स्तनधारी प्राणियों की 15 जातियाँ** विलोप के कगार पर पहुँच चुकी हैं। कुछ समय पूर्व **लाल सिर वाली बतख** (Pink hued duck) हुआ करती थी, जिसकी आखिरी जानकारी 1935 में और पालतू रूप में 1945 में दर्ज की गई थी। फिर कुछ पता नहीं। इसी तरह पहाड़ी बटेर (Mountain quail) भी अंग्रेजी शिकारियों की हविश का शिकार होकर विलुप्त हो गया।

आँकड़े दर्शाते हैं कि भावी 20 वर्षो में प्रत्येक दस में से एक पार्थिव (दुर्लभ) प्रजाति लुप्त होने जा रही है। पेड़-पौधों की कोई 25, 000 प्रजातियाँ तथा रीढ़दार जानवरों (जैसे मछलियाँ, जल जंतु, रेंगने वाले प्राणी, पक्षी और स्तनपायी जीव) की 9, 000 से भी ज्यादा प्रजातियाँ या उपजातियाँ गायब होने के कगार पर हैं।

4.4 वन्य प्राणी संरक्षण तथा प्रबन्धीकरण (Wild-life conservation and management)

इन विलोपशील जीव-जन्तु और पेड़-पौधों को बचाने के लिए सारी दुनियाँ में एक तो **जानवरों के शिकार पर पाबंदी है,** दूसरे **पेड़-पौधों के व्यापार पर भी कई शर्तें लगाई गई हैं।** जंगली जानवरों की खाल बेचना, साँपों की खाल बेचना, हाथी-दाँत, गैंडे के सींग आदि की तिजारत भी गैर-कानूनी

घोषित कर दी गई है। लेकिन बड़े-बड़े माफिया-दल इन तमाम पाबंदियों के बावजूद इस अवैध धंधे में लगे हुए हैं। इस विषय पर विस्तार से इस पुस्तक के अन्य अध्यायों में चर्चा की गई है।

दूसरा कदम उठाया गया है- **पक्षी अभयारण्य** और वन्य **प्राणी अभयारण्य** बनाये गये हैं, जिनमें पक्षी और अन्य प्राणी निर्भय होकर विचरण कर सकें। हमारा देश भी इस मामले में पीछे नहीं है। अभयारण्यों के अतिरिक्त **'बायोस्फीयर रिजर्व'** भी उत्तराखण्ड, धार, मन्नार खाड़ी, उत्तरी अण्डमान, मानस, कान्हा और काजीरंगा में बनाये जा चुके हैं। अभी छह स्थानों पर ' जीवमंडल रिजर्व' बनाये जाने हैं।

हमारे देश में गायों की 26 भैंस की 7, भेड़ों की 40, बकरियों की 20, ऊँटों की 4, घोड़ों की 6, सुअरों की 3 और मुर्गियों की 18 नस्लें हैं। इनके जीन-संरक्षण के लिए हिसार में **प्राणी आनुवंशिक संपदा** के संरक्षण का **राष्ट्रीय ब्यूरो** बनाया गया है। मछलियों की आनुवंशिक संपदा का **आनुवंशिक ब्यूरो** इलाहाबाद में बनाया गया है। वनस्पतियों की आनुवंशिक संपदा के संरक्षण का ब्यूरो नई दिल्ली में कृपा इन्सीट्यूट के कैम्पस में स्थित है। यहीं अपने देश के अलावा विदेशों से प्राप्त नमूने भी रखे जाते हैं। फसलों को उगाकर संरक्षित रखा जाता है, बीज के रूप में भी और परखनली में पनपाकर तथा **'डी एन ए '** अलग करके भी। 42 देशों में बागवानी और खेती वाली फसलों के लगभग 43 हजार नमूने यहाँ संरक्षित हैं। इसी तरह के जीन-बैंक दुनियाँ भर के तमाम देशों में बनाये गये हैं और बनाये जा रहे हैं।

इससे भी ज्यादा खतरनाक तथ्य यह है कि इस जैविक विनाश का अत्यधिक तांडव नृत्य तीसरी दुनियाँ में होने वाला है जो विश्व की दो-तिहाई पार्थिव प्रजातियों का घर है- खासकर दुर्लभ प्रजातियों का। वास्तव में समस्या इससे भी कहीं ज्यादा गंभीर है। यदि विकासशील देशों में खासी तादाद में प्रजातियाँ मृत्यु का वरण करने लगेंगी तो उसका प्रतिकूल प्रभाव कृषि, उद्योग एवं विज्ञान के क्षेत्रों पर भी पड़ना अवश्यम्भावी है।

वन्य प्रणियों की वांछित समष्टि उत्पन्न करने की कला वन्य प्राणी प्रबन्ध कहलाती है। वन्य प्राणी प्रबंध के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

(1) आखेट स्पेशीज़ का उत्पादन तथा सस्य
(2) आखेटीय स्पेशीज़ का अनुरक्षण
(3) फसलों, वनों, चरागाहों, पशुधन या मानव जीवन को वन्य प्राणियों द्वारा होने वाली क्षति का नियंत्रण।

वन्य प्राणियों के परिरक्षण के कुछ बहुप्रचलित उपाय निम्नलिखित हैं

(1) आखेट की संख्या को कानून द्वारा प्रतिबन्धित करना
(2) कृत्रिम संग्रहण (Artificial Stocking)
(3) आवास स्थल का सुधार।

(1) **प्रतिबन्धित आखेट** (Restricted Hunting) : अनुकूल परिस्थितियों में प्राणी समुदाय तीव्रता से द्विगुणित हो सकते हैं। यह तथ्य आखेट पशुओं के बारे में विशेष रूप से सत्य प्रतीत होता है, जिनकी जनन-दर बहुत ऊँची होती है। किसी प्रजाति विशेष के जन्तुओं के आधिक्य में अनेक अवगुण छिपे रहते हैं। इसलिए किसी समुदाय को अधिक बड़ा या अत्यधिक छोटा होने से रोकने के लिए रक्षण कानून बनाये जाने चाहिए। अविक्षुब्ध आवास में **जैविक विभव** (Biotic potential) पर्यावरण प्रतिरोध तथा आवास की **धारण क्षमता** (carrying capacity) पर आधारित

एक प्राकृतिक नियन्त्रण प्रजाति की संख्या का नियन्त्रण रखता है। अत: प्रकटत: यहाँ कृत्रिम नियन्त्रण आवश्यक नहीं होता है। परन्तु उन वनों तथा वन स्थलों में जहाँ मानव की गतिविधियों द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन में व्यतिकरण या परिवर्तन हुआ है वहाँ अतिबाहुल्य वाली प्रजाति की संख्या को घटाने या नियंत्रित करने के लिए जागस्क प्रयत्न करने होते हैं ताकि वन्य जन्तुओं के लिए वनस्पति तथा आवास का रक्षण किया जा सके।

(2) **कृत्रिम संग्रहण** (Artificial stocking) : इसमें कोई संशय नहीं है कि जिन प्रजाति के लुप्त होने का खतरा हो उनके कृत्रिम संग्रहण की आवश्यकता रहती है। अनुभवों ने यह दर्शाया है कि किसी क्षेत्र में आखेट जन्तुओं का कृत्रिम रूप से संग्रहण तभी प्रभावशाली सिद्ध होता है जबकि उनका यह पुनर्स्थापन नये क्षेत्र में हो अथवा उस क्षेत्र में हो जहाँ से पहले उन्हें नष्ट कर दिया गया हो। जनसंख्या वृद्धि के सिद्धान्त से यह स्पष्ट है कि अगर किसी प्रजाति विशेष के आखेट जन्तु पहले से ही पर्याप्त संख्या में उपस्थित हों तो उस क्षेत्र में उसी प्रजाति के जन्तुओं की अतिरिक्त संख्या का कृत्रिम संग्रहण व्यर्थ या कभी-कभी हानिकारक होता है। यही नहीं, वरन् किसी नई प्रजाति द्वारा क्षेत्र विशेष का संग्रहण सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए क्योंकि हो सकता है कि वह प्रजाति इतनी अधिक बढ़ जाये कि स्वयं में नाशक जीव बन जावे तथा जैविक समुदाय को असन्तुलित ही कर दे जैसा कि ऑस्ट्रेलिया में खरगोशों तथा अमेरिका में इंगलिश गोरैया के संग्रहण के दौरान हुआ था।

(3) **आवास स्थल का सुधार** (Habitat Improvement): वन्य प्राणियों के प्रबन्ध में उपर्युक्त आवास स्थलों के निर्माण तथा अनुरक्षण को सर्वोच प्राथमिकता दी जाती है। प्रत्येक आवास स्थलों की एक निश्चित धारण क्षमता होती है जिसका निर्धारण उपलब्ध भोजन, आचरण, जल तथा अन्य जीवनावश्यक वस्तुओं द्वारा होता है। प्रत्येक प्रजाति की आवास स्थल सम्बन्धी आवश्यकताएँ भिन्न- भिन्न होती हैं। इस कारण आवास स्थल सुधार कार्यक्रम प्रारम्भ करने के पूर्व प्रजाति विशेष की वास्तविक आवास स्थल सम्बन्धी आवश्यकताओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाना चाहिए।

उपरोक्त विविरण से स्पष्ट है कि वन्य प्राणी संरक्षण तथा प्रबन्ध के लिए प्रत्येक प्रजाति की परिस्थिति के सम्पूर्ण ज्ञान की आधारभूत आवश्यकता है। प्रजाति विशेष की आहारी आदतें, जनन, आवास स्थलीय आवश्यकताएँ, समष्टि आकार तथा उत्तार-चढ़ाव एवं अन्य स्पेशीज से सम्बन्ध, इत्यादि से सम्बन्धित पारिस्थितिक ज्ञान से वन्य प्राणी प्रबन्ध में बहुत सहायता मिलती है। वन्य प्राणी साधनों का प्रबन्ध यथार्थ में अनुप्रयुक्त पारिस्थितिकी का क्षेत्र है।

सभी संरक्षण कार्यक्रमों में से वन्य प्राणियों के परिरक्षण को सर्वौच प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि वह अवधि जिसमें यह कार्य पूरा किया जाना चाहिए वह विषम रूप से अल्प है। यदि हम इस दिशा में इस समय भी प्रयत्न नहीं करेंगे तो यह पूरी-पूरी सम्भावना है कि मानव पर्यावरण में अटल परिवर्तन हो जाये जिसकी क्षतिपूर्ति भी असंभव है। भारतवर्ष के वन्य प्रबन्धक इस दृष्टि से अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति में हैं कि वे अन्य देशों के प्रकृति वैज्ञानिकों के अनुभवों से सबक ग्रहण कर सकते हैं।

राष्ट्रीय उद्यान (National Park)	अभयारण्य (Sanctuary)	जैव मण्डल आरक्षित प्रदेश (Biosphere Reserves)
केन्द्रीय सरकार द्वारा	राज्य सरकार द्वारा	विश्व व्यापक

1.	यह मुख्य रूप से **समस्त मिली-जुली** वन्य जीवों (wild animals) के संरक्षण के लिए होता है।	यह बहुधा **विशिष्ट प्रकृति के संरक्षण** के लिये निर्धारित होता है।	इस क्षेत्र में पूरा **पारितन्त्र** (ecosystem) समाहित होता है।
	राष्ट्रीय उद्यान (National Park)	**अभयारण्य (Sanctuary)**	**जैव मण्डल आरक्षित प्रदेश (Biosphere Reserves)**
2.	भारत में इसका क्षेत्र आयाम 004 से 3162 वर्ग किलोमीटर तक होता है। भारत में इनका वितरण निम्न है- लगभग 40%' 100-500 वर्ग किमी. 15% 100-500 वर्ग किमी.	जबकि इसका क्षेत्रराष्ट्रीय उद्यान की अपेक्षा **अधिक व्यापक** होता हैं।यह 061 से 7818 वर्ग किमी.तक होता है। भारत में इसका वितरण निम्न है- 40%100-500 वर्ग किमी 25% 500-1000 वर्ग किमी	इसका क्षेत्र प्रसार बहुधासर्वाधिक व्यापक होता है यह 5670 वर्ग कि.मी. से ऊपर ही होता है नीचे नहीं।
3.	इसमें **पर्यटन की अनुमति** होती है।	इसमें भी **पर्यटन की अनुमति** होती है।	सामान्यत: पर्यटन की **आज्ञा नहीं** मिलती।
4.	इसका शोध व वैज्ञानिक प्रबंन्धीकरण बहुधा नहीं होता	इसमें भी नहीं होता।	इसमें वैज्ञानिक व शोधीय प्रबंन्धीकरण होता है।
5.	अभी तक इसमें व्याप्त प्राणियों के **जीन पूल** व उसके **संरक्षण** पर ध्यान नहीं दिया गया है।	इस क्षेत्र में भी बहुधा **जीन पूल संरक्षण** पर ध्यान नहीं दिया गया है।	इसमें बहुधा **जीन पूल संरक्षण** का ध्यान दिया गया है।

4.5 वन्य प्राणी के प्रबंन्धीकरण के प्रयास .(Wild-life Management efforts)

1. जैव मंडल में वन्य-प्राणियों के महत्व की स्थापना के साथ ही विश्वभर में इनके संरक्षण के प्रति जागरुकता में वृद्धि हुई है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन इस दशा में गम्भीर प्रयास कर रहे हैं। इनमें **विश्व वन्य प्राणी कोष** (World Wide Fund for Nature) सबसे अग्रणी है।

वन्य जीवों की संख्या में निरन्तर हास एक राष्ट्रीय चिन्ता का प्रश्न बन गया है, क्योंकि वन्य जीवों की कई दुर्लभ प्रजातियाँ लुप्त होती जा रही हैं। धीरे- धीरे इस समस्या की ओर राष्ट्र - प्रेमियों, विचारकों, वैज्ञानिकों एवं धार्मिक नेताओं का ध्यान गया और फलस्वरूप विभिन्न

समितियों का गठन किया जाने लगा ताकि इस समस्या के हर पहलू का अध्ययन कर उसके निराकरण का प्रयत्न किया जावे।

भारत सरकार व राज्य सरकारें वन्य जीवों को विभिन्न तौर-तरीकों से सुरक्षा प्रदान करने में प्रयत्नशील हैं। वन्य जीवों के संरक्षण को जनसमर्थन लेने और जन आन्दोलन बनाने हेतु **एक अक्टूबर से सात अक्टूबर तक प्रतिवर्ष वन्य जीव सप्ताह** का आयोजन सारे राष्ट्र में किया जाता है, जिसमें वन्य' जीव के प्रति न केवल जनरुचि विकसित हो बल्कि विविध पक्षों को उजागर किया जा सके। वन्य जीव सप्ताह आयोजन के अवसर पर राज्य के समस्त चिड़ियाघरों में वन्यजीवों के जीवन का अध्ययन कराया जाता है। विभिन्न कार्यक्रम आयोजन के द्वारा आम नागरिकों को वन्य जीवों की जानकारियाँ उपलब्ध कराई जाती हैं।

हमारे देश में भी केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें वन्य प्राणी संरक्षण को समुचित महत्व दे रही हैं। इस दिशा में किये जा रहे प्रयासों में से कुछ निम्नानुसार हैं-

1. वन्य प्राणियों तथा उनके आवासों को संरक्षण देने के उद्देश्य से देश भर में जून 1992 तक लगभग 416 **अभयारण्य** (Sanctuaries) तथा **73 नेशनल पार्क** स्थापित किये गये हैं।
2. **वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम** 1972 लागू किया जा चुका है।
3. **वन्य प्राणियों से सम्बन्धित शोध** को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय आधार पर वन्यप्राणी संरक्षण के अनेक कार्यक्रम देश में चल रहे हैं। इस दिशा में ' मानव एवं जीवमण्डल ' (Man & Biosphere) नाम का एक कार्यक्रम 1973 से यूनेस्को ने विश्व स्तर पर शुरू किया है। 1985 तक लगभग 65 राष्ट्रों में 243 से अधिक **बायोस्फियर** बनाये गये हैं। भारत में 13 ये क्षेत्र हैं- **कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु की मिली-जुली सीमा पर स्थित नीलगिरी, मेघालय में तुर्रा अभ्यारण्य, अरुणाचल प्रदेश में नमदफा, उत्तर प्रदेश में तुंगनाथ - रुद्रनाथ के पास फूलों की घाटी, नया देवी, अन्डमान-निकोबार द्वीप समूहों में से कुछ द्वीप और तमिलनाडु की मन्नार खाड़ी।**

इन प्रयासों कं लाभदायक प्रभाव भी दृष्टिगोचर होने लगे हैं। पिछले दशक भर में ही गेंडा, मणिपुरी हिरण (Manipuri brow antlered) ,कश्मीरी महामृग (Hangrulor Kashmir stag), चीतल (Chital), सांभर (Sambhar), गौर (Gaur) जंगली सुअर (Wild-pig) इत्यादि जैसे लगभग विलुप्तप्राय प्राणियों की संख्या में उत्साहवर्धक वृद्धि हुई है। इस तरह के सफल प्रयासों का एक महत्वपूर्ण उदाहरण **'शेर बचाओ' (प्रोजेक्ट टाइगर)** नामक योजना है। इस शताब्दी की शुरुआत में हमारे देश में लगभग 40 हजार शेर थे, जो 1972 तक घटकर केवल 1827 रह गये थे। इस प्रकार शेरों की संख्या को तेजी से घटते देखकर, भारत सरकार ने 1973 में **वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड (भारत) और इन्टरनेशनल यूनियन फॉर कन्जरवेशन ऑफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज** (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources) के सहयोग से इस योजना को प्रारम्भ किया। इसके अन्तर्गत 1973 में देश के नौ राज्यों में कुल 13017 वर्ग कि मी. क्षेत्र अधिगृहीत किया गया।

2. वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु परियोजनाएँ

विभिन्न वन्य जीवों की घटती संख्या पर चतुर्दिक बढ़ती चिंता को देखकर केन्द्र सरकार के लिए यह जरूरी हो गया कि

वह दुर्लभ जंगली जीवों को बचाने के लिए कारगर उपाय करे। इस दिशा में सरकार ने विभिन्न जीवों के संरक्षण के लिए परियोजनायें बनायीं। विभिन्न वन्य जीवों के लिए बनायी गयी योजनायें निम्नवत् हैं

i. **बाघ परियोजना (प्रोजेक्ट टाइगर)** : भारत में बाघों की आबादी तेजी से कम होने के कारण 1970 में भारतीय वन्य प्राणी बोर्ड ने भारत में बाघों की आबादी के संरक्षण हेतु एक कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने के लिए ' बाघ परियोजना ' का आविर्भाव किया। इसके मुख्य उद्देश्य निम्न हैं-
   क. वैज्ञानिक, आर्थिक, सौंदर्यात्मक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक मूल्यों के लिए भारत में बाघों की जीवनक्षम आबादी के संरक्षण को सुनिश्चित करना।
   ख. मनुष्य के लाभ, शिक्षा तथा आनंद के लिए जैविक महत्व के क्षेत्रों को एक राष्ट्रीय विरासत के रूप में सदैव के लिए सुरक्षित रखना।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में हमारे देश में लगभग 40 हजार बाघ थे जिनकी संख्या 1972 तक घटकर केवल 1827 रह गयी। इस संख्या में आयी कमी से चिंतित होकर भारत सरकार ने सन् 1973 में **वर्ल्ड वाइल्ड फंड फॉर नेचर तथा इन्टरनेशनल यूनियन फॉर कन्जरवेशन ऑफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज** के सहयोग से **बाघ परियोजना** (Project tiger) नामक एक महत्वाकांक्षी परियोजना प्रारम्भ की। इसके अन्तर्गत सन् 1973 में देश के नौ राज्यों में कुल 13017 किलोमीटर क्षेत्र अधिगृहीत किया गया जिसमें कुल 268 शेर थे। कुछ समय पूर्व किये गये सुर्वेक्षण के अनुसार देश में कुल 3015 शेर हैं, जिनमें 711 विशेष रूप से संरक्षित वनों में हैं। यद्यपि बाघ परियोजना से बाघों की संख्या में कुछ बढ़ोत्तरी हुई है लेकिन फिर भी इसे और प्रभावशाली बनाये जाने की आवश्यकता है।

ii. **गिर सिंह अभ्यारण्य योजना :** एशियाई सिंह, जो कभी भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर। आर-मध्य क्षेत्रों में पाया जाता था, अब मात्र गुजरात के गिर वन तक ही सीमित है। इस जाति का यह अंतिम प्राकृतिक आवास बचा है। 1972 में गुजरात सरकार ने संरक्षण के लिए उचित मार्गदर्शन के साथ गिर सिंह आश्रय स्थल के प्रबंध की योजना बनायी। इस आवास की सुरक्षा और सुधार के लिए केन्द्र सरकार ने भी सहायता प्रदान की है।

iii. **हिमालयी कस्तूरी (Musk Deer) परियोजना :** कस्तुरी मृग (मोस्कस मोस्किफेरस), जो कभी संपूर्ण हिमालय क्षेत्र में पाया जाता था, सुगंध और दवा बनाने के काम आने वाली 'कस्तुरी ' (जो बेहद मंहगी होती है) प्राप्त करने के लिए मनुष्य का शिकार बना। हिमालय की चम्बा घाटी से लेकर दक्षिणी सिक्किम तक मिलने वाली यह मृग प्रजाति विलुप्त होने की ओर अग्रसर थी। प्राकृतिक आवास के विनाश के कारण भी इसकी आबादी बहुत तेजी से कम हो गयी थी। अतत: **अंतरराष्ट्रीय प्रकृति और (आई.यू.सी.एन.) प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संघ** के संकटग्रस्त हिरण कार्यक्रम के अंतर्गत भारत सरकार के सहयोग से एक संरक्षण परियोजना उत्तर प्रदेश के ' केदारनाथ अभ्यारण्य' में आरम्भ की गयी है।

iv. **मणिपुर थामिन (ब्रो ऐन्टलर हिरण) परियोजना :** एक और सर्वाधिक संकटग्रस्त मृग प्रजाति, जिसके गिने-चुने सदस्य ही बच गये थे, **थामिन मृग** या **ब्रो ऐन्टलर हिरण (सेरवस एल्डाइ एल्डाई)** है। यह विश्व के अत्यन्त दुर्लभ स्तनधारियों में से एक है, जो मणिपुर राज्य के लोकटक झील के दक्षिण-पूर्वी भाग **'केबुल लमजोआ** में पाया जाता है। स्थानीय आदिवासियों

द्वारा अवैध शिकार तथा घास कम होते जाने के कारण इसका अस्तित्व खतरे में पड़ गया था। 1977 में इसकी संख्या केवल 18 रह गयी थी। फलत: इस क्षेत्र को 1977 में ही राष्ट्रीय उद्यान बना दिया गया और इसी जाति की सुरक्षा के लिए सरंक्षण उपाय आरम्भ किए गये।

v. **मगर प्रजनन परियोजना : घड़ियाल** (गेवियेलिस गेंजेटिक्स), **मगर** (क्रोकोडाइलस पेलुस्ट्रि स) तथा **खारे पानी का मगरमच्छ** (क्रोकोडाइलस पोरोसस)- भारत में पायी जाने वाली मगरमच्छ की ये तीन जातियाँ 1970 के दशक के पूर्वार्द्ध में अत्यन्त दुर्लभ हो गयी थी।भारत सरकार ने **संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी)** की सहायता से 1975 में उड़ीसा में मगर प्रजनन तथा प्रबंध की परियोजना आरम्भ की। बाद में इस परियोजना का विस्तार उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, अंडमान, असम, बिहार एंव नागालैंड तक विस्तार किया गया। प्रजनन परियोजनाओं और 12 आश्रय स्थलों में, उनके प्रबन्ध के पीरणामस्वरूप आज उक्त तीनों जातियों की आबादी काफी बढ़ गयी है।

vi. **हाथी परियोजना :** पृथ्वी का सबसे बड़ा स्थलीय जीव हाथी, एशियाई देशों में भारत में सबसे अधिक संख्या में पाया जाता है। देश में हाथियों की संख्या में आई कमी को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार के पर्यावरण एव वन मंत्रालय ने 1991 -92 में हाथी परियोजना का शुभारंभ किया तथा एक कमेटी बनाई गयी जिसेस्टियीरंग कमेटी में सरकारी अधिकारी तथा राज्यों के मुख्य वन्य जीव प्रतिपालकों के अतिरिक्त हाथी-विशेषज्ञों को शामिल किया गया है। घने जंगलों के लगातार कटते जाने, भोजन एव आवास की समस्या तथा हाथी दाँत के लिए प्रति वर्ष भारी संख्या में मारे जाने के कारण हाथियों की संख्या एक समय घटकर केवल 1500 रह गयी थी। इस स्थिति को देखते हुए देश में हाथियों की सुरक्षा एव संरक्षण के लिए बाघ परियोजना जैसी एक परियोजना की रूपरेखा बनायी गयी। हाथी परियोजना का उद्देश्य उजड़े और नष्ट हुए प्राकृतिक आवासों को फिर से ठीक करना, उनके आवागमन के मार्गों का निर्माण, मनुष्य के हस्तक्षेप को रोकना तथा हथियारों के आवागमन व उनकी आबादी बढ़ाने के विषय में जानकारी एकत्र करना था।

3. अंतराष्ट्रीय संरक्षण संस्थाएँ

i. **साइट्स :** साइट्स (CITES) पर 1973 में वाशिंगटन में सहमति हुई। इस अंतरराष्ट्रीय संधि पर 30 देशों द्वारा हस्ताक्षर करने के बाद यह 1975 में अस्तित्व में आया। आज इसके 123 देश सदस्य हैं। यह विश्व का सबसे बड़ा संरक्षण समझौता है। साइट्स के अनुसार प्रतिवर्ष 5 मिलियन पक्षी, 25 हजार प्राइमेट्स और 9 मिलियन आर्किड्स जंगलों से वैध-अवैध तरीके से लाकर अंतरराष्ट्रीय बाजारों में बेचे जाते हैं। साइट्स इसे नियंत्रित करने की कोशिश करता है। साइट्स सदस्य देशों की सरकारों को यह निर्देश देता है कि वे अपने यहाँ पशु व्यापार को नियंत्रित करें।

ii. **ट्रैफिक** (TRAFFIC or Trade Record Analysis of Flora and Fauna in Commerce):पशुओं और उनकी हड्डी, दाँत, खाल आदि के व्यापार को नियंत्रित करने के लिए साइट्स की प्ररेणा से 'ट्रैफिक' नाम की एक और संस्था सामने आयी। यह संस्था वन्य जीव व्यापार के अंतर्राष्ट्रीय केंद्रों (ब्रिटेन, अमेरिका) पर नजर रखती है।

iii. **आई.यू.सी.एन** (International Union for the Conservation of Nature and Natural Resources) : दुर्लभ वन्य जीवों के संरक्षण की दिशा में कार्यरत इस अंतरराष्ट्रीय संस्था ने 1969 में एक 'रेड डाटा लिस्ट' जारी की जिसमें दुर्लभ, संकटग्रस्त और विलुप्तप्राय जीवों का विवरण दिया गया है।

iv. **विश्व प्रकृति निधि** (WWF or World-wide Fund for Nature) : इस संस्था का पूर्व नाम **'वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड'** यानी **'विश्व वन्य जीव कोष'** था, जिसे कुछ वर्ष पहले बदलकर **'विश्व प्रकृति निधि'** यानी **'वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर'** कर दिया गया।यह संगठन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वन्य जीवों की देखभाल पर नजर रखता है। इसकी एक शाखा भारत में भी है, जो नई दिल्ली के लोदी स्टेट में स्थित है।

4. वन्य संरक्षण के उपाय

राजस्थान : राजस्थान राज्य (कुल क्षेत्रफल 3, 42, 239 वर्ग किमी.) में 31,130 वर्ग किमी. क्षेत्र वन विभाग के अधीन है। इसमें से 60, 506 वर्ग किमी. वन (राज्य के क्षेत्रफल का 10.12% क्षेत्र एवं 15,492 वर्ग किलोमीटर भूमि राष्ट्रीय उद्यान केवलादेव, भरतपुर, रणथम्भौर, सवाई माधोपुर को सभी प्रकार के व्यवधानों से मुक्त रक्षित वन के रूप में रखा गया है। रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान सवाई माधोपुर के अन्दर रह रहे आवासियों को अन्यत्र बसाया जा चुका है।

राजस्थान में वन्य जीवों का संरक्षण एक ऐतिहासिक परम्परा रही है। **पश्चिमी राजस्थान में विश्नोई सम्प्रदाय** के लोग अपनी धार्मिक मान्यताओं के कारण न तो स्वयं ही वन्य जीवों का शिकार करते हैं और न अन्य लोगों को अपने क्षेत्र में शिकार करने देते हैं। इस कारण विश्नोई बाहुल्य गाँव वन्य जीवों के वास्तविक अभयारण्य होते हैं। रजवाड़ों के समय वन्य जीवों का शिकार करने के अधिकार केवल राज-परिवार के सदस्यों या उनके अतिथियों को ही होते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल से वन्य जीवों एवं वनों को बहत महत्व दिया जा रहा है।

सरिस्का अभयारण्य तथा **मरूउद्यान, जैसलमेर** को राष्ट्रीय उद्यान घोषित करने की उद्घोषणाएँ राज्य सरकार द्वारा जारी की जा चुकी हैं। राज्य सरकार द्वारा आदेश प्रसारित कर वन्य जीव अभयारण्यों से लकड़ी, बाँस, छोटी पैदावार व अन्य सभी प्रकार की वन उपज के विकास पर रोक लगा दी गई है। इस महत्वपूर्ण कदम से वन्य जीवों को खाद्य वनस्पति व चारा उपलब्ध होने तथा प्रजनन एवं स्वच्छंद विचरण में सुविधा उपलब्ध हुई है।

वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए राजस्थान में शिकार पर रोक लगायी गयी है। अवैध शिकार रोकने के लिए राज्य में वन्य जीव सुरक्षा हेतु सात उड़नदस्ते बनाये गये हैं। इन सुरक्षा दस्तों के अलावा वन्य जीव संवर्द्धन एवं सरंक्षण के लिए **दो राष्ट्रीय उद्यान**, **22 अभयारण्य एवं 32 शिकार निषिद्ध क्षेत्र** घोषित किये हुए हैं। वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए प्रदेश में सन् 1955 में राजस्थान **वन्य जीव मण्डल** की स्थापना हुई। यह बोर्ड वन्य जीवों की सुरक्षा तथा उनकी समुचित **अभिवृद्धि** के लिए सरकार को सुझाव देता है। वन्य जीवों को बचाने के लिए 1972 में वन्य जीव संरक्षण अधिनियम लाया गया जिसका मुख्य उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण व आने वाली पीढ़ी के लिए प्रकृति के इस सुन्दर धरोहर को बचाना है।

प्रदेश (राजस्थान) में जीव संरक्षण

वन्य जीवों की विविधता तथा उनके बाहुल्य के लिए राजस्थान विश्व में विख्यात है। अपनी इस विशिष्ट भौगोलिक संरचना तथा वहाँ की विषम जलवायु के कारण प्रदेश में वन्य जीवों के लिए

विविध प्रकार के प्राकृतिक **आश्रय स्थल** (हेबीटाट) उपलब्ध हैं और इसी कारण यहाँ पर विविध प्रकार के वन्य जीव पाये जाते हैं। प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम छोर से उत्तर-पूर्वी कोने तक जाती हुई अरावली पर्वत क्षृंखला प्रदेश को दो असमान भागों में विभाजित करती है। इसके उत्तर-पश्चिमी भाग में थार मरुस्थल फैला है तो दक्षिण-पूर्वी भाग उपजाऊ समतल मैदानी है। जैविक भू-संरचना के आधार पर प्रदेश को चार मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है-

1. मरुस्थलीय भाग,
2. पहाड़ी क्षेत्र,
3. पूर्वी तथा मैदानी भाग
4. दक्षिण-पूर्वी मैदानी क्षेत्र।

इन चारों भागों में उपयुक्त प्रतिनिधि क्षेत्रों को अभयारण्य अथवा राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर वहाँ की वनस्पति व अन्य जीवों को पूर्ण संरक्षण प्रदान किया गया है।

1. **मरुरथलीय क्षेत्र :** उत्तर-पश्चिमी में पड़ने वाला प्रदेश का 273 भाग मरुस्थल है। इस क्षेत्र की भू-संरचना मुख्यत: रेतीला है। रेत के टीबे कहीं पर स्थिर तो कहीं अस्थिर हैं। इसी क्षेत्र में कुछ रेतीले क्षेत्र तथा कुछ स्थानों पर नमक की झीलें या खारे समतल मैदान है। क्षेत्र की औसत वर्षा 100 - 500 मिलीमीटर है। वर्षा का औसत उत्तर-पश्चिम की ओर कम होता जाता है। प्रदेश के उत्तरी भाग में वार्षिक वर्षा का औसत लगभग 100 मिलीमीटर ही रह जाता है। क्षेत्र की वनस्पति मरुदभिदि है। कम वर्षा वाले रेतीले क्षेत्रों में **सेवन घास** तथा **खेजड़ी, फाग, केर, आक व बेर की झाड़ियाँ** पाई जाती हैं।

चिंकारा प्रजाति के एन्टीलोप : छोटे-छोटे झुण्डों में (3 - 5 चिंकारों के झुण्ड) पूरे क्षेत्रों में जगह-जगह पाये जाते हैं जबकि काले हिरण कुछ सुरक्षित क्षेत्रों में ही बचे हैं। **चिंकारा** और **काले हिरणों** के अतिरिक्त गोडावण इस क्षेत्र का प्रमुख दुर्लभ पक्षी है। शरद ऋतु में हजारों की संख्या में प्रवासी पक्षियों में उल्लेखनीय दुर्लभ पक्षी तिलोर भी है। **तिलोर** के अलावा **कुर्जे व सेन्ड ग्राउस** वेस्टर आदि कई किस्म के बाज व चीले यहाँ आती हैं। मरु क्षेत्र में इन्दिरा नहर आ जाने, गहरे ट्यूबवैल्स खोदे जाने व अन्य विकास कार्यो के कारण मनुष्यों की आबादी निरन्तर बढ़ रही है। इससे परिवर्तन आता जा रहा है। अत: अभयारण्य (राष्ट्रीय मरुउद्यान, जैसलमेर तथा तालछापर अभयारण्य) बनाये गये।

2. **पहाड़ी क्षेत्र :** प्रदेश के दक्षिण-पश्चिमी छोर से उत्तर-पूर्वी सीमा तक फैली हुई अरावली पर्वत शृंखला तथा पूर्वी व मध्य भागों में अरावली पर्वत शृंखला से मिलती हुई दिध्याचल की पहाड़ियाँ प्रदेश का मुख्य क्षेत्र बनाती हैं। प्रदेश का अधिकांश प्राकृतिक वन क्षेत्र इसी पहाड़ी स्थल में सीमित है। पर्वत श्रेणियाँ व उनमें निकली हुई पर्वत चोटियाँ अधिकतर 1000 मीटर से कम ऊँचाई की हैं। गुराशिखर, माउन्ट आबू इसमें अपवाद हैं, जिसकी ऊँचाई समुद्र तल से 122 मीटर है। पहाड़ी क्षेत्र की वार्षिक औसत वर्षा 500 मिली मी. से 00 मिलीमीटर है। पहाड़ी क्षेत्र में वन जीवों में **बाघ (टाइगर), बघेरा, जरख, सियार, रीछ, सांभर, चीतल, नील गाय. जंगली सुअर** तथा **चौसिंगे** मुख्य हैं। प्रदेश के दानों बाघ परियोजना क्षेत्र, सरिस्का व रणथम्भौर इस पहाड़ी क्षेत्र में ही स्थित हैं। इनके अतिरिक्त प्रदेश के 15 अभयारण्य भी इसी क्षेत्र में स्थित हैं।

3. **मैदान :** अरावली पर्वत शृंखला के पूर्व व दक्षिणी-पूर्वी भाग में मैदानी उपजाऊ भाग जिसमें भूमि की गहराई अच्छी है तथा भूमि का ढाल उत्तर-पूर्व की ओर है। इस भाग की प्रमुख

नदियाँ स्मारेल, बाणगंगा व गंभीर हैं जो जमुना में मिलती हैं, जबकि मोरेल व बनास नदियाँ चम्बल में मिलती हैं। जमुना में चम्बल आगे बढ़कर मिल जाती है। क्षेत्र में उन्नत कृषि की सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए इन नदियों व उनकी सहायक नदियों में कई स्थानों पर छोटे-छोटे बाँध व तालाब बनाये गये हैं। इसके अलावा कुछ प्राकृतिक गड्ढे भी यहाँ पर हैं जिनमें वर्षा का पानी इकट्ठा हो जाता है। यहाँ पानी के छोटे-छोटे सरोवर क्षेत्र बड़ी संख्या में विभिन्न प्रकार के स्थानीय व प्रवासी पक्षियों व बतखों को आश्रय प्रदान करते हैं। गाँवों के तालाबों में आये हुए प्रवासीय पक्षियों व बतखों को स्थानीय लोग संरक्षण प्रदान करते हैं। कुछ बड़े क्षेत्र जहाँ पानी इकट्ठा होता है, जैसे- **सेंथक सागर, व हिंगोनिया तालाब** को वन्य जीव सुरक्षा नियम के अन्तर्गत शिकार निषिद्ध क्षेत्र घोषित कर दिया गया है ताकि वन्य जीवों को सुरक्षा मिल सके। इस क्षेत्र में **केवलादेव घना राष्ट्रीय** उद्यान तथा दो अभयारण्य **राष्ट्रीय चम्बल अभयारण्य** व **जवाहर सागर अभयारण्य** स्थित हैं। राजस्थान के दक्षिणी व दक्षिणी-पूर्वी भाग में राजस्थान के सागवान, बाँस के वन, सफेदा धावडा तेन्दु, महुवा व बहेड़ा आदि वृक्ष पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में अधिकतर आदिवासी रहते हैं। क्षेत्र की वनस्पति व वन्य जीवों की रक्षा के लिए सीतामाता, शेरगढ़ आदि को अभयारण्य का दर्जा दिया गया है। इन अभयारण्यों में बघेरे, सांभर, जंगली सुअर, चौसिंगे, उड़ने वाली गिलहरियाँ इत्यादि वन्य जीव पाये जाते हैं। बाघ जो कुछ समय पूर्व तक यहाँ देखे जाते थे, अब लुप्त हो गये हैं। परन्तु यदि हम पिछले वर्षों पर दृष्टि डालें तो विकास के नाम पर वनों का क्षेत्रफल एवं वन्य जीवों की संख्या में काफी कमी हुई है जिससे पर्यावरण संतुलन पर विपरीत प्रभाव पड़ा है तथा मानव जाति के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है।

- **प्रदेश (राजस्थान) के विभिन्न अभयारण्य**

वर्तमान में राजस्थान तीन लाख बहत्तर हजार दो सौ दस वर्ग किलोमीटर में से अभी तक हम अभयारण्यों के नाम पर मात्र 8400 वर्ग किलोमीटर वन्य क्षेत्रों को संरक्षित कर पाये हैं जो कुल भूमि का 1.87% होता है।

अभी राज्य सरकार ने **रणथम्भौर** व **केवलादेव** को राष्ट्रीय पार्क घोषित किया हुआ है तथा सरिस्का को **बाघ परियोजना** (Project Tiger) का एक हिस्सा। जबकि कुम्भलगढ़, दरा, जयसमन्द माउण्ट आबू सीतामाता वन विहार, राम सागर, तालछापर, जमवा रामगढ़ व **डेजर्ट नेशनल पार्क** आदि को वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु **अभयवन** घोषित किया हुआ है।

इसी तरह जयपुर से लगभग बीस किलोमीटर दूर स्थित रामगढ़ जंगल को भी अभयारण्य घोषित कर दिया है।

अरावली पर्वत शृंखला में स्थित कुम्भलगढ़ अभयारण्य: उदयपुर संभाग के विख्यात कुम्भलगढ़ अभयारण्य में विगत में किये गये विभिन्न क्षेत्रों के मिले-जुले प्रयासों का नतीजा यह निकला है कि वन्य जीवों की संख्या अब धीरे- धीरे बढ़ने लगी है। यहाँ पाये जाने वाले जीवों **धूसर मुर्ग (ग्रे जंगल फाउल), भेड़िये, चार सींगों वाले हिरण** आदि ऐसे वन्य जीव हैं जिनका देश के दूसरे राष्ट्रीय पार्कों व अभयारण्यों में दर्शन दुर्लभ है।

धूसर जंगली मुर्गे की तो उत्तरी भारत में कुम्भलगढ़ अभयारण्य ही अन्तिम शरण-स्थली है। हाँलांकि दक्षिणी भारत के अभयारण्यों में भी धूसर मुर्गा पाया जाता है, लेकिन उन अभयारण्यों में भी मुर्गो की संख्या कुम्भलगढ़ के मुकाबले बहुत कम है। वन्य जीव प्रेमियों का तो यहाँ तक

मानना है कि पूरे देश में धूसर मुर्गे व भेड़िये की गतिविधियाँ देखने के लिए **कुम्भलगढ़ अभयारण्य** ही सर्वोतम जगह है।

कैला देवी: सवाई माधोपुर के करौली उपखण्ड में चम्बल के किनारे स्थित कैलादेवी के जंगलों में गणना से पता चला है कि यहाँ पर अन्य वन्य जीवों के अलावा बाघ भी विचरण कर रहे हैं। इस समय यहाँ पर बाघों की संख्या 14 है, जो कि प्रदेश में **सरिस्का** व **रणथम्भौर** के बाद सबसे अधिक है। अन्य जीवों में यहाँ पर **तेन्दुआ, रीछ, जरख, सियासर, साँभर, चीतल, चिंकारा, मगरमच्छ नीलगाय, जंगली सुअर, लोमड़ी, जंगली बिली, खरगोश, लंगर. भेड़िया** आदि मुख्य हैं। वन्यजीवों की विविधता के लिहाज से देखा जाए तो कैलादेवी प्रदेश के राष्ट्रीय उद्यानों व अभयारण्यों में सबसे ऊपर हैं, लेकिन उपेक्षित होने से इस क्षेत्र के विकास व वन्य जीवों की सुरक्षा पर आज तक ध्यान नहीं दिया गया।

केवलादेव : भरतपुर के केवलादेव घना पक्षी विहार को देश का प्रथम ऐसा अभयारण्य होने का गौरव प्राप्त है जिसे यूनेस्को ने **'विश्व धरोहर'** घोषित किया है। संयुक्त राष्ट्र सांस्कृतिक वैज्ञानिक एवं शैक्षणिक मामलात की विशेष संस्था 'यूनेस्को' ने अपनी विश्व धरोहर समिति की नवीं बैठक में प्रसिद्ध घना अभयारण्य को 'विश्व धरोहर' (World Heritage) घोषित किया।

यूनेस्को की विश्व धरोहर समिति विश्व के विभिन्न स्थलों की सांस्कृतिक अद्वितीयता या नैसर्गिक महत्ता के कारण विश्व धरोहर घोषित करते हुए समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि इस अभयारण्य की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि मानव ने अपने प्रयासों से एक ऐसी कृत्रिम झील विकसित की है जहाँ कई प्रकार के देशी व विदेशी पक्षी आते हैं, अपने घोंसले बनाते हैं तथा प्रजनन करते हैं। समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह भी कहा है कि घना का विकास मानव की बुद्धि व प्रयासों का फल है। अत: आज घना की नैसर्गिक समृद्धि इस बात का सबूत है कि मानव अपने सही विवेक से प्रयत्न करे तो किस प्रकार पर्यावरणीय सन्तुलन स्थापित कर सकता है जहाँ वन्य-जीव फल-फूल सकते हैं।

बोध प्रश्न

I. बहुविकल्पी प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. जैवमण्डल आरक्षित प्रदेश निम्न की सुरक्षा व संरक्षण करता है.
   (a) जंगली जन्तुओं की।
   (b) प्राकृतिक वनस्पति की।
   (c) जंगली मैदानों की।
   (d) उपरोक्त सभी। ( )
2. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम तथा पर्यावरण संरक्षण अधिनियम क्रमश: कब बने?
   (a) 1985, 1960
   (b) 1972, 1986
   (c) 1965, 1968
   (d) 1971, 1972 ( )
3. वन - महोत्सव ' का कार्यक्रम आरम्भ किया :
   (a) के. एम. मुन्शी ने।

(b) बाबा आप्टे ने।

(c) सुन्दरलाल बहुगुणा ने।

(d) इन्दिरा गाँधी ने। ( )

4. निम्न में से कौनसा प्राणी भारत में विलुप्त हो रहा है?

(a) बाघ

(b) गेंडा

(c) बन्दर

(d) भेड़िया ( )

5. निम्न में कौनसा जीव हाल में विलुप्त हो चुका है?

(a) डोडो

(b) टीरोडेक्टाइल

(c) ब्रोटोसॉरस

(d) इक्थियोफिस

Ii रिक्त स्थान भरिये (Fill in the Blanks)

1. वह क्षेत्र जहाँ मुख्य रूप से समस्त मिली-जुली वन्य जीवों के संरक्षण के लिये होता है उसे..... कहते हैं।
2. वह क्षेत्र जहाँ समस्त पारितन्त्र समाहित होता है, उसे..... कहते हैं।
3. भारत वन्य प्राणी परिरक्षण एक्ट वर्ष..... में लागू किया गया।
4. वह क्षेत्र जहाँ बहुधा विशिष्ट प्रकृति के संरक्षण के लिये निर्धारित किया है, उसे कहते हैं.....।
5. जून हर वर्ष..... दिवस के रूप में मनाया जाता है।

4.6 सारांश (Summary)

प्राकृतिक पर्यावरण में संतुलन बनाये रखने के लिये वनों एवं वन्यजीवों का महत्व निविर्वाद है। वन्य प्राणियों का महत्व व्यावसाय में मनोरंजन में, चिकित्सा के क्षेत्र में, आनुवांशिक पूल बनाने में होता है। विश्व भर में अनेक प्राणी तथा पादप जातियाँ तेजी से विलुप्त होने की अवस्था की ओर बढ़ रही है। **रेड डाटा बुक** में ऐसी 600 जन्तु तथा प्राणी प्रजातियों के नाम अंकित है। अभी भी लगभग 250 स्पेशीज विनाश के कगार पर है। ऐसी प्रजातियाँ हैं जिनके सदस्यों की संख्या 100 के नीचे हैं। कुछ की संख्या मात्र 10 ही है। भारत में स्तनियों कही 16 जातियाँ, पक्षियों कही तथा सरीसृपों की 3 जातियाँ रेड डाटा बुक में सम्मिलित है। उत्तर-जीविता सेवा आयोग द्वारा प्रकाशित रेड डाटा बुक, 1970 में 20000 ऐसी पादप जातियाँ सूचीबद्ध हो चुकी है जो विलोपन के कगार पर है।

वन्य जीव-संरक्षण के लिये जन्तुओं के शिकार पर पाबंदी लगाई गई है तथा पेड़-पौधों के व्यापार पर शर्तें लागू की गई है। राष्ट्रीय उद्यान, पक्षी अभ्यारण्य; वन्य जीव अभ्यारण्य तथा ' बायोस्फीयर रिजर्व' बनाये गये हैं जहाँ जन्तु निर्भय होकर विचरण कर सकें। हमारे देश में जीवों के संरक्षण के लिये हिसार में प्राणी **आनुवांशिक संपदा के संरक्षण** का **राष्ट्रीय ब्यूरो** बनाया गया

है। विश्व के विभिन्न भागों में जीन बैंकों की स्थापना की गई है। वन्य प्राणियों के संरक्षण के बहु प्रचलित उपाय है - आखेट की संख्या को कानून द्वारा प्रतिबंधित करना, कृत्रिम संग्रहण तथा आवास स्थल के सुधार। वन्य प्राणी के प्रबंधीकरण में वन्य प्राणि कोष अग्रणी है। इसके माध्यम से राष्ट्र प्रेमियों, विचारकों ' वैज्ञानिकों तथा धार्मिक नेताओं का ध्यान वन्य सम्पदा की ओर आकृष्ट कियज़ा गया है। वन्य जीवों को सुरक्षा हेतु बनायी गयी योजनाएँ हैं -

बाघ परियोजनाएँ, गिर सिंह अभ्यारण्य योजना, हिमालयी कस्तूरी परियोजना, मणिपुर थमिन परियोजना, मगर प्रजनन परियोजना, हाथी परियोजना। वन्य जीव संरक्षण में अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ जैसे **साइट्स, ट्रेफिक,** आईयूसीएन, डबल्यूडबल्यूएफ़ महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

4.7 शब्दावली (Glossary)

राष्ट्रीय उद्यान	National Park
अभ्यारण्य	Sanctury
जैव मण्डल प्रारक्षण	Biosphere reserve
रोयेंदार खाल	Pelt
समुद्री ऊदबिलाव	Sea otter
अविक्षुब्ध	Un-disturbed
अप्रतिस्थापनीय	Irreplaceable
कृत्रिम संग्रहण	Artificial Stocking
जैविक विभव	Biotic potential
धारण क्षमता	Carrying capacity

4.8 संदर्भ ग्रंथ (Further reading)

1. वी. एस. पंवार, प्राणि विविधता एवं उद्विकास; कॉलेज बुक सेन्टर, जयपुर
2. कोहली, रंगा, लौरी, प्राणि विविधता एवं उद्विकस; रमेश बुक डिपो, जयपुर
3. भाटिया एवं कोहली, पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय जैविकी, रमेश बुक डिपो, जयपुर

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to self assessment questions)

I. बहुविकल्पी प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1.(d) 2.(b) 3.(b) 4.(a) 5. (a)

II. रिक्त स्थान भरिये (Fill in the Blanks)

1. राष्ट्रीय उद्यान 2. जैवमण्डल आरक्षित प्रदेश
3. 1972 4 अभ्यारण्य
5. पर्यावरण

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise questions)

1. वन्य जीवों से आप क्या समझते हैं? व्याख्या कीजिए।

2. वन्य जीव व प्राणी क्या होते हैं? उनके महत्व पर प्रका श डालिए।
3. वन्य प्राणियों के प्रबन्धीकरण के विभिन्न प्रयासों पर सविस्तार चर्चा कीजिए।
4. अभयारण्य व वन्य प्राणियों से क्या तात्पर्य है? विलुप्त हो रहे वन्य जीवों पर सविस्तार चर्चा कीजिए।
5. विलुप्त होते वन्य प्राणी तथा पौधे कौन-कौन से हैं? इनके संरक्षण के लिए सरकार व समुदाय विशेषों द्वारा किये जा रहे प्रयासों पर प्रकाश डालिए।
6. अपने प्रदेश के सन्दर्भ में, उसकी भौगोलिक स्थिति बताते हुए उसमें पाये जाने वाले विभिन्न प्रमुख अभयारण्यों पर लेख लिखिए।
7. अरण्य रक्षण से आप क्या समझते हैं? अरण्य विनाश से होने वाली हानियों का अनुमान लगाइए।
8. वन्य प्राणियों का महल बताते हुए इसके प्रबन्धीकरण व संरक्षण पर लेख लिखिए।
9. राज्य (आपके या किसी) स्तर पर किये जा रहे वन्य जीवन के संरक्षणों पर सविस्तार चर्चाकीजिए।
10. टिप्पणी लिखिए
    (अ) वन्य-जीव संरक्षण
    (ब) प्रदेश के विभिन्न अभयारण्य
    (स) डोडो
    (द) बाघ परियोजना
    (च) वन्य जीवों का व्यापार
    (छ) वन्य प्राणियों की प्रायोगिक उपयोगिता
    (ज) विलुप्त होते वन्य प्राणी व पौधे
    (झ) रेड डाटा बुक व वन्य जीव सप्ताह।

इकाई 5 : महाद्वीपीय विस्थापन (Continental Drift)

इकाई की रूपरेखा (Out-Line of Unit)

5.0 उद्देश्य (Objectives)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

- 5.1.1 महाद्वीपीय प्रवाह (Continental Flow)
- 5.1.2 महाद्वीपीय विस्थापन के पक्ष में सुझाव (Suggestion In Support of continental Drift)
- 5.1.3 टैक्टोनिक प्लेट सिद्धान्त (Tectonic Plate Theory)
- 5.1.4 भूगर्भीय प्लेटों के निर्माण की विधि (Method for Formation of Geological Plates)
- 5.1.5 भविष्य में विस्थापन (Drifting in Future)

5.2 सारांश (Summary)

5.3 शब्दावली (Glossary)

5.4 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

5.5 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to Self-Assessment Questions)

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

5.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न बिन्दु जानने योग्य हो जायेंगे -

- महाद्वीपीय विस्थापन क्या है।
- महाद्वीपीय विस्थापन कैसे हुआ होगा॥
- महाद्वीपीय विस्थापन की प्रक्रिया को समझाने के लिये समय-समय पर क्या मत प्रस्तावित किये गये।
- विस्थापन का भविष्य में क्या प्रभाव होगा।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

पृथ्वी के महाद्वीप जैसे आज हैं, पहले ऐसे नहीं थे। यूनानी भाषा में 'पैंजिया' का अर्थ होता है सारे भूखंड (all Lands)। उस समय पृथ्वी की सतह पर बस दो ही आकार थे। बीच में 'पैंजिया' और उसके चारों ओर फैली विशाल जल राशि। इसके सम्बन्ध में कुछ प्रमाण हैं जिससे पता चलता है कि महाद्वीप बड़े-बड़े पृथ्वी के खण्डों के टूटने से बने और समय के साथ-साथ आज जैसी स्थिति तक पहुँच पाए हैं। वैज्ञानिक **मोरिस इविंग** (Mourice Ewing) का कहना है कि महाद्वीपों का बहाव अथवा एक-दूसरे से दूर-दूर तक हटना एक सचाई है जैसे किडार्विन का उद्विकासीय सिद्धान्त और आइन्सटीन के गति तथा ऊर्जा के सिद्धान्त **'कॉन्टिनेन्टल ड्रिफ्ट'** अथवा **महाद्वीपीय विलगाव** सिद्धान्त के अनुसार आज के महाद्वीप एक बड़े पृथ्वी के खण्ड के भाग थे जिसे ग्रीक शब्द में **पैंजिया** (Pengaea) कहा जाता है, अर्थात् **'सब द्वीप'** (all islands) जो आज

से 2000 लाख (200 मिलियन) वर्ष पूर्व छोटे टुकड़ों में टूटने आरम्भ हो गए और एक-दूसरे से अलग हो गए। इन टूटे हुए खण्डों का विलगाव या चलना आज भी निरन्तर जारी है और इस सिद्धान्त के अनुसार आने वाले समय में आज के महाद्वीपों की बनावट वैसी नहीं रह पाएगी जो आज है।

कॉन्टिनेन्टल ड्रिफ्ट अथवा महाद्वीपीय विलगाव के सिद्धान्त में पूरी सहमति है। कुछ विशेषज्ञ एक बड़े पृथ्वी के खण्ड **'पैन्जी'** के स्थान पर दो बड़े **पृथ्वी के खण्ड** (land masses) **लौरेशिया** (Lourasia) तथा **गोंडवाना** (Gondwana) मानते हैं जिससे छोटे-छोटे खण्ड उत्पन्न हुए यह 2000 लाख वर्ष पुराना विलगाव केवल हजारों लाख वर्षों पूर्व चलने वाले महाद्वीपीय विलगाव की एक अवस्था है। भू-गर्भशास्त्रियो का मत है कि पृथ्वी के इतिहास में महाद्वीप कई बार आपस में जुड़े और कई बार टूटे। यह प्रक्रिया कितनी बार हुई किसी को इसका ज्ञान नहीं है।

ट्रिएसिक युग यानी अब से कोई 20 करोड़ वर्ष पहले 'पैंजिया' का विघटन हुआ और वह दो खण्डों में विभक्त हो गया। उत्तरी भूखण्ड को भूगर्भविदों ने नाम दिया **'लारेशिया'**। दक्षिणी भूखण्ड को जाना गया **'गौंडवाना लैंड'** के नाम से। परन्तु यह दोनों एक 'सघन पिंड' (compact mass) के रूप में नहीं थे। इनके बीच-बीच में कुछ **दरारें** (Joints) और **विभंजन** (fractures) थे।

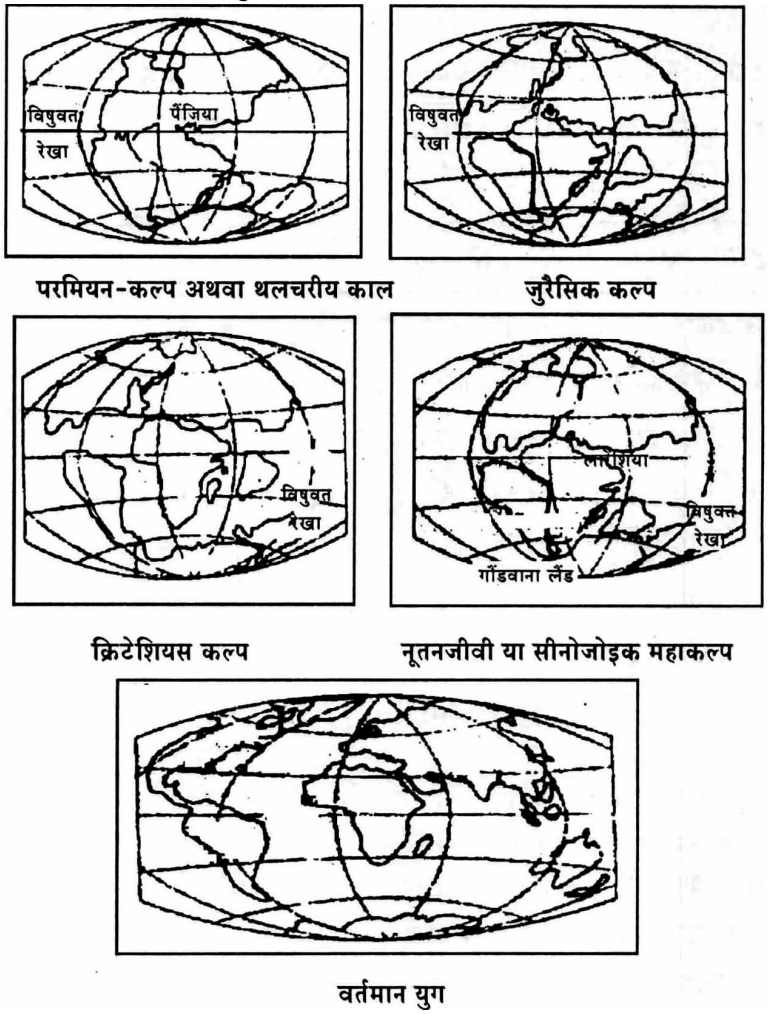

चित्र 5.1 : पैन्जीया के टूट कर विभिन्न सब द्वीप बनने की प्रक्रिया का निस्सण।

कालांतर में इन्हीं दरारों वाले सीमांतों से पृथक् होकर ' लारेंशिया' एवं 'गौंडवाना लैंड' कई छोटे भूखंडों में विघटित हो गये। न केवल विघटन, वरन ये विविध दिशाओं में प्रवाहित भी होने लगे। जर्मन भूगर्भविद् ए. वैगनर ने इस प्रवाह को **महाद्वीपीय प्रवाह** (Continental drift) की संज्ञा दी है। भूखंडों का एक दूसरे से दूर जाने का यह क्रम चलता रहा और जुरैसिक युग (लगभग 13. 6 करोड़ वर्ष पूर्व) आतें- आते यह स्थिति बनी कि ये सातों भूखण्ड अलग- अलग हो गये। हाँ, यूरेशिया और उत्तरी अमेरिका, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका तथा अंटार्कटिक एवं आस्ट्रेलिया एक दूसरे से लगभग सटे हुए थे। अफ्रीका और यूरेशिया के बीच में विशाल जलाशय था जबकि आज का भारत प्रायद्वीप यूरेशिया खण्ड से बहुत दूर अफ्रीका के पूर्व में एक पृथक् भूखण्ड के रूप में था।

5.1.1 महाद्वीपीय प्रवाह (Continantal Flow)

प्रवाह का यह क्रम चलता रहा और अब से कोई 8. 5 करोड़ वर्ष पूर्व क्रैटेशियस युग आते-आते उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका भी अलग हो गये। यह वह समय था जबकि भारत भूखण्ड चीन से लगभग 6000 किमी. दूरी पर था परन्तु इसका उत्तर की ओर प्रवाह एक शताब्दी में कुछ सैंटीमीटर की दर से निरन्तर रहा और प्रवाहित होते-होते अब से कोई 1 करोड़ वर्ष पूर्व यह यूरेशिया खण्ड के बहुत नजदीक आ गया। इन दोनों के बीच में स्थित जलाशय (टैथिस सागर) में उत्तर और दक्षिण दोनों तरफ से तलछट जमा हो गयी थी जिस पर दबाव पड़ने से मोड बनने लगे। हिमालय पर्वत क्रम वे ही मोड़ हैं। दुनिया के अन्य पर्वत क्रम-रॉकी, एण्डीज या आलस भी इसी प्रकार के प्रवाह जन्य दबाव से विधि युगों में बनी रचनाएँ हैं। इस प्रकार पृथ्वी का वर्तमान स्वरूप-महाद्वीपों और महासागरों का अस्तित्व-वस्तुत: पृथ्वी की उन **संरचनात्मक दबाव शक्तियाँ** (Tectonic Forces) का परिणाम है जो पैंजिया के विघटन और भूखण्डों के प्रवाह में मूल रूप से सर्वत्र प्रभावी रही हैं। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जहाँ दो भूखण्ड मिल कर एक थल रूप में हो गये हैं वहाँ भी यह प्रवाह-जन्य दबाव उन भूखण्डों के सीमांत क्षेत्रों में निरंतर रहता है। इसी के फलस्वरूप उन भागों में अस्थिरता रहती है। धरातल पर इसी अस्थिरता के कारण चट्टानों में मोड, भ्रंश तथा ज्वालामुखी और भूकम्प होते हैं।

5.2 महाद्वीपी विस्थापन के पक्ष में सुझाव (Suggestion in support of continental Drift)

1912 में एक जर्मन विशेषज्ञ **एलफ्रेड वैगनर** (Alfred Wegner) ने एक प्रमाण रखा कि अफ्रीका की **गिनी की खाड़ी** (Gulf of guinea) और **ब्राजील** (Brazil) के कुछ भागों की चट्टानों की उम्र और बनावट एक जैसी हैं जिससे यह अनुमान लगाया गया कि ये चट्टानें एक ही भू-गर्भीय गर्भ से उत्पन्न हुई होंगी। इतना ही नहीं, बल्कि एक जैसे पादपों और जन्तुओं के जीवाश्म विश्व के कई अलग-अलग भागों में पाए गए थे जैसे कि अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका, ऑस्ट्रेलिया और भारत में। वैगनर के मित्रों ने इस सुझाव का खण्डन किया क्योंकि कौन भू-गर्भीय प्रक्रिया को नहीं समझा पाये। दूसरे शब्दों में, वे कौनसे बल थे जिनके कारण महाद्वीप टूटकर अलग हुए इसको वह न समझा सके।

वैगनर के सुझाव को 1950 में कुछ मान्यता प्राप्त हुई जब कुछ विशेषज्ञों ने गहरे समुद्री **उभारों** अथवा **टीलों** (ridges) और **पर्वतों** की खोज की। ये **उभार** अथवा **टीले** (ridges) 47,000 मील लम्बी क्षृंखता बनाते हैं और महासागरों के बीचों बीच फैले हुए हैं। इस शृंखला के मध्य नीचे के भागों से लावा टपकता हुआ नजर आता था। कई विधियों द्वारा महासागरों की गहराई मापने के पश्चात् पाया गया कि महासागरीय फर्श पर पाये जाने वाले तलछट (sediments) केवल कुछ लाख साल पुराने थे जबकि महासागर स्वयं कई करोड़ वर्ष पुराने हैं। सम्भवत: लावा समुद्री टीलों रो उत्पन्न होकर लगातार ऊपर उठकर समय के साथ- साथ कठोर होता गया जिसके फलस्वस्म नये महासागरीय फर्शे अथवा पर्तें बनती गईं।

5.1.3 टैक्टोनिक प्लेट सिद्धान्त (Tectonic Plate Theory)

1960 मै **डॉ. हैरी हैस** (Dr. Herry Hess) ने एक ठोस प्रमाण द्वारा बताया कि पृथ्वी का आन्तरिक आवरण रेडियो- एक्टिव तत्वो द्वारा गर्म होता है और इसके फलस्वरूप गर्म प्रवाह उत्पन्न हो कर लावा को ऊपर की ओर ले जाता है और आवरण के ऊपरी द्रव्यी परत से शक्ति से गुजरता है। यही गर्म लावा (पदार्थ) है जो कि मध्य सागरीय टीलों से ऊपर तल पर उठता है। यह लावा तब कठोर होकर एक परत बनाता है जिसे **लिथोस्फ़ियर** (Lithosphere) कहते हैं। अधिक लावा की मात्रा टीलों रो निकल कर पुराने लिथोस्फियर से चिपकता हुआ पार्श्विक (lateral) दिशा की तरफ धीरे- धीरे बढ़ता चला जाता है। इस लावा के लगातार बहाव से यह हजारों मील दूर महासागर के फर्श पर फैल जाता है। इस प्रकार इस प्रक्रिया से एक के ऊपर एक लावा की परत बनती चली जाती है, जिन्हें **प्लेट्स** (Plates) कहते हैं। इस प्रकार लगभग 6 से 20 तक प्लेटें बनती हैं जिनके ऊपर सभी महाद्वीप और महासागर स्थित हैं और प्रत्येक प्लेट की मोटाई 50 से लेकर 100 किलोमीटर होती है। यह. समझा जाता है कि यह रेंगती हुई प्लेटें महाद्वीपों को हिलाने में बड़ी **कन्वेयर बेल्ट्स** (Conveyor belts) का कार्य करती है। डॉ. हैरन स्वयं इस प्लेट के सिद्धान्त को संतोषजनक नहीं मानते। वह कौनसी शक्ति थी जिसने इन भूखण्डों को खिसकाया कि आज भी वह क्रम चालू है। इस बिन्दु पर वैगनर कोई संतोषजनक एवं ठोस आधार प्रस्तुत नहीं कर पाये। परन्तु अब भूगर्भविदों, जिनमें आर्लिंगटन स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ टैक्सास के प्रोफेसर **क्रिस्टोफर स्कोत्से** का नाम उल्लेखनीय है, ने इस रहस्य पर से भी पर्दा उठाने में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है। उनका मानना है कि पृथ्वी की ठोस पपड़ी जिस पर हम रहते हैं वस्तुत: कुछ अत्यधिक कठोर पट्टियों (rigid slabs) में विभक्त है जिन्हें भूगर्भविदों ने **'प्लेट टैक्टोनिक'** नाम दिया है। कोई एक दर्जन के लगभग ये 'प्लेट्स' सापेक्ष रूप में एक दूसरे की तरफ प्रवाहित होती रही हैं। इस बात की संभावना हो सकती है कि अधिक घनत्व वाली **महासागरीय तल पपड़ी** (oceanic crust) ने कम घनत्व वाले **महाद्वीपीय पटल** (continental crust) को प्रवाह हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ प्रस्तुत की हों।

अध्ययनों से पता चलता है कि वह प्लेट जिस पर **भारतीय उपमहाद्वीप** (Indian sub-continent) टिका हुआ है उस प्लेट का सबसे लम्बा **प्रवासन** (migration) हुआ है जो कि 2000 लाख वर्षों में लगभग 5600 मील है। भारत मौलिक रूप से एन्टार्कटिका (Antarctica) से जुड़ा हुआ था। टूटने की प्रक्रिया के पश्चात् वह आयताकार प्लेट जिस पर **भारत** स्थित था, पश्चिम की ओर प्रवास किया। यह प्लेट बाद में एशिया के दक्षिण- पूर्व भाग से टकराई और हिमालय पर्वत

को उभारा। इस प्रवासन की क्रिया के दौरान लगभग 650 लाख वर्षों के पश्चात् भारत अन्टार्कटिका से अलग हो गया। इस प्रकार भारत भू-मध्य रेखा (equator) के निकट इस गर्म क्षेत्र से गुजरा जहाँ लावा महासागरीय टीलों से बाहर निकल रहा था। यह लावा भारतीय प्लेट से जुड़ता गया जो कि कठोर होकर **दक्षिण-पठार** (Deccan Plateau) में परिवर्तित हो गया। लगभग इसी समय उत्तरी **अटलांटिक** (Atlantic) और हिन्द महासागर (Indian Ocean) काफी खुल गये थे।

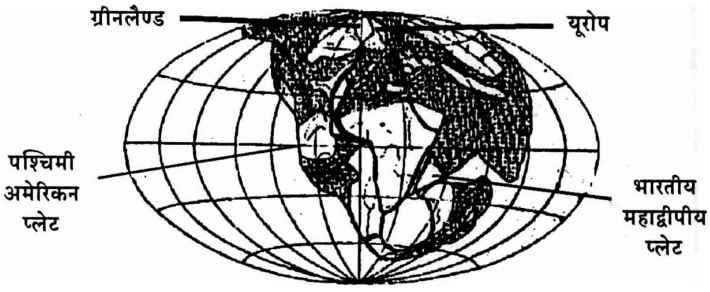

(अ) वह प्लेट जिस पर भारतीय उपमहाद्वीप (Indian sub-continent) टिका हुआ है उस प्लेट. सबसे लम्बा प्रवासन (migration) हुआ है जो कि 2000 लाख वर्षो में लगभग 5600 % है। भारत मौलिक रूप से एन्टार्कटिका (Antarctica) से जुड़ा हुआ था॥

UPPER CARBONIFEROUS

(ब) टूटने की प्रक्रिया के आयताकार प्लेट जिस पर भारत स्थित था, पश्चिम की ओर प्रवास किया। यह प्लेट बाद में एशिया के दक्षिण-पूर्व भाग से टकराई और हिमालय पर्वत को उभारा। इस प्रवासन की क्रिया के दौरान लगभग 650 लाख वर्षो के पश्चात् भारत स्टार्कटिका से अलग हो गया।

(स) लगभग इसी समय उत्तरी अटलांटिक (North Atlantic) और हिन्द महासागर (Indian Ocean) काफी खुल गये थे।

OLDER QUATERNARY

चित्र 5. 2 : महाद्वीपीय बहाव

अन्तिम क्रीटैसियस युग में भारत का **गौण्डवानालैंड** से सम्बन्ध टूट गया तथा भारतीय प्लेट के उत्तर की ओर खिसकाव के कारण भारतीय उपमहाद्वीप का उत्तर की ओर प्रवाह प्रारम्भ हो गया तथा हिन्द महासागर की उत्पत्ति तथा विस्तार प्रारम्भ हो गया (आज से लगभग 700 से 750 लाख या 75 - 70 मिलियन वर्ष पूर्व)। लगभग 500 से 550 लाख या 50 - 55 मिलियन वर्ष पूर्व (मध्य इयोसीन युग) भारतीय प्लेट का एशियाई प्लेट के नीचे **क्षेपण** (subduction) होने से हिमालय का निर्माण प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार उत्तर की ओर भारतीय प्लेट के प्रवाह के कारण दक्षिणी स्थलभागों के बहुत से पौधे तथा प्राणी अत्यधिक उत्तर की ओर पहुँच गये परन्तु इस उत्तर की ओर प्रवाह के दौरान भारत के मौलिक पौधे तथा प्राणी लुप्त हो गये क्योंकि इस उत्तरी प्रवाह के समय पौधों तथा प्राणियों को कई प्रकार की जलवायु मेखलाओं से होकर गुजरना पड़ा था। हिमालय की उत्पत्ति के कारण भारत तथा एशिया के मध्य पौधों के विसरण में भौगोलिक अवरोध भी उत्पन्न हो गया।

पश्चिमी अमरीकन प्लेट उत्तर-पश्चिम की ओर बह गई और **यूरोपीय प्लेट** उत्तर की ओर। दक्षिण अमरीका पश्चिम की ओर तथा ग्रीनलैण्ड और उत्तरी यूरोप जो कि वस्तुतः उसी जमीन के टुकड़े पर स्थित थे, ने एक दूसरे का साथ छोड़ा। उत्तरी अमेरिका के यूरोप से अलग हो जाने तथा इन दोनों के मध्य अटलाण्टिक महासागर के निर्मित होने पर भी उत्तरी अमेरिका एवं यूरेशिया के मध्य पादपों एवं प्राणियों का विसरण अबाध गति से दो रूपों में होता रहा- (1) मध्य महासागरीय कटक एवं ज्वालामुखी द्वीपों से होकर एवं (11) एशिया- उ अमेरिका के मध्य **बेरिंग स्थल सेतु** (Bearing land bridge) द्वारा। यही कारण है कि तीनों **उत्तर ध्रुवीय** (Holarctic) महाद्वीपों (उ. अमेरिका, यूरोप तथा एशिया) के शीतोष्ण कटिबन्धीय सदाबहार कोणधारी एवं चौड़ी पत्ती वाले पतझड़ वनों में पर्याप्त समता मिलती है।

मैडिटेरेनियन में एक भयानक उथल-पुथल हुई जहाँ अफ्रीका यूरोप से टकरा गया जिसके फलस्वरूप **पाइरैनिडेज, एपेनाइनज** और **एल्पस** पर्वतों का जन्म हुआ। सबसे बाद में अपने उद्गम जमीनी खण्ड के हटने वाला महाद्वीप ऑस्ट्रेलिया था जो कि अब दक्षिण-पूर्वी एशिया से टकराने अथवा मिलने की इन्तजार में है और सम्भव है कि वह इसका भाग बन जाये। अन्तिम क्रिटेसियस युग में **गौण्डवानालैण्ड** विभाजन प्रारम्भ हुआ और ऑस्ट्रेलिया का अण्टार्कटिका में अलगाव एवं प्रवाह हुआ। परन्तु ऑस्ट्रेलिया का अण्टार्कटिक से अलगाव एवं प्रवाह मध्य मायोसीन युग में (50-55 मिलियन वर्ष पूर्व) प्रारम्भ हुआ। गोण्डवानालैण्ड से अलग होने पर ऑस्ट्रेलिया का प्रवाह उत्तर की ओर होने एवं एशियाई प्लेट से इसका टकराव होने से इसका सम्बन्ध न्यू गुयाना या गिनी द्वारा एशिया से हो गया। इसी समय न्यूज़ीलैण्ड का अन्टार्कटिका से अलगाव हो गया। इस प्रकार ऑस्ट्रेलिया का गोण्डवानालैण्ड के अन्य भागों से पृथक्करण (isolation) होने से उसके अपने विशिष्ट **देशज** (native) पादपों (यथा Eucalyptus वृक्ष) तथा प्राणियों (यथा, थैलीदार जानवर marsupials, कंगारू आदि) का विकास हुआ।

बोध प्रश्न

1. महाद्वीपीय प्रवाह (विस्थापन) की परिकल्पना प्रस्तुत की
   (a) स्वलेटर
   (b) गहरे
   (c) वेलेस

(d) वैगनर ( )

2. पनामा भू-संधि पायी जाती है :
   (a) एशिया व उत्तरी अमेरिका के बीच
   (b) उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका के बीच
   (c) उत्तरी अमेरीका व अफ्रीका के मध्य
   (d) यूरोप व अफ्रीका के मध्य ( )

II. रिक्त स्थान भरिये (Fill in the Blanks)

1. मॉरिस इविंग के मतानुसार की महाद्वीपों का ..... अथवा एक दूसरे से दूर- दूर तक हटना एक सच्चाई है।
2. 'कान्टिनेन्टल ड्रिफ्ट' सिद्धान्त के 'अनुसार आज के महाद्वीप एक बड़े पृथ्वी के खण्ड के भाग थे जिसे ग्रीक शब्द में..... कहा जाता है।
3. 1960 में डॉ. हैरी हैस के अनुसार पृथ्वी का आन्तरिक आवरण..... तत्वों द्वारा गर्म होता है।
4. महाद्वीपों के चलन का अध्ययन करने के लिये ऑशियोनोग्राफिक इन्सटिटयूट ऑफ केलिफोर्निया ने एक विशेष जहाज..... द्वारा अभियान छेड़ा।
5. भारत मौलिक रूप से..... से जुड़ा हुआ था।

5.1.4 भूगर्भीय प्लेटों के निर्माण की विधि (Method for Formation of Geological plates)

भू-गर्भीय प्लेटों के निर्माण की विधि से हम पता लगा सकते हैं किं भू-गर्भीय प्रक्रिया से किरन प्रकार नाटकीय ढंग से पर्वतों का बनना तथा ज्वालामुखी द्वीपों (Volcanic islands) की उत्पत्ति होती है। जब महाद्रीपों और महासागरों को अपने ऊपर उठाते ये प्लेटें मिलती हैं तो उसका परिणाम तीन प्रकार से हो सकता है

1. पहला जब दो महासागरीय प्लेटें आपस में मिलती हैं तो एक प्लेट दूसरी के नीचे दब जाती है जिसके फलस्वरूप **ज्वालामुखी द्वीप** ऊपर उठ जाते हैं। इन्हीं द्वीपों से ही, वास्तविक रूप में यह समझा जाता है कि नये महाद्वीपों का निर्माण हुआ।
2. दूसरे, जब **दो प्लेटें एक महासागर और एक महाद्वीप** को उठाए हुए एक-दूसरे से टकराती हैं, तो महाद्वीपीय प्लेट महासागरीय प्लेट के नीचे धँस जाती है जिसके फलस्वरूप फोल्ड पर्वत (fold Mountains)बनते हैं जैसे कि द. अमरीका का एण्डीज (Andes) पर्वत।
3. तीसरे, जब एक महाद्वीपीय प्लेट दूसरी महाद्वीपीय प्लेट से मिलती है तथा दोनों में से एक भी एक-दूसरे के नीचे दबने में असफल होती है तो फलस्वरूप दोनों आपस में टकराती है। इस का टकराव से भयानक यांत्रिक बल उत्पन्न होते हैं जिनके द्वारा पर्वत शृंखला का निर्माण होता है। इसी विधि द्वारा ही **हिमालय पर्वत श्रृंखला** ऊपर उठी जब भारतीय प्लेट चीन के दक्षिणी क्षेत्र से टकराई। **एल्पस** (498) पर्वत इसी प्रकार बने जब महाद्वीपीय प्लेटें एक- दूसरे से लगातार टकराती हुई आपस में मिल गयी।

प्लेट टेक्टोनिक सिद्धान्त की जाँच हेतु भूगर्भविद् जब महासागरीय तल पपड़ी का अध्ययन कर रहे थे तो एक नयी और आश्चर्यजनक बात सामने आयी। पता चला कि महासागरीय पपड़ी की चट्टानें

अपेक्षाकृत नयी हैं। ध्वनि अनुनाद (Echo-soundings) विधि से जब वे इनकी गहराई नाप रहे थे तो एक और नया तथ्य सामने आया। ज्ञात हुआ कि पूरी पृथ्वी पर महासागरों की जलराशि में छिपी एक विशाल कूटिका (ridge) है। लगभग 50, 000 किमी. लम्बाई की यह पहाड़ी शृंखला जिसे भूगर्भविदों ने **'ग्लोबल मिड ओसयनिक रिज'** नाम दिया है, अटलांटिक महासागर में तो हिमालय से भी ज्यादा ऊँची है। यह भी पता चला कि इस पहाड़ी कूटिका के शिखर (crest) पर नयी चट्टानें हैं। जैसे-जैसे कुटिका से दूर चलते जाते हैं चट्टानें पुरानी होती जाती हैं। इसका मतलब है कि कुटिका शिखर क्षेत्र में मैग्मा (पृथ्वी के भीतरी भागों से ऊपर की ओर आया तप्त तरल पदार्थ) का प्रवाह और जमाव निरन्तर होता रहा है। स्वाभाविक है कि इससे पुरानी चट्टानें क्रमश: दूर खिसकती जायेंगी। इस सारी प्रक्रिया को भूगभविदों ने **'समुद्री तल का फैलाव'** (sea floor spreading) नाम दिया है। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि मध्यअटलांटिक कूटिका के सहारे यह फैलाव 2.5 सेमी. प्रति वर्ष की दर से हुआ है। यही कारण है कि पिछले 20 करोड वर्ष में अटलांटिक. जो अमेरिका तथा अफ्रीका एवं यूरोप के बीच एक पतली जलीय-पट्टी के रूप में था, फैलकर हजारों किमी. चौड़ा महासागर बन गया।

5.1.5 भविष्य में विस्थापन (Drifting in Future)

महाद्वीपीय बहाव की प्रक्रिया को जानने के पश्चात् वैज्ञानिक यह अनुमान लगा सकते हैं कि अगले 600 लाख वर्षों में क्या होने की सम्भावना है।

(i) दक्षिण **प्रशान्त** (पैसेफिक) और भारतीय महासागर प्रशान्त महासागर की अवनति कर (पैसेफिक) ही वृद्धि कर पायेंगे।

(ii) अफ्रीका अपना पूर्वीय भाग खो देगा और यह अपने उत्तरी बहाव के फलस्वरूप यूरोप से जुड़ जायेगा और साथ में **मैडिटिरेनियन समुद्र** (mediterranean sea) को निगल लेगा और बिस्के की खाड़ी (Bay of Biscay) को बन्द कर देगा।

(iii) कैरिबियन (Caribbean) में नई जमीन उत्पन्न होगी।

(iv) कैलिफोर्निया (California) का भाग अमरीकन महाद्वीप से अलग टूट कर लॉस ऐंजिलिस (Las Angeles) को अपने साथ बहा ले जाएगा। 100 लाख (10 मिलियन) वर्षों में लॉस एन्जिलिस सैन फ्रान्सिसको (San Francisco) के अगल-बगल आने की सम्भावना है जो कि मुख्य जमीन से जुड़ा रहेगा।

5.2 सारांश (Summary)

पृथ्वी के महाद्वीप आज जैसे हैं पहले ऐसे नहीं थे। महाद्वीप बडे-बड़े पृथ्वी के खण्डों के टूटने से बने तथा समय के साथ आज जैसी स्थिति में पहुँच गये। टूटे हुए खण्डों ने आपस में जुड़कर महाद्वीपों की शक्ल ली। खण्डों का चलना या बहाव आज भी जारी है। भूगर्भशास्त्रियों का मत है कि पृथ्वी के इतिहास में महाद्वीप कई बार आपस में जुड़े तथा कई बार टूटे। महासागरों में बीचोबीच टीलों की लम्बी क्षृंखला देखी गयी। इन क्षृंखलाओं के मध्य नीचे के भागों में लावा टपकता हुआ नजर आया। सम्भवत: लावा समुद्री टीलों से उत्पन्न होकर लगातार ऊपर उठकर कठोर होता गया जिससे नये महासागरीय फर्श व पर्तें बनती गयी। इस प्रकार 6 से 20 तक प्लेटें बनती हैं जिसके ऊपर महाद्वीप व महासागर स्थित हैं। स्कोटसे का मानना है कि पृथ्वी की ठोस

पपड़ी जिस पर हम रहते हैं वस्तुत: कुछ अत्यधिक कठोर पट्टियों में विभक्त रहते हैं जिन्हें **प्लेट टैक्टानिक** नाम दिया गया।

भारतीय उपमहाद्वीप जिस प्लेट पर टिका है उसका सबसे लम्बा प्रवासन हुआ है जो 2000 लाख वर्षो में लगभग 5600 मील है। भारत एन्टार्कटिका से जुड़ा था जहाँ से पृथक होने के पश्चात् यह भूमध्य रेखा के निकट गर्म क्षेत्र से गुजरा जहाँ लावा महानगरीय टीलों से बाहर निकल रहा था। लावा भारतीय प्लेट से जुड़कर कठोर होता गया तथा **दक्षिण पठार** में परिवर्तित हो गया। इसी समय **उत्तरी अटलांटिक** एवं **हिन्द महासागर** काफी खुल गये थे। अन्तिम क्रीटेसियस युग में भारतीय प्लेट उत्तर की ओर खिसक गई। मध्य इथोसिन में भारतीय प्लेट का एशियाई प्लेट के नीचे क्षेपण होने से हिमालय का निर्माण आरम्भ हुआ। जिसकी उत्पत्ति से भारत व एशिया के मध्य पौधों के विसरण से भौगोलिक अवरोध भी उत्पन्न हुआ। पश्चिमी अमरीकन प्लेट उत्तर-पश्चिम की ओर बह गई और यूरोपियन प्लेट उत्तर की ओर। उत्तरी अमेरिका व यूरोप के अलग होने पर उनके मध्य अटलाण्टिक महासागर निर्मित हुआ। मैडिटेरिनियम में भयानक उथल पुथल से अफ्रीका यूरोप से टकरा गया जिसके फलस्वरूप पाइरेनिडेज, एपेनाइनस एवं अल्पस पर्वतों का जन्म हुआ। आनुमं इन. क्रीटैसिस युग में ' गौण्डवाना लैण्ड ' का विभाजन प्रारम्भ हुआ तथा मध्य मायोसीन युग में (50 - 55 मिलियन पूर्व) आस्ट्रेलिया का अण्टार्कटिक से अलगाव एवं प्रवाह प्रारम्भ हुआ। ऐसा अनुमान " लगाया जा रहा है कि अगले 800 लाख वर्षो में अनेक परिवर्तन होने की सम्भावनाएँ हुँ।

5.3 शब्दावली (Glossary)

प्रवासन	Migration
ज्वालामुखी	Volcano
दक्षिण पठार	Deccan plateau
क्षेपण	Subduction
ध्वनि अनुनाद	Echo sounding
सब उपद्वीप	All islands

5.4 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

कोहली व भाटिया, प्राणी विविधता तथा उद्विकास, रमेश बुक डिपो, जयपुर-नई दिल्ली

5.5 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to self assessment questions)

I. बहु विकल्पी प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. (d) 2.(b)

II. रिक्त स्थान भरिये (Fill in the blanks)

1. विस्थापन 2.पैंजिया
3. रेडियोएक्टिव 4.ग्लोमर चैलेंजर
5. एन्टार्कटिका

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise questions)

1. 'महाद्वीपी विस्थापन' पर विस्तृत जानकारी दीजिए।
2. महाद्वीपी विस्थापन' के पक्ष में विशेषज्ञों द्वारा दिये गये अनेक सुझावों का वर्णन कीजिये।
3. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखो-
   (i) टैक्नोनिक प्लेट सिद्धान्त
   (ii) पैंजिया
   (iii) भविष्य में विस्थापन की संभावना
   (iv) वैगनर का सिद्धान्त

इकाई 6: वर्गिकी के सामान्य सिद्धान्त एवं पंच-जगत् संकल्पना (General Principles of Taxonomy and Concept of Five-Kingdoms Scheme)

इकाई की रूपरेखा (Out-line of Unit)

6.0 उद्देश्य (Objectives)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 इतिहास (History)

6.3 नामकरण पद्धति (Nomenclature)

6.3.1 द्विनाम पद्धति (Binomial Nomenclature)

6.3.2 त्रिनाम पद्धति (Trinomial Nomenclature)

6.4 पंच-जगत् संकल्पना (Concept of Five-Kingdom)

6.5 सारांश (Summary)

6.6 शब्दावली (Glossary)

6.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Reading)

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to Self Assessment Questions)

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस खण्ड में वर्गिकी के सामान्य सिद्धान्त, विभिन्न नामकरण पद्धति, वर्गीकरण के आधार एव विभिन्न प्रकार के नॉन कॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा के प्राणियों के स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण की चर्चा की गई है। यह खण्ड पढ़ लेने के बाद आप -

- पंच-जगत् संकल्पना की जानकारी कर पायेंगे।
- नामकरण पद्धति के बारे में जान पायेंगे।
- विभिन्न नॉन-कॉर्डेटस एवं कॉर्डेटस का वर्गीकरण कर पायेंगे।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्राणी विविधता की इकाइयों में आप विश्व के प्रमुख प्राणि-भौगोलिक क्षेत्र, राजस्थान एवं भारत में वन्य जीवों का संरक्षण व प्रबन्धन, अनुकूलन, प्राणियों के संरक्षण के उपाय एवं महाद्वीपीय विस्थापन के बारे में अध्ययन कर चुके हैं।

इस इकाई में आप प्राणियों के वर्गीकरण करने से सम्बन्धित सिद्धान्त, पंच जगत् परिकल्पना, वर्गीकरण का आधार तथा विभिन्न प्राणियों के लक्षणों का अध्ययन करेंगे।

6.2 इतिहास (History)

- ग्रीक दार्शनिक **अरस्तु** (Aristotle) ने सर्वप्रथम जन्तुओं का वर्गीकरण दो महा समूहों में रक्त के रंग के आधार पर किया था, इसलिये इन्हें **"प्राणि-विज्ञान का जनक"** (Father of

Zoology) एवं **वर्गिकी का जनक** (Father of Taxonomy) भी कहा जाता है। अरस्तु ने अपने विचारों को **हिस्टोरिया ऐनीमेलियम** नाम पुस्तक में प्रकाशित किया था।

1. **महा समूह - ऐनैइमा** (Anaima). इस समूह में उन प्राणियों को सम्मिलित किया था जिनके शरीर में लाल रक्त अनुपस्थित होता है, जैसे- पोरीफेरा, निडेरिया, मोलस्का, आर्थोपोडा, इकाईनोडर्मेटा आदि संघ के अकशेरुकी जन्तु।
2. **महा समूह - इनैइमा** (Enaima). इस समूह के प्राणियों के शरीर में लाल रक्त उपस्थित होता है। इस समूह में कशेराकी प्राणियों को सम्मिलित किया जाता है। इस समूह को दो उप-समूहों में वर्गीकृत किया गया है -
   i. वर्ग - **विविपेरा :** जरायुज (शिशुओं को जन्म देने वाले) जन्तुओं का समूह;
   ii. वर्ग - **ऑविपेरा :** अण्ड युज (अण्डे देने वाले) जन्तुओं का समूह।

   जॉन रे (Jhon ray) ने जबसे पहले प्राणि-जाति की परिभाषा दी तथा प्राकृतिक संरचनाओं के आधार पर प्राणियों का वर्गीकृत किया।

- **कॉर्ल वॉन लिने** (Karl Von Linne) : स्वीडन के वनस्पतिज्ञ, जो बाद में **कैरोलस लिनियस** (Carolus Linnaeus) नाम से प्रसिद्ध हुये। इन्होंने अपनी पुस्तक **"सिस्टेमा नेचुरी"** के दसवें संस्करण में ज्ञात जातियों का वर्गीकरण किया तथा जन्तुओं के नामकरण के लिये **द्विपद नाम पद्धति** (binomial nomenclature) की स्थापना की। इसी कारण लीनियस को **"आधुनिक वर्गिकी का जनक"** (Father of Modern Taxonomy) कहा जाता है।
- **जॉर्ज लियोपोल्ड क्यूवियर** (George Leopold Cuvier) ने वर्गीकरण में **संघ** तथा उपसंघ को सम्मिलित किया।
- **अरनेस्ट हीकल** (Earnest Haeckel) तथा **लेन्केस्टर** (Lancaster) ने आधुनिक जन्तु वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्तों की रूप-रेखा प्रस्तुत की थी तथा तीसरा जगत प्रोटीस्टा की स्थापना की।
- **मेयर** (Mayour) ने जाति की आधुनिक परिभाषा दी। मेयर के अनुसार लैंगिक प्रजनन अथवा अन्तरा प्रजनन द्वारा सन्तानोत्पत्ति करने वाले जीव एक ही जाति के होते हैं।
- **वहीटेकर** (Whittaker) ने पंच जगत् (Five Kingdoms) का आधुनिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया था।

6.3 नामकरण पद्धति (Nomenclature)

किसी भी प्राणी के अध्ययन या वर्गीकरण के लिये उसकी पहचान आवश्यक है और पहचान के लिये, उसका नामकरण आवश्यक होता है।

जीवधारियों के नाम दो प्रकार के होते हैं -

i. **साधारण नाम** (Common or Vernacular Name). सामान्यतया एक जाति के जीव को विभिन्न देशों के वासी, अपनी - अपनी भाषाओं में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं, जैसे- साधारण घरेलू चिड़िया को भारत में गौरेया के नाम से जाना जाता है। इसी चिड़िया को अंग्रेज स्पैरा (Sparrow), जर्मन हास्परलिंग (Hausperling), हॉलेण्ड वासी मुश (Musch), स्पेनवासी गोरिओन (Gorian), जापानी सुजुन (Suzune) कहते हैं।

ii. **वैज्ञानिक नाम** (Scientific Names) किसी भी जन्तु के वैज्ञानिक नाम की इसलिए आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि साधारण नाम हर देश एवं भाषा में अलग-अलग होता है। इसी कारण किसी जन्तु पर कोई शोध या जानकारी होती है, तो उसे दूसरी भाषा या देश के व्यक्ति समझ नहीं पाते हैं।

6.3.1 द्विनाम पद्धति (Binomial Nomenclature)

सर्व प्रथम द्विनाम पद्धति को **गेस्पर्ड बॉहिन** ने प्रस्तुत किया था तथा इसे स्थापित **कैरोलस लीनियस** ने किया था। इसके अन्तर्गत प्रथम पद **वंश** (genus) का तथा दूसरा पद उसकी जाति (species) का होता है। इस पद्धति के अनुसार शेर, बाघ एवं तैन्दुआ को क्रमश: पेन्थरा लियो पेन्थरा टिग्रीस तथा पेन्थरा पारड़स कहते हैं।

6.3.2 त्रिनाम पद्धति (Trinomial Nomenclature)

कुछ प्राणि-जातियों में उप जातियाँ (Sub-species) भी होती हैं। इनके नामकरण के लिये तीन पद लिखे जाते हैं, प्रथम पद वंश का, दूसरा पद जाति का तथा तीसरा पद उप-जाति (sub-species) का होता है। इस प्रकार तीन पद लिखने की प्रणाली को त्रिनाम पद्धति कहते हैं।
जैसे- भारतीय एवं पाकिस्तानी कौए (crow) का नाम त्रिनाम पद्धति में कॉर्पस स्प्लैडेंन्स स्प्लैडेन्स वर्मा में कॉर्वस स्टलैडैन्स इन्सोलेन्स तथा श्रीलंका में कॉर्वस स्प्लैडेन्स प्रोटिगेटस है।

नामकरण पद्धति के नियम (Rules of Nomenclature)

जन्तु विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस (International Congress of Zoology) ने जन्तु जातियों के नामकरण के लिये, लीनियस की द्विनाम पद्धति के अनुसार नियमों के समुच्चय को मान्यता दी, इसके प्रमुख नियम निम्न हैं -

1. जातियों के नामकरण के लिये द्विनाम या त्रिनाम पद्धति का उपयोग होना चाहिये।
2. प्रत्येक जाति के नाम में वंश का नाम बड़े अक्षर (capital letter) से तथा जाति (species) को छोटे अक्षर (small letter) से शुरू किया जाना चाहिये।
3. प्राणि-जगत् में दो वंश के अन्तर्गत एक जाति तथा एक वंश के अन्तर्गत दो जातियों के नाम समान नहीं होने चाहिये।
4. किसी एक वंश या जाति का नाम यदि भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक भिन्न रख देते हैं तो सर्वप्रथम प्रकाशित नाम ही मान्य होगा।

6.4 पंच जगत् संकल्पना (Concept of Five Kingdoms)

सर्वप्रथम सजीवों को, कैरोलस लिनियस ने दो जगतों में वर्गीकृत किया था- **पादप-जगत** (Kingdom Plantae) एवं **प्राणि-जगत्** (Kingdom Animalia)। यह वर्गीकरण निम्न तीन आधारों पर किया गया था-

1. क्लोरोफिल (chlorophyll) की उपस्थिति या अनुपस्थिति।
2. प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis)
3. कोशिका भित्ति।(cell wall) की उपस्थिति।

उपरोक्त तीनों लक्षण पादपों में उपस्थित तथा प्राणियों में अनुपस्थित होते हैं। अधिकांश प्राणियों मे गमन की क्षमता पायी जाती है। उपरोक्त वर्गीकरण के बाद ,ई.एच.हीटेकर (E.H Haeckal)ने तीसरे जगत् प्रतिपादन किया, इस जगत् को प्रोटिस्टा (Kingdom protista) नाम दिया गया। इस जगत् में हीकल ने एक कोशिकीय यूकेरियोटिक सजीवों को रखा। जैसे- शैवाल (Algae) एवं प्रोटोजोअन्स (protozoans)।

चौथे जगत् का प्रतिपादन **कोपेलेन्ड** (copeland) ने किया, जिसका नाम **मोनेरा** (Kingdom monera) रखा गया। इस जगत् में एक कोशिकीय प्रोकेरियोटिक सजीवों को रखा। जैसे- जीवाणु (Bacteria), नीले-हरे शैवाल (Blue green algae), माइकोप्लाज्मा (Mycoplasma) आदि। सभी समस्याओं का निराकरण करते हुये **आर.एच. हीटेकर** (R.H Whittaker) ने पंच-जगत् संकल्पना का प्रतिपादन निम्न आधार पर किया -

- कोशिका की संरचना के आधार पर : इसके अन्तर्गत यह देखा गया कि कोशिका प्रोकेरियोटिक है या यूकेरियोटिक।
- कोशिका की संख्या के आधार पर : जीव एक कोशिकीय है या बहु कोशिकीय
- पोषण के आधार पर जीव, स्व-पोषी या विषम पोषी है।

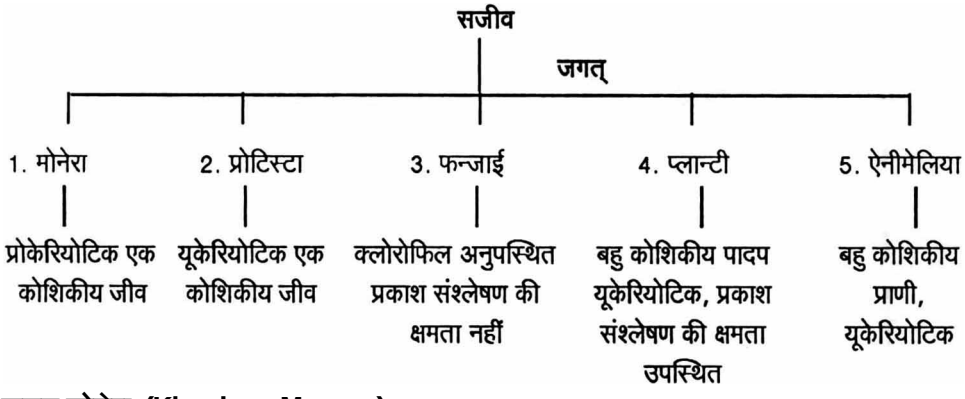

1. जगत्-मोनेरा (Kingdom Monera)

- एक कोशिकीय प्रोकेरियोटिक सजीवों को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।
- इनमें केन्द्रक कला एवं झिल्ली युक्त कोशिका अंगकों का अभाव होता है।
- इनमें वर्तुल डी.एन.ए. हिस्टोन प्रोटीन रहित होता है।

  उदाहरण - जीवाणु (Bacteria), नीले-हरे शैवाल (blue-green algae), एवं माइकोप्लाज्मा (Mycoplasma)।

2. जगत्-प्रोटिस्टा (Kingdom-Protista) :

- एक कोशिकीय यूकेरियोटिक सजीवों को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।
- इनमें केन्द्रक कला तथा झिल्ली युक्त कोशिका अंगक उपस्थित होते हैं।
- इनमें डी.एन.ए., हिस्टोन प्रोटीन युक्त होता है।

  उदाहरण - एक कोशिकीय शैवाल (Algae) एवं प्रोटोजोअन्स (Protozoans)।

3. जगत्-फन्जाई (Kingdom Fungi) :

- इस समूह में बहुकोशिकीय यूकेरियोटिक पादपों को सम्मिलित किया जाता है।
- इसमें प्रकाश संश्लेषण की क्षमता नहीं पायी जाती है।

- ये अवशोषण के द्वारा पोषण ग्रहण करते हैं।
- इनकी कोशिका भित्ति काइटिन की बनी होती है।

  उदाहरण - खमीर (Kingdom), रस्ट (rust) एवं मशरूम (Mushroom)।

4. जगत्-प्लान्टी (Kingdom-Plantae) :

- इस समूह में बहु कोशिकीय यूकेरियोटिक पादपों को सम्मिलित किया जाता है।
- इसमें प्रकाश संश्लेषण की क्षमता पायी जाती है क्योंकि क्लोरोप्लास्ट उपस्थित होता है।
- कोशिका भित्ति सेलूलोज की बनी होती है।
- ये स्थिर या स्थानबद्ध होते हैं।

  उदाहरण - मॉस, फर्न, कोनीफर, पुष्प युक्त पादप आदि।

5. जगत्-ऐनीमेलिया (Kingdom Animalia):

- इस समूह में बहुकोशिकीय यूकेरियोटिक प्राणियों को सम्मिलित किया जाता है।
- इनमें विषम-पोषी (hetrotrophic) प्रकार का पोषण होता है।
- इनमें पोषण अन्तर्ग्रहण द्वारा ग्रहण किया जाता है।
- ये अधिकांशतया चलायमान होते हैं।

  उदाहरण - स्पंज, हाइड्रा, कृमि, कीट, सीपी, तारामीन मछलियाँ, मेंढक, छिपकली, सर्प, पक्षी, स्तनधारी।

बोध प्रश्न - 1

नोट : (i) हर प्रश्न का उत्तर, नीचे छोड़ी हुई जगह में लिखें।

(ii) अपने उत्तर खण्ड के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर दें -

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये -

(i) सर्वप्रथम जन्तुओं का वर्गीकरण दो महासमूहों में ..... ने किया था।

(ii) कैरोलस लिनियस ने .... नाम पुस्तक का लेखन किया था।

(iii) पंच जगत् का आधुनिक वर्गीकरण का प्रतिपादन ..... ने किया था।

(iv) पंच जगत् परिकल्पना के अनुसार जगत-मोनेरा के सदस्यों में .....प्रकार की कोशिका पायी जाती है।

(v) द्विनाम पद्धति में पहला नाम .... का व दूसरा नाम ..... का होता हैं।

2. एक शब्द में उत्तर दीजिये -

(i) जाति की आधुनिक परिभाषा किसने दी थी?

.....

(ii) बाघ का वैज्ञानिक नाम लिखिये।

.....

(iii) सर्वप्रथम सजीवों को दो जगत् में किसने वर्गीकृत किया था?

.....

(iv) चौथा जगत्-मोनेरा का प्रतिपादन किसने किया था?

.....

(v) जगत् मोनेरा में किस प्रकार का डी.एन.ए. पाया जाता है?

.....

6.5 सारांश (Summary)

- ग्रीक दार्शनिक **अरस्तु** (Aristotle) ने सर्वप्रथम जन्तुओं का वर्गीकरण दो महा समूहों में रक्त के रंग के आधार पर किया था, इसलिये इन्हें **"प्राणि- विज्ञान का जनक"** (Father of Zoology) एवं **वर्गिकी का जनक** (Father of Taxonomy) भी कहा जाता है।
- मेयर (Mayr) ने जाति की आधुनिक परिभाषा दी। मेयर के अनुसार लैंगिक प्रजनन अथवा अन्तरा प्रजनन द्वारा सन्तानोत्पत्ति करने वाले जीव एक ही जाति के होते हैं।
- कोशिका की संरचना दमे आधार पर : इसके अन्तर्गत यह देखा गया कि कोशिका प्रोकेरीयोटिक है या यूकेरियोटिक।
- कोशिका की संख्या के आधार पर : प्राणी एक कोशिकीय है या बहु कोशिकीय
- पोषण के आधार पर. जीव, स्व-पोषी या विषम पोषी है।

6.6 शब्दावली(Glossary)

ऐनैइमा	Anaima
इनैइमा	Enaima
पंच जगत्	Five kingdoms
कोपेलेन्ड़	Copeland
जगत्-मोनेरा	Kingdom-Monera
जगत्-प्रोटिस्टा	Kingdom-Protista
जगत्-फन्जाई	Kingdom-Fungi
जगत्-प्लान्टी	Kingdom-Plantae
जगत्-ऐनीमेलिया	Kingdom-Animalia

6.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली, रंगा एवं लौरी : प्राणी विविधता तथा उद्विकास रमेश बुक डिपो, जयपुर
2. डॉ. वी.एस. पँवार Diversity of animals and Evolutions कॉलेज बुक सेन्टर, जयपुर

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to Self assessment Questions)

1. रिक्त स्थान

(i) अरस्तु (ii) सिस्टेमा नेचुरी

(iii) हीटेकर (iv) प्रोकेरियोटिक

(v) वंश, जाति

2. एक शब्द

(i) मेयर ने (ii) पेन्थरा लियो

(iii) कैरोलस लिनियस ने (iv) कोपेलेन्ड

(v) वर्तुल डी.एन.ए

3. लघुउत्तरीय

(i) ब. 1. 1 (ii) ब. 1. 3 (iii) ब. 1. 4

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise questions)

(i) वर्गिकी का इतिहास लिखिये।

(ii) त्रिनाम पद्धति के बारे में बताइये।

(iii) पंच जगत् संकल्पना के बारे में आप क्या जानते हैं?

इकाई 7: प्रोटोजोआ तथा मेटाजोआ की संकल्पना एवं संगठन के स्तर (Concept of Protozoa and Metazoa and Level of Organizations)

इकाई की रूपरेखा (Out-line of Unit)

7.0 उद्देश्य (Objectives)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

7.2 प्रोटोजोआ (Protozoa)

7.3 मेटाजोआ (Metazoa)

7.4 संगठन के स्तर (Level of Organization)

- 7.4.1 जीव द्रव्यी संरचनात्मक संगठन स्तर (Protoplasmic Grade of Structural Organization)
- 7.4.2 कोशिकीय संरचनात्मक संगठन स्तर (Cellular Grade of Structural Organization)
- 7.4.3 कोशिका-ऊतक संरचनात्मक संगठन स्तर (Cell-tissue Grade of Structural Organization)
- 7.4.4 अंग संरचनात्मक संगठन स्तर (Organ Grade of Structural Organization)
- 7.4.5 अंग-तंत्र संरचनात्मक संगठन स्तर (Organ system Grade of Structural Organization)

7.5 सारांश (Summary)

7.6 शब्दावली (Glossary)

7.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to self-assessment Question)

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

7.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में हम पंच जगत् परिकल्पना के आधार पर प्राणी-जगत् के वर्गीकरण के बारे में पढ़ेंगे। इस इकाई को पढ़ ने के बाद आप:

- विभिन्न प्रकार के प्रोटोजोआ के प्राणियों के बारे में उनके पोषण, गमन, श्वसन जनन आदि के बारे में जान पायेंगे।
- मेटाजोआ के बहुकोशिकीय प्राणियों की संरचना, पोषण, श्वसन, उत्सर्जन जनन आदि के बारे में जान पायेंगे।
- इस इकाई में विभिन्न प्रकार के संगठनात्मक स्तर की जानकारी भी हो पायेगी।

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

इकाई- 6 में आप वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त एवं पंच जगत् संकल्पना के बारे में पढ़ चुके हैं। यहाँ पर जन्तु-जगत् को वर्गीकृत करने के आधार एवं संगठनात्मक स्तर के बारे में अध्ययन करेंगे।

जैसा कि आप जानते हैं, कि प्रोटोजोआ के प्राणी एक-कोशिकीय यूकेरिओट्स (eukaryotes) होते हैं। इनकी सभी जैविक क्रियाएँ एक कोशिका द्वारा ही सम्पन्न होती हैं। इसलिए डावेल ने इन्हें अकोशिकीय (acellular) कहा। इनका शारीरिक संगठन जीवद्रव्यी प्रकार का माना गया, क्योंकि एक कोशिका में जीवद्रव्यी ही सभी क्रियाएँ करने में सक्षम होता है।

मेटाजोआ के प्राणी बहुकोशिकीय यूकेरियोट्स होते हैं, इनका शरीर अनेक कोशिकाओं का बना होता है। ये कोशिकायें या तो अलग- अलग कार्य करती हैं या मिलकर ऊतक, अंग या अंग तंत्रों का निर्माण करती हैं। मेटाजोआ के जन्तुओं में पोषण, गमन, श्वसन, परिवहन, उत्सर्जन, संवेदी रचनाएँ एवं जनन अलग- अलग प्रकार के होते हैं, इनसे सम्बन्धित अंग तथा तन्त्र भी विभिन्न समूहों में विभिन्न प्रकार के पाये जाते हैं। ये अरीय (radial), द्विअरीय (Biradial) या द्विपार्श्वीय सममित (Bilateral symmetrical) होते हैं।

प्राणियों के वर्गीकरण का आधार उनके बीच पायी जाने वाली समानताएँ एवं असमानताएँ होती हैं, इनके लक्षण उद्विकास पर आधारित होते हैं। जन्तु जगत् का वर्गीकरण करते समय पहला विभाजन करने हेतु प्राणियों में उपस्थित कोशिकाओं की संख्या को विभाजक लक्षण हेतु काम में लिया गया है। इसके आधार पर जन्तुओं को एक कोशिकीय अथवा अकोशिकीय प्रोटोजोआ तथा बहुकोशिकीय मेटाजोआ में विभाजित किया जाता है। यह वर्गीकरण परम्परागत वर्गीकरण की तुलना में उद्विकास की दृष्टि से भी उचित प्रतीत होता है। परम्परागत वर्गीकरण में जन्तुओं को अकशेरुकी (Non-Chordata) तथा कशेरुकी (Chordata) समूहों में बाँटा गया है।

प्रोटोजोआ और मेटाजोआ दोनों गुटों का लाखों साल के अन्तराल में धीरे- धीरे उद्विकास हुआ है, जिसके फलस्वरूप दोनों में ही महत्वपूर्ण एवं विविध संरचनात्मक एवं क्रियात्मक परिवर्तन हुए हैं। यही कारण है कि पृथ्वी पर दोनों गुटों के असंख्य एवं विविध समूह एवं जातियाँ पायी जाती हैं। ध्यान देने योग्य बात है कि उद्विकास में एक कोशिकीय प्रोटोजोआ की आधारभूत संरचना प्रायः एक कोशिकीय ही रही तथा बहुकोशिकीय मेटाजोआ में प्रायः इस मूलभूत संरचना के अन्तर्गत संगठनात्मक स्तर में परिवर्तन हुए हैं। इस इकाई में इन्हीं संगठनात्मक स्तरों की विवेचना करने का प्रयास किया गया है।

7.2 प्रोटोजोआ (Protozoa)

इस इकाई के प्रारम्भ में हम यह तो जान ही चुके हैं कि प्रोटोजोआ व मेटाजोआ की संकल्पना का क्या महत्व है, यहाँ पर प्रोटोजोआ की अन्य विशेषताओं को जानने का प्रयास करें-

- कुछ प्रोटोजोआ को छोड़ कर अधिकांश प्रोटोजोआ में क्लोरोप्लास्ट (chloroplast) अनुपस्थित होता है। इसलिए ये विषमपोषी (heterotrophic) होते हैं। इस गुण के कारण इन्हें एक कोशिकीय, शैवालों से विभेदित किया जा सकता है।

इनमें अनेक प्रकार का पोषण पाया जाता है, जैसे - प्राणिसम (holozoic), पादपसम (holophytic), मृतोपजीवी (saprophytic) या परजीवी (parasitic)। इनमें अन्तःकोशिकीय पाचन (Intracellular digestion) खाद्य धानियों में सम्पन्न होता है।

- ये जन्तुक नाइट्रोजनी **अपशिष्ट पदार्थ-** अमोनियाको सामान्य सतह से विसरण द्वारा शरीर के बाहर उत्सर्जित करते हैं।
- अलवणीय प्रोटोजोअन्स में **संकुचनशील रिक्तिका** पायी जाती है जो जल सन्तुलन एवं उत्सर्जन में सहायक होती है।
- इस समूह के अन्तःपरजीवी सदस्यों में गमन अंगक पूर्णतया अनुपस्थित होते हैं, लेकिन स्वतन्त्र प्राणियों में गमन के लिए या तो **कशाभ** (flagella) या **कूटपाद** (pseudopodia) या रोमाभ (cilia) पाये जाते हैं।
- इनमें जनन **अलैंगिक** (asexual) तथा **लैंगिक** (sexual) दोनों प्रकार का पाया जाता है। ये अलैंगिक जनन द्विविखण्डन, बहुविखण्डन, बीजाणु जनन या मुकुलन के द्वारा करते हैं और लैंगिक जनन युग्मकों के संयोजन द्वारा होता है। वयस्क सदस्य **संयुग्मन** (Conjugation) द्वारा भी जनन करते हैं।

  ऐसा प्रतीत होता है कि प्रोटोजोआ समूह, उद्विकास की दृष्टि से विषम प्राणियों का समूह है, इसलिए समस्त एक कोशिकीय प्राणियों को एक संघ में रखना उचित नहीं होगा। यह भी स्पष्ट हो चुका है कि इस समूह के प्राणी एक कोशिकीय शैवालों के अधिक समीप हैं अत: इन्हें प्राणियों के वर्गीकरण में एक कोशिकीय शैवालों के साथ **प्रोटिस्टा** जगत् में रखा जाने लगा है।

7.3 मेटाजोआ (Metazoa)

मेटाजोआ समूह के विभिन्न सदस्य एक जटिल बहुकोशिकीय संरचनायुक्त होते हैं तथा इनके दैहिक संगठन में कोशिकीय, कोशिका-ऊतकयि अंग तथा तन्त्र भी सम्मिलित होते हैं।

सभी मेटाजोआ प्राणियों में पोषण **विषमपोषी** (Heterotrophic) प्रकार का होता है तथा इस विधि के अन्तर्गत कुछ को छोड़कर विशिष्ट रूप से पूर्ण भोजी प्रकार का होता है। प्राय: सभी प्राणी अधिक भोजन का अन्तर्ग्रहण करके फिर उसका पाचन करते हैं तथा पचित भोजन के अवशोषण के बाद बचे अपचित भोजन का **बहिक्षेपण** (egestion) करते हैं।

मेटाजोअन्स आकार में बड़े होने के कारण, इनकी पोषण की आवश्यकताएँ अधिक होती हैं, अत: इन्हें भोजन को खोजना पड़ता है। इसके लिये इनमें **जनन क्रिया** का बहुमुखी विकास हुआ है। गमन बहुकोशिकीय प्राणियों का एक सामान्य गुण माना जाता है। इसी क्रिया के नियंत्रण के लिये इनमें **पेशी** एवं **तन्त्रिका तन्त्रों** का विकास हुआ है। तन्त्रिका तन्त्र इसके अतिरिक्त लगभग सभी आन्तरिक क्रियाओं का भी नियन्त्रण करता है तथा वातावरणीय संवेदनाओं को संवेदांगों द्वारा ग्रहण कर जन्तु को अनुकूलित करता है।

पोषण विधि के फलस्वरूप अवशोषित भोज्य पदार्थ को विभिन्न कोशिकाओं तक पहुँचाने एवं उनके उपापचय के लिए परिवहन तन्त्र, उपापचयी क्रियाओं के फलस्वरूप बने अपशिष्ट पदार्थो के उत्सर्जन के लिए उत्सर्जी तन्त्र तथा इसी प्रकार गैसों के आदान-प्रदान के लिए श्वसन तन्त्र का विकास हुआ है।

मेटाजोओन्स में वंश वृद्धि के लिए **प्रजनन तन्त्र** का विकास हुआ है। उपरोक्त सभी तन्त्रों के कार्यो का नियमन एवनियन्त्रण करने के लिये तांत्रिका तन्त्र के अतिरिक्त **अन्त:स्रावी तन्त्र** का भी विकास हुआ है।

गमन की सक्षमता अथवा असक्षमता ने बहुकोशिकीय मेटाजोअन्स में सममिति एवं आकार को प्रभावित किया है। प्राय: गतिशील **प्राणी द्विपार्श्वीय सममित** तथा गमन के अक्ष में अनुलम्बित होते हैं। यह आकार गमन में रुकावट कम करने में तथा शरीर के दोनों अर्धांशों के बीच सन्तुलन स्थापित कर उसे स्थिरता प्रदान करने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त गतिमान अनुलम्ब जन्तु का एक अन्त नये वातावरण में सदैव पहले प्रवेश करता है। इसलिये इसके अन्त पर ही प्रमुख संवेदांगों एवं मुख की उपस्थिति उपयुक्त होती है तथा शरीर का यह भाग **शीर्ष** (head) के नाम से जाना जाता है तथा इसके उद्विकास को **शिरोभवन** (cephalization) कहते हैं। शीर्ष बनने के साथ शरीर से निष्क्रिय सामग्री के परिष्करण हेतु शरीर का पश्च अन्त विभेदित होता है, जिससे परिष्कृत पदार्थ गमन में बाधा उत्पन्न न करें।

इसके विपरीत निम्न स्तर के बहुकोशिकीय प्राणियों की सममिति असममित या अरीय होती है तथा सभी दिशाओं से शरीर अपने निकटतम वातावरण से प्रभावित होती है। अत: इस दशा में सुस्पष्ट शीर्ष का अभाव होता है। इन तथ्यों से निष्कर्ष निकलता है कि शीर्ष तथा उससे जुड़ी सभी संरचनाएँ बहुकोशिकीयों में गमनशीलता के ही कारण विकसित हुई हैं

बहुकोशिकीय जन्तुओं को दृढ़ता प्रदान कर उसको एक निश्चित आकार प्रदान करने के लिये **कंकाल तंत्र** (Skeleton) होता है। कंकाल तंत्र शरीर को आलम्बन प्रदान करने के अतिरिक्त सुरक्षा एवं गमन में भी सहायक होता है। यह बाह्य एवं अन्त: कंकाल में विभेदित होता है। **बाह्य कंकाल** प्राय: कैल्शियम युक्त या सिलिका युक्त होता है तथा अन्त: **कंकाल** उपास्थि या अस्थियों का बना होता हैं।

जन्तु संरचना का यह परिकल्पित चित्र मोटे तौर पर सही एवं वास्तविक भी है, क्योंकि **भ्रूणीय-विकास** के आरम्भिक चरणों में अधिकांश प्राणी-भ्रूण मूलरूप से त्रिस्तरीय होते हैं तथा बाहर से भीतर की ओर इन प्राथमिक जनन स्तरों को एक्टोडर्म, मीसोडर्म तथा एण्डोडर्म कहते हैं।

7.4 संगठन के स्तर (Level of Organization)

विभिन्न संघों का संरचनात्मक संगठन भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। संघ-प्रोटोजोआ के सदस्य एक कोशिकीय होते हैं। इस कोशिका द्वारा सभी जैविक क्रियाओं का सम्पादन किया जाता है, अत: इसमें श्रम विभाजन अनुपस्थित होता है। मेटाजोआ के सदस्यों का शरीर बहुकोशिकीय होता है। बहुकोशिकीय जन्तुओं के विकास के साथसाथ ही इनमें श्रम विभाजन का उद्भव भी होता हैं।

विकास की दृष्टि से जन्तुओं का सर्वप्रथम तथा सबसे अधिक सामान्य लक्षण संगठनात्मक स्तर (Level of Organization) होता है। प्राणियों के निम्न प्रकार के संरचनात्मक संगठन स्तर पाये जाते हैं।

7.4.1 जीवद्रव्यी संरचनात्मक संगठन स्तर (Protoplamic Grade of structural Organisation)

इस प्रकार का संगठन स्तर संघ प्रोटोजोआ के सदस्यों में पाया जाता है। इस संघ के सदस्यों का शरीर **एक-कोशिकीय** होता है। इनमें कार्य का विभाजन नहीं पाया जाता है। ये सभी जैविक क्रियाओं का सम्पादन एक ही कोशिका द्वारा होता है।

7.4.2 कोशिकीय संरचनात्मक संगठन स्तर (Cellular Grade of structural Organisation)

इस प्रकार का संगठन संघ पोरीफेरा के सदस्यों में पाया जाता है। इसमें ऊतक व अंग आदि अनुपस्थित होते हैं। इस संघ के प्राणियों में दो कोशिकीय स्तर बाहरी - पिन्नैकोडर्म तथा आन्तरिक कोएनाडर्म। दोनों स्तरों के बीच मीसेनकाइम पायी जाती है।

7.4.3 कोशिका - ऊतक संरचनात्मक संगठन स्तर (Cell tissue Grade of structural Organization) :

इस प्रकार का संगठन स्तर संघ - निडेरिया (सीलेन्ट्रेटा) के सदस्यों में पाया जाता है। इसमें दो जनन स्तर पाये जाते हैं। बाहर का स्तर एपीडर्मिस तथा अन्दर का स्तर गेस्ट्रोडर्मिस। इसमें कुछ कोशिकाएँ मिलकर ऊतक बना लेती हैं।

7.4.4 अंग संरचनात्मक संगठन स्तर (Organ Grade of structural Organisation) :

इस प्रकार का संगठन स्तर संघ - प्लैटीहैल्मीन्थीज के सदयों में पाया जाता है। इस संघ के सदस्यों में ऊतकों द्वारा अंगों का निर्माण हो जाता है।

7.4.5 अंग तंत्र संरचनात्मक संगठन स्तर (Organ System Grade of Structural Oraganization)

इस प्रकार का संगठन स्तर उच्चतर मेटाजोआ के सदस्यों में पाया जाता है। इसमें अंग तंत्रों का निर्माण हो जाता है, जैसे - पाचन तन्त्र, उत्सर्जन तन्त्र, जनन तन्त्र आदि।

बोध प्रश्न (Self assessment Questions)

I. बहुविकल्पीय प्रश्न :

1. अधिकांश प्रोटोजोआ में पाया जाता है :
   (a) प्रकाश संश्लेषण
   (b) रसायन पोषण
   (c) विषम पोषण
   (d) मिश्रित पोषण ( )
2. प्रोटोजोआ में किस प्रकार का संगठन पाया जाता है
   (a) कोशिकीय
   (b) जीवद्रव्यी
   (c) कोशिका-ऊतकीय

(d) अंग या अंग तन्त्र ( )

3. मेटाजोआ में आते हैं.
   (a) एक कोशिकीय प्रोकेरियोट्स
   (b) एक कोशिकीय यूकेरियोट्स
   (c) बहु कोशिकीय यूकेरियोट्स
   (d) उपरोक्त कोई नहीं ( )

4. प्लेटीहैल्मीन्थीज में किस प्रकार का शारीरिक संगठन पाया जाता है.
   (a) कोशिकीय
   (b) कोशिका-ऊतकीय
   (c) अंग या अंग तन्त्र
   (d) अंग तन्त्र ( )

5. प्रोटोजोआ के प्राणियों में गमन के लिए अंगक होते हैं :
   (a) रोमाभ
   (b) कशाभ
   (c) कूटपाद
   (d) उपरोक्त सभी ( )

7.5 सारांश (Summary)

- प्रोटोजोआ के एक-कोशिकीय प्राणियों को डॉवेल ने अकोशिकीय कहा था तथा ये ससीम केन्द्रकी होते हैं।
- प्रोटोजोअन्स में पोषण पादपसम, मृतोपजीवी या प्राणीसम प्रकार का होता है। कुछ प्रोटोजोअन्स बाह्य या अन्तपरजीवी रूप मे भी पाये जाते हैं।
- मेटाजोआ के प्राणी बहुकोशिकीय होते हैं तथा इनमें पोषण विषमपोषी प्रकार का होता है।
- इनमें अग्रभाग शीर्ष में विकसित हो जाता है तथा इस पर अनेक संवेदी अंग पाये जाते हैं।
- इनमें दृढ़ता प्रदान करने के लिए कंकाल पाया जाता है। जो एवं अन्त: बाह्य प्रकार का होता है।

7.8 शब्दावली (Glossary)

अकोशिकीय	Acellular
अरीय सममिति	Radial Symmetry
द्वि-अरीय	Biradial
द्वि पार्श्वीय	Biradial
सममिति	Symmetry
प्राणीसम भोजी	Holozoic
विषम भोजी	Heterotrophic
मृतोपजीवी	Saprophyte

मुकुलन	Budding
संयुग्मन	Conjugation

7.7 संदर्भ ग्रन्थ (Further Readings)

1. कोहली, रंगा एवं लौरी : प्राणि विविधता तथा उद्विकास, रमेश बुक डिपो, जयपुर
2. पँवार. प्राणि विविधता एवं उद्विकास कॉलेज बुक सेन्टर, जयपुर

7.8 बोध प्रश्नो के उत्तर (Answer to Self Assessment Questions)

1. बहु विकल्पीय प्रश्न :

1 (c) 2. (b) 3. (c) 4. (c) 5. (d)

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. प्रोटोजोआ एवं मेटाजोआ संकल्पना तथा संगठनात्मक स्तर पर निबन्ध लिखिए।
2. प्रोटोजोआ एवं मेटाजोआ में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिए :
   (a) अन्त : कोशिकीय पाचन
   (b) जलीय सन्तुलन
4. अंग तन्त्रीय संगठनात्मक स्तर किसे कहते हैं?
5. प्राथमिक जनन स्तरों का नाम लिखिए।

इकाई 8: नॉन कॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा की वर्गिकी एवं वर्गीकरण का आधार (Basis of Classification and Taxonomy of Non-Chordata and Chordata)

इकाई की रूपरेखा (Out-line of Unit)

8.0 उद्देश्य (Objectives)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

8.2 नॉन-कॉडेटा एवं कॉर्डेटा की वर्गिकी (Taxonomy of Non-Chordata and Chordata)

8.2.1 नॉन-कॉर्डेटा एवं कॉर्डेटा का तुलनात्मक विवरण (Comparison of Non-Chordata and Chordata)

8.3 वर्गीकरण का आधार (Basis of Classification)

8.3.1 कोशिका संख्या (Number of Cells)

8.3.2 सममिति (Symmetry)

8.3.3 देह गुहा (Body Cavity)

8.3.4 खण्डी भवन (Segmentation)

8.3.5 भ्रूणोद्भव (Embyonic development)

8.4 सारांश (Summary)

8.5 शब्दावली (Glossary)

8.6 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to Self-assessment Questions)

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

8.0 उद्देश्य (Objectives)

पिछली इकाई में आप प्रोटोजोआ तथा मेटाजोआ की संकल्पना एवं विभिन्न प्रकार के संगठन के स्तरों के बारे में पढ़ चुके हैं। इस इकाई का उद्देश्य है कि आप नॉन-कॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा में' विभिन्न तथा विभिन्न वर्गीकरण के आधार जैसे- कोशिका की संख्या, सममिति, देहगुहा के बारे में जाने।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

परम्परागत वर्गीकरण में प्राणियों की **अकशेरुकी** (Non-chordata) तथा **कशेरुकी** (Chordata) समूहों में नोटोकार्ड की अनुपस्थिति तथा उपस्थिति के आधार पर बांटा गया है। इस वर्गीकरण के अनुसार बहने वाला समूह अकशेरुकी अत्यन्त विविधता लिये हुये है तथा इसमें प्रोटोजोआ से इकाइनोडर्मेटा संघ के सदस्यों को सम्मिलित किया गया है। इन प्राणियों में नोटोकॉर्ड जीवन की किसी भी अवस्था में नहीं पायी जाती है। नॉन-कॉर्डेटा में प्रोटोजोआ ही एक ऐसा समूह है जो

कोशिका की संख्या के आधार पर एक कोशिकीय है। इसके अलावा सभी संघ के सदस्य बहु कोशिकीय होते हैं।

कशेरुकी समूह के प्राणियों मे जीवन की किसी न किसी अवस्था मे नोटोकॉर्ड (notochord) अवश्य पायी जाती है जो एक प्रकार से प्राथमिक अक्षीय कंकाल का कार्य करती है तथा बाद में **कशेरुक दण्ड** (Vertebral column) में रूपान्तरित हो जाती है।

नोटोकॉर्ड का उद्भव **मीसोडर्म** (mesoderm) से होता है तथा यह रिक्तिका युक्त कोशिकाओं से बनी होती है। यह **तन्त्रिका रज्जु** (nerve chord) एवं आहार नाल के बीच में स्थित होती है।

कशेरुकी समूह के प्राणियों में जीवन की किसी अवस्था में ग्रसनी, क्लोम दरारों से छिद्रित होती है तथा तन्त्रिका मध्य अधर सतह पर एक खोखली तथा अगुच्छकयि होती है।

8.2 नॉन-कॉर्डेटा एव कॉर्डेटा की वर्गिकी (Taxonomy of Non-Chordata and Chordata)

वर्गिकी (Taxonomy) शब्द सर्वप्रथम फ्रान्स के पादप विज्ञानी डी केन्डाल (de candole) ने 1813 में पौधों के वर्गीकरण हेतु प्रस्तुत किया था। वर्गिकी के जनक (Father of Taxonomy) अरस्तु (Aristotle) को माना जाता है। वर्गिकी के निम्न महत्व है-

- वर्गिकी से हमें जीवन के उद्विकास का ज्ञान मिलता है।
- वर्गिकी से वर्तमान सजीवों में उपस्थित विषमताओं का ज्ञान प्राप्त होता है।
- वर्गिकी के अध्ययन से विभिन्न प्रकार के सजीव समूहों की उद्विकासीय अभिवृत्तियों की सूचना मिलती है जो जैव-विज्ञान की अन्य शाखाओं के अध्ययन में सहायक होती है।
- वर्गिकी में सजीवों का वर्गीकरण किया जाता है जो जीव विज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे- आनुवंशिक विज्ञान, प्रतिरक्षा विज्ञान, पारिस्थितिक विज्ञान, व्यावहारिक विज्ञान की विवेचना में अति सहायक होता है।
- वर्गिकी, आर्थिक एवं चिकित्सा महत्त्व के सजीवों के अध्ययन में एक अत्यन्त आवश्यक उपकरण के रूप में उपयोगी है।

8.2.1 नॉन-काडेंटा एवं कॉडेंटा का तुलनात्मक विवरण (Comparison of Non-Chordata and Chordata)

लक्षण	नॉन- कॉर्डेटा	कॉर्डेटा
1. सममिति	असममित, अरीय, दिअरीय या द्विपार्श्वीय	द्विपार्श्वीय
2. खण्डीभवन	अनुपस्थित या मिथ्या या वास्तविक	वास्तविक
3. संगठनीय स्तर	जीवद्रव्यी, कोशिकीय,कोशिका ऊतकीय अंग याअंग तन्त्र प्रकार का।	अंग तन्त्र प्रकार का।
4. जनन स्तर	अनुपस्थित, द्विस्तरीय या त्रिस्तरीय।	त्रि - स्तरीय
5. देहगुहा	अगुहीय, मिथ्या गुहीय या वास्तविक देहगुहीय	वास्तविक गुहीय

6. पश्च गुदीय पुंछ	अनुपस्थित	उपस्थित
7. नोटो कॉड	अनुपस्थित	जीवन की कि सी अवस्था में उपस्थित
8. ग्रसनीय क्लोम दरारें	अनुपस्थित	जीवन की कि सी अवस्था में उपस्थित
9. गुदा	अनुपस्थित या अन्तिम खण्ड में अन्तिम उपस्थिति	खण्ड से पूर्व उपस्थित
10. आहार नाल की स्थिति	तन्त्रिका रज्जु के पृष्ठ सतह में स्थित	तन्त्रिका रज्जु के अधर सतह पर स्थित
11. रुधिर पीरसरंचण	तन्त्रअनुपस्थित, खुला या बन्द	बन्द
12. हृदय	अनुपस्थित या पार्श्वीय या पृष्ठीय	अधरीय
13. पृष्ठीय रक्त वाहिनी	रक्त का प्रवाह पश्च से अग्र दिशा में	रक्त का प्रवाह अग्र से पश्च दिश मे
14. यकृत निवाहिका उप-तन्त्र	अनुपस्थित	उपस्थित
15. श्वसन	सामान्य सतह द्वारा, क्लोम, ट्रेकिया, टिनिडिया, श्वसन वृक्ष, पेप्पूली या फुफ्फुस द्वारा	क्लोम, डर्मल बान्वी आदि द्वारा।
16. तन्त्रिका तन्त्र	ठोस	खोखला
17. तन्त्रिका रज्जु	अधरीय दोहरी, एवं ठोस गुच्छकयि	पृष्ठीय, एक खोखली अगुच्छकयि
लक्षण	**नॉन- कॉर्डेटा**	**कॉर्डेटा**
18. जनन	अलैंगिक एवम आलेंगिक	सामान्यतया लैंगिक
19. विकास सामान्यतया अप्रत्यक्ष	सामान्यतया प्रत्यक्ष	
20. पुनरुद्भवन क्षमता	बहुत अधिक **चित्र : सामान्यकृत - कॉर्डेटां**	बहुत कम **चित्र : सामान्यकृत - कॉर्डेटां**

8.3 वगर्किरण का आधार (Basis of Classification)

प्राणियों के वर्गीकरण का आधार कुछ मूलभूत लक्षण होते हैं, यह मूलभूत लक्षण प्राणियों में उद्विकास के समय विकसित होते हैं अत: ये जन्तुओं के परस्पर सम्बन्धों को भी व्यक्त करते हैं। प्राणियों के वर्गीकरण का आधार बनने वाले कुछ मूलभूत लक्षण निम्न हैं -

8.3.1 कोशिका की संख्या (Number of cells)

कोशिकाओं की संख्या भी वर्गीकरण का एक आधार है इस आधार पर प्राणियों को दो समूहों में बांटा जा सकता है

i. **प्रोटोजोआ :** यह एक-कोशिकीय प्राणियों का समूह है। टहीटेकर के पंच जगत् सिद्धान्त के अनुसार प्रोटोजोआ को एक कोशिकीय शैवालों के साथ प्रोटिस्टा (Protista) के अन्तर्गत रखा गया है। इसकी कोशिकाएं यूकेरियोटिक प्रकार की होती है। इनमें श्रम विभाजन नहीं पाया जाता है, एक कोशिका ही सभी जैविक कार्य सम्पन्न करती है। उदाहरण- अमीबा, पैरामिशियम, यूग्लीना आदि।

ii. **मेटाजोआ :** यह बहु-कोशिकीय प्राणियों का समूह है। मेटाजोआ के सदस्यों में अनेक विभिन्नताएं पायी जाती है। जैसे- सममिति, देहगुहा, विखण्डन, भ्रौणिकी आदि। इनके आधार पर मेटाजोआ का अन्य समूहों में विभाजन किया जाता हँ। इस समूह के प्राणियों में श्रम विभाजन भी पाया जाता है।

8.3.2 सममिति (Symmetry)

सजीवों के संदर्भ में सममिति से हमारा तात्पर्य ज्यामितीय परिरूप में दैहिक भागों की व्यवस्था है। जन्तुओं में सममिति एक अत्यन्त सामान्य लक्षण है, अत: इसे प्राणियों को वर्गीकृत करने में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। बहु-कोशिकीय जन्तुओं में संगठनात्मक स्तर भ्रूणीय-विकास के दौरान शीघ्र ही स्थापित होने के ठीक पश्चात् विकासशील जन्तु में सममिति भी स्थापित हो जाती है। सममिति निम्न प्रकार की होती है -

i. **असममिति (Asymmetry).** ऐसे प्राणी जिन्हें किसी भी अक्ष से दो समान भागों में नहीं बांटा जा सकता है उन्हें असममित प्राणी कहते हैं वह इस लक्षण को असममिति कहते हैं। उदाहरण- अमीबा व वयस्क स्पन्ज।

ii. **गोलिय-सममिति (Spherical Symmetry)** ऐसे प्राणी जो गेन्द के समान गोल होते, उनमें अग्र, पश्च, पृष्ठ, अधर व पार्श्व सतह स्पष्ट नहीं होते हैं। यदि उन्हें केन्द्र से गुजरने वाले किसी भी अक्ष से काटा जाता है तो यह दो समान भागों में बंट जाता है तो इसे गोलिय सममिति कहते हैं। उदाहरण- रेडियोलेरियन्स।

iii. **अरीय सममिति (Radial Symmetry)** इन प्राणियों में एक सतह पर मुख दूसरी सतह पर गुदा पायी जाती है, इन्हें क्रमश मुखीय एवं अपमखीय सतह कहते हैं। इन प्राणियों में शारीरिक अंगों का विन्यास शरीर के केन्द्रीय अक्ष के चारों ओर त्रिज्याओं पर स्थित होते हैं अत: इनके शरीर को अगर एक से अधिक व्यासों पर काटा जायें तो कटे हुए भाग संरचना एवं अंग विन्यास में समान होते हैं। जैसे- हाइड्रा, समुद्री ऐनीमोन आदि। अरीय सममिति निम्न प्रकार की हो सकती है-

iv. **द्विअवीय (biradial),** जैसे- टीनोफोरा के सदस्य।

v. **पंच अरीय (pentamerous).** इकाइनोडर्मेटा के सदस्य।

vi. **द्विपार्श्वीय सममिति (bilateral Symmetry)** इन प्राणियों में शरीर को केवल एक ही तल से दो बराबर भागों में बांटा जा सकता है। अधिकांश प्राणियों में द्विपार्श्व सममिति ही पायी जाती है।

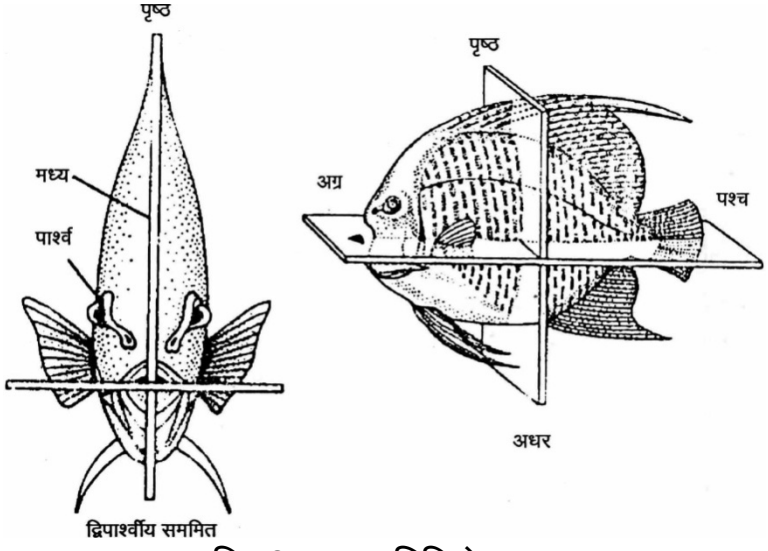

चित्र 8. 1 : सममिति के प्रकार

सममिति के आधार पर **यूमेटाजोआ (**Eumetazoa) को दो समूहों में बांटा जा सकता है- रेडियेटा (Radiata) एवं **बाइलेटेरिया** (bilateral)।

- **रेडियेटा :** इसके अन्तर्गत ऐसे प्राणी रखे जाते हैं जिनकी भ्रूणीय व वयस्क दोनों अवस्थाओं में अरीय सममिति पायी जाती है। उदाहरण- टीनोफोरा व नीडेरिया (सीलेन्ट्रेटा)।
- **बाइलटेरिया :** इसके वयस्क अवस्था में द्विपार्श्व सममिति पायी जाती है। इसके अन्तर्गत अन्य सभी सदस्य आते हैं।

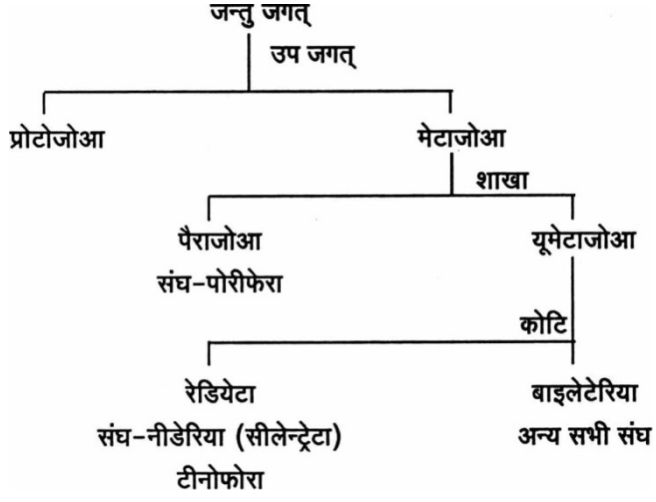

8.3.3 देह - गुहा (Body Cavity)

रेडियेटा के सदस्य द्विस्तरीय (diploblastic) होते हैं। इनमें बाहर की ओर एक्टोडर्म व भीतर की ओर एण्डोडर्म नामक स्तर पाये जाते हैं तथा दोनों के बीच मीसोग्लिया (mesogloea) पाया जाता है।

बाइलेटेरिया में तीनों जनन स्तर पाये जाते हैं- एक्टोडर्म, मीसोडर्म तथा एण्डोडर्म। कोटि बाइलेटेरिया को देहगुहा के आधार पर तीन उप - कोटियों (sub-grades) में वर्गीकृत।किया जाता है -

i. **अदेहगुही (Acoelomates) :** ' ऐसे जन्तु जिनमें देहगुहा का अभाव होता है उन्हें उपकोटि - एसीलोमेट्स के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है। इनकी वयस्कावस्था में देहभित्ति व आहार नाल के बीच कोशिकाओं को मीसेनकाइमल कोशिक कहते हैं। उदाहरण - प्लेटीहैल्मीन्थीज (Platyhelminthes)।

ii. **कुट प्रगुहीय (pseudo-coelomates) :** यदि भ्रूणीय अवस्था के दौरान कोरक गुहा अर्थात् ब्लास्टोसील का अधिकाशं भाग वयस्क अवस्था में भी बना रहता है। तो इस गुहा को कुटप्रगुहा अर्थात् आभासी प्रगुहा कहते हैं। यह मीसोडर्म के स्तरों से आस्तरित नहीं होती है तथा इसका सम्बन्ध जनन एवं उत्सर्जन तन्त्र से नहीं होता है। उदाहरण - ऐस्कैल्मीन्थीज (Aschelminthes)।

iii. **वास्तविक देहगुहीय (True Coelomates) :** ' ऐसे प्राणी जिनमें देहगुहा मीसोडर्म के स्तरों से आस्तीरत होती है तथा इसका सम्बन्ध जनन एवं उत्सर्जन तन्त्र से होता है, ऐसी देहगुहा वास्तविक देहगुहा कहलाती है। इसके अन्तर्गत ऐनेलिडा, आथोपोड़ा, मोलस्का, इकाइनोडर्मेटा, हेमीकॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा संघ आते हैं।

देहगुहा के उद्भवन के आधार पर देहगुहीय प्राणियों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है -

(a) दीर्णगुहीय अर्थात् शाइजोसील (Schizocoel) : इसमें आघान्त्र (archenteron) बनने के बाद एण्डोडर्म से दो कोशिकाएँ उद्गमित होती है। इन्हें टीलो ब्लास्ट या 4 d कोशिकाएँ कहते हैं। इनकी वृद्धि द्वारा पट्टिका का निर्माण होता है, इस पट्टिका के विघटन (splitting) के द्वारा दोनों परतों के बीच एक गुहा का निर्माण हो जाता है इस गुहा को दीर्णगुहा अर्थात् शाइजोसील कहते हैं। इस प्रकार की गुहा युक्त प्राणी को शाइजोसीलोमेटस (schizocoelomates) कहते हैं। उदाहरण- संघ-ऐनेलिडा, आर्थोपोडा एवं मोलस्का।

(b) आन्त्रगुहा अर्थात् ऐन्टेरोसील (Interocoel) इस प्रकार की गुहा का निर्माण, आघान्त्र से दो पार्श्व वेश्म के उभार के रूप में उद्गमित होते हैं ये वेश्म मीसोडर्म से आस्तीरत होते हैं। यह वेश्म धीरे-धीरे आन्त्र से पृथक् हो जाते हैं व इनके बीच उत्पन्न होने वाली गुहा को ऐन्टरोसील (enterocoel) कहते हैं। इस प्रकार के प्राणियों को ऐन्टेरोसीलोमेदस के अन्तर्गत रखा जाता है। उदाहरण- इकाइनोडर्मेटा, हेमीकॉडेटा एवं कॉर्डेटा।

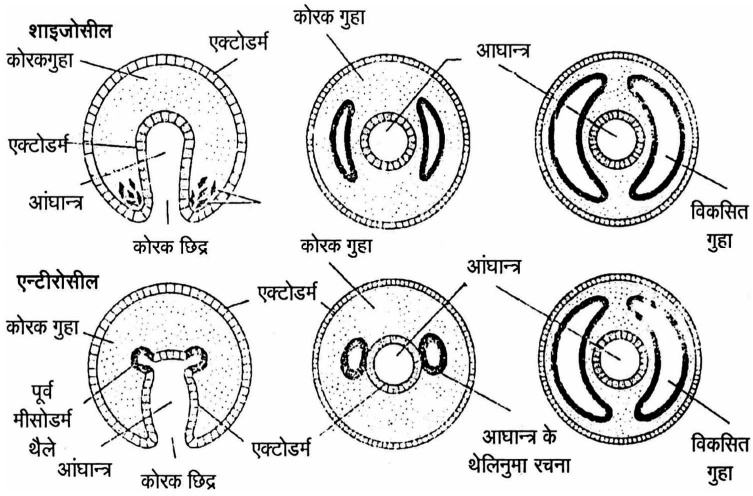

चित्र 8.2 : वास्तविक देहगुहा के प्रकार

8.3.4 खण्डीभवन (Segmentation)

खण्डीभवन वर्गीकरण की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण गुण नहीं है। खण्डीभवन का अर्थ है कि शरीर का खण्डों (segments) में विभाजित होना। खण्डी भवन दो प्रकार का होता है-

i. **सतही खण्डीभवन (Superficial Segmentation) :** इस प्रकार के खण्डी भवन से प्राणी सतह से ही सखण्डित दिखायी देता है, परन्तु शरीर आन्तरिक रूप से विखण्डित नहीं होता है। इसी प्र।कार का खण्डी भवन कुछ नीडेरियन्स में तथा अन्य कूट गुहिक जन्तुओं में पाया

ii. **सम खण्डी भवन (Metameric Segmentations) :** इस प्रकार के खण्डी भवन में जन्तु सतह तथा आन्तरिक रूप से समखण्डों में विभाजित होता है। इस प्रकार का खणडी भवन सामान्यतया ऐनेलिडा, आर्थोपोडा तथा कॉर्डेटा के जन्तुओं में भ्रूणीय या वयस्क अवस्था में पाया जाता है। कॉर्डेटा के प्राणियों में खण्डीभवन स्पष्ट नहीं होता है लेकिन कशेरुकाओं तथा पेशियों का अध्ययन करने पर इस तथ्य की पुष्टी होती है। उद्विकास के कारण ये खण्ड व इनके आन्तरॉग रूपान्तरित एवं विशिष्टीकृत हो जाते हैं जिसके कारण कशेरुकियों के खण्ड ऐनेलिड़स खण्डों की तरह स्पष्ट दिखाई नहीं देते हैं।

इस खण्डीभवन के अनुकूलन की दृष्टि से बहुत लाभ रहे होंगे इसलिये आर्थोपोडा व कशेरुकी जीवन विकसित व सफलतम जीव बने। समय के साथ समरूप खण्डों के अंगों ने, रूपान्तरित होकर विविध कार्य किये।

खण्डीभवन का संघों को वर्गीकृत करने की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं है। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस आधार पर हम ऐनेलिडा एवं आर्थ्रोपोड़ा के प्राणियों को अन्य दीर्ण गुहिक जन्तुओं से अलग कर सकते हैं।

8.3.5 भ्रूणोद्भव (Embyonic development)

भ्रूणीय परिवर्धन के समय कोशिकाएँ किस तरह से विभाजित होती हैं, कितने जनन स्तर बनते हैं, मुख तथा गुदा का निर्माण किससे होता है, आदि लक्षणों को भी वर्गीकरण का आधार बनाया जाता हैं।

i. **जनन स्तर (Germ-layers)** लार्वा के परिवर्धन के समय गैस्ट्रूला अवस्था में दो या तीन जनन स्तरों का निर्माण होता है। ये एक्टोडर्म व एण्डोडर्म तथा मीसोडर्म कहलाते हैं। पोरीफेरा तथा नीडेरिया संघ के प्राणियों में गेस्ट्रूला अवस्था में सिर्फ दो जनन स्तरों का निर्माण होता है। इसलिये ये प्राणी द्विस्तरीय (dibloblastic) कहलाते हैं। नीडीरया के बाद के अन्य संघों के प्राणियों में तीन स्त्री का निर्माण होता है इसलिये इन्हें त्रिस्तरीय (triploblastic) कहते हैं।

ii. **विदलन के प्रकार (Types of Cleavage)** जन्तुओं का वर्गीकरण विदलन के आधार पर भी किया जाता है युग्मनज में दो तरह का विदलन पाया जाता है। दोनों प्रकार के विदलन में प्रथम दो विभाजन एक ही प्रकार का होता है जिसके फलस्वरूप चार कोशिकाओं की उत्पत्ति होती है-

(a) **अरीय विदलन** (Radial Cleavage) : इस प्रकार के विदलन में चार कोशिकाएँ, आठ कोशिकाओं में विभाजित हो जाती हैं तथा ये कोशिकाएँ चार-चार के समूह में दो स्तरों में एक दूसरे पर व्यवस्थित हो जाती है।

यदि ऊपर से देखा जाये तो नीचे के कोरक-खण्ड दिखाई नहीं देते हैं क्योंकि यह ऊपर वाले चार कोरक खण्डों से ढकी रहती है। ऐसा माना जाता है कि इस प्रकार का विदलन जिन प्राणियों में पाया जाता है, उनके परिवर्धन के प्रारम्भिक अवस्था में कोशिकाओं को भविष्य का निर्धारण नहीं होता है। यदि कुछ कोशिकायें हटा भी दी जायें तो भी सम्पूर्ण अंगों वाला प्राणी का ही निर्माण होगा। इस प्रकार का विदलन **अनिर्धारी** (Indeterminate) कहलाता है तथा ऐसा **युग्मनज** (zygote) **समसक्षम** (equiopotent) कहलाता है।

(b) **सर्पिल विदलन** (Spiral Cleavage) : इस प्रकार विदलन कोशिकाएँ तिरछी विभाजित होती है तथा 8 कोरक खण्ड बनने पर 4-4 कोरक खण्डों के दो टायर्स बनते हैं। ऊपर के कोरक खण्ड, नीचे वाले कोरक खण्डों की खान्चो के बीच स्थित हाते हैं। जिन प्राणियों में सर्पिल विदलन पाया जाता है इनमे कोरक खण्डों के भविष्य का निर्धारण हो जाता है। इसलिये इस प्रकार के विदलन को निर्धारी (determinate) विदलन कहते हैं। **उदाहरण-** प्लैटीहैल्मीन्थीज, ऐस्केल्मीन्थीज, ऐनेलिडा, आर्थोपोडा, मोलस्का आदि।

(c) **द्विपाश्वरीय विदलन (Bilateral Cleavages).** इस प्रकार के विदलन के फलस्वरूप कोरक खण्डों का विन्यास द्विपार्श्व सममित होता है। उदाहरण- इ्यूटरोस्टोम (इकाइनोडर्मेटा, हेमी-कॉर्डेटा एवं कॉर्डेटा)।

iii. **भ्रूणीय-मुख की उत्पत्ति :** भ्रूणीय पीरवर्धन की गेस्ट्रूला अवस्था मेंकोरक रन्ध्र (blastopore) का निर्माण होता है। कोरक रन्ध्र भविष्य में या तो मुख का निर्माण करता है या गुदा का।

(a) **प्रोटोस्टोमिया** (Protostomia) : यदि कोरक रन्ध्र, परिवर्धन के समय मुख का निर्माण करें तो ऐसे प्राणियों को प्रोटोस्टोमिया के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है। इस समूह के जन्तुओं में सर्पिल एवं निर्धारी प्रकार का विदलन पाया जाता है। उदाहरण- प्लैटी हैल्मीन्धीज, ऐस्केल्मीन्थीज, ऐनेलिडा, आर्थोपोडा एवं मोलस्का।

(b) **इयूटिरोस्टोमिया** (Deuterostomia) : यदि कोरक रन्ध्र द्वारा गुदा का निर्माण भ्रूणीय. परिवर्धन के समय होता है इस समूह के प्राणियों में अरीय एवं अनिर्धारी प्रकार का विदलन होता है। उदाहरण- इकाइनोडर्मेटा, हेमीकॉर्डेटा एवं कॉर्डेटा।

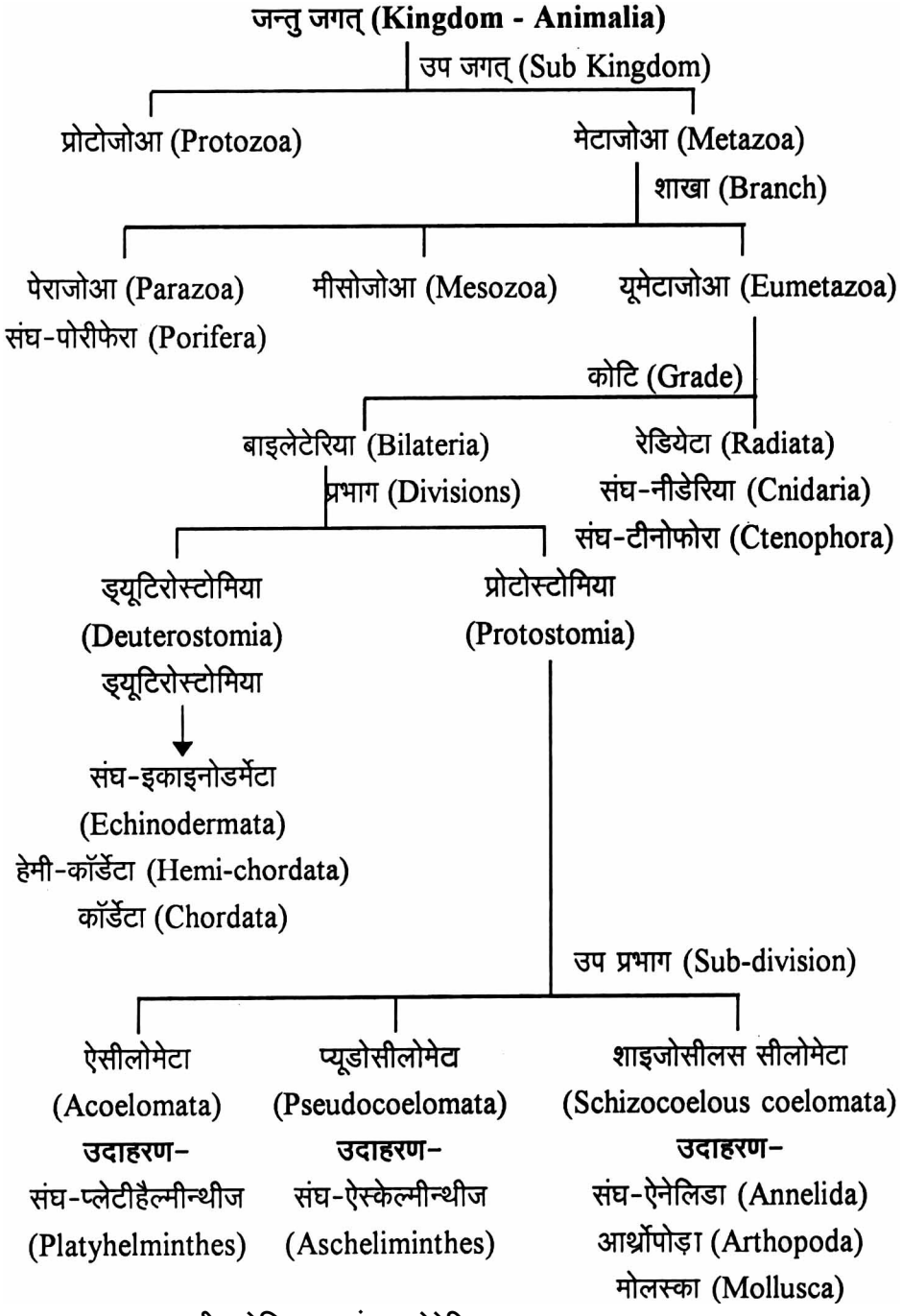

सारणी : रेडियटा एवं बाइलेटेरिया का तुलनात्मक अध्ययन

क्रम संख्या	रेडियेटा ,	बाइलटेरिया
1. सममिति	इसमे अरीय या द्विअरीय सममिति पायी जाती है	इसमें मुख्यतया द्विपार्श्वीय सममिति पायी जाती है इकाइनोडर्मेटा के सदस्यों में

		द्वितीय रूप से पंचतयी अरीय सममिति का विकास हो जाता है।
2. स्तर	ये द्विस्तरीय होते है इनमे केवल दो जनन स्तर होते है	ये त्रिस्तरीय होते हैं। इनमें तीन जनन स्तर पाये जाते हैं।
3. शारीरिक सगठन	कोशिका -ऊतकीय प्रकार का	अंग या अंग तन्त्र प्रकार का।
4. मुख तथा गुदा	सिर्फ मुख उपस्थित ,अंतर्ग्रहण एवं बहिक्षेपण दोनों मे सहायक	मुख एवं गुदा दोनों उपस्थित
5. देह गुहा	अनुपस्थित	अनुपस्थित या उपस्थित

सारणी : अदेहगुहीय, आभासी देहगुहीय एवं वास्तविक देहगुही का तुलनात्मक अध्ययन

अदेहगुहीय	आभासी देहगुहिय	वास्तविक देहगुहीय
1. देहगुहा अनुपस्थित	आभासी देहगुहा उपस्थित देहगुहा का निर्माण कोरक गुहा से	वास्तविक देहगुहा उपस्थित, मीसोडर्म से आस्तीरत
2. देह भित्ति एव आहार नाल के बीच में मीसेन काइमल कोशिकाएँ उपस्थित	देह भित्ति एवं आहार नल के बीच उपस्थित	यह गुहा मीसोड र्म के बीच स्थित।
उदाहरण - प्लेटीहैल्मीन्थीज	**उदाहरण -** ऐस्केल्मींथीज़	**उदाहरण** - ऐनेलिडा, आर्थोपोडा, मोलस्का, इकाइनोडर्मेटा, हेमीकॉर्डेटा कॉर्डेटा

सारणी प्रोटोस्टोमिया एवं ड्यूटिरोस्टोमिया का तुलनात्मक अध्ययन

लक्षण	प्रोटोस्टोमिया	ड्यूटिरोस्टोमिया
1. मुख या गुदा	मुख कोरक रन्ध्र द्वारा	गुदा कोरक रन्ध्र द्वारा
2. देहगुहा	अनुपस्थित, या आभासी देहगुहा या वास्तविक देहगुहा उपस्थित	एन्टेरोसील प्रकार की वास्तविक देह गुहा उपस्थित
3. विदलन	सर्पिल एवं निर्धारी प्रकार का	अरीय एवं अनिर्धारी प्रकार का
4. अण्डाणु	निर्धारी प्रकार का	अनिर्धारी प्रकार का

8.4 सारांश (Symmary)

- नॉन-कॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा को नोटोकॉर्ड के आधार पर दो समूहों में विभेदित करते हैं।
- नॉन-कॉर्डेटा समूह में प्रोटोजोआ से इकाइनोडर्मेटा संघ को सम्मिलित किया जाता है।
- नोटोकॉर्ड का उद्भव मीसोडर्म से होता है। यह रिक्तिका युक्त कोशिकाओं से बनी होती है।
- वर्गिकी (Taxanomy) शब्द केन्डाल ने दिया था।
- अरस्तु को वर्गिकी का जनक माना जाता है।
- वर्गीकरण का आधार कोशिकाओं की संख्या, सममिति तथा देहगुहा होती है।

- प्लेटीहैल्मीन्थीज संघ के सदस्य अदेहगुहीय होते हैं।
- आभासी देहगुहा, ऐस्कैल्मीन्थीज संघ के जन्तुओं में पायी जाती है।
- वास्तविक देहगुहा, ऐनेलिड़ा से कॉर्डेटा संघ के सभी प्राणियों में पायी जाती है।

बोध प्रश्न (Self assessment Questions)

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. निम्न में से किस प्राणी में गोलीय सममिति पायी जाती है?
   (a) अमीबा
   (b) हाइड्रा
   (c) रेडियोलेश्यिन
   (d) तारामीन ( )
2. टीनोफोरा के प्राणियों में किस प्रकारकी सममिति पायी जाती है?
   (a) असममिति
   (b) गोलीय
   (c) अरीय
   (d) द्विअरीय'' ( )
3. नोटोकॉर्ड का उद्भव होता है-
   (a) एक्टोडर्म से
   (b) एण्डोडर्म से
   (c) मीसोडर्म से
   (d) उपरोक्त सभी से ( )
4. देहगुहा के आधार पर प्लेटीहैल्मीन्थीज के प्राणी होते हैं-
   (a) अदेहगुहीय
   (b) आभासी देहगुहीय
   (c) वास्तविक देहगुहीय
   (d) उपरोक्त कोई नहीं ( )
5. निम्न में से किस संघ के प्राणियों में आन्त्र गुहा पायी जाती है-
   (a) आर्थोपोडा
   (b) मोलस्का
   (c) एनेलिडा
   (d) इकाइनाडर्मेटा ( )

लधुउत्तरीय प्रश्न

1. त्रिस्तरीय प्राणी क्या होते हैं?
   .....
2. दीर्णगुहा के बारे में बताइये।
   .....
3. कूटप्रगुहा का क्या मतलब है?
   .....

4. रेडियेटा में किस संघ के जन्तुओं को रखा जाता है?

.....

5. असममिति से क्या तात्पर्य है?

.....

8.6 शब्दावली (Glossary)

अकशेरुकी	Non chordata
वर्गिकी	Taxonomy
सममिति	Symmatory
देह-गुहा	Body Cavity
दीर्ण गुहीय	Segmentation
जनन स्तर	Germ Layers

8.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली, रंगा एवं लौरी. प्राणि विविधता तथा उद्विकास रमेश बुक डिपो, जयपुर

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to Self-assessment Questions)

बहु वेक्लीप्क प्रश्न

1 (c) 2. (d) 3.(d) 4.(a) 5.(d)

लघुउत्तरीय प्रश्न

6. 8.3.3 में देखे। 7. 8.3.3 में देखें।

8. 8.3.3 में देखें। 9. 8.3.1 में देखें।

10. 8.3.2 में देखें

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

11. 8.3 में देखें।

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. प्राणियों के वर्गीकरण के आधार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

इकाई 9: नॉन-कॉर्डेटस प्रारूपों का विस्तृत वर्गीकरण, स्वभाव, वास स्थान एव बाह्य लक्षण(Detailed Classification , Habits ,Habitat and External Characters Of Non-Chordates type)

इकाई की रूपरेखा (Out-Line of Unit)

9.0 उद्देश्य (Objectives)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

9.2 नॉन-कॉर्डेटा वर्गीकरण (Non-chordata - Classification)

9.3 संघ-प्रोटोजोआ (Phylum-Protozoa)

- 9.3.1 सामान्य लक्षण (General Characters)
- 9.3.2 प्रोटोजोआ का वर्गीकरण (Classfication of Protozoa)
- 9.3.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits,Habitat and External Characters)
  - (i) अमीबा (Amoeba)
  - (ii) पैरामिशियम (Paramecium)
  - (iii) युग्लिना (Euglena)

9.4 संघ-पोरीफेरा (Phylum-Porifera)

- 9.4.1 सामान्य लक्षण (General Characters)
- 9.4.2 पोरीफेरा का वर्गीकरण (Classification of Porifera)
- 9.4.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits,Habitat and External Characters)
  - (i) साइकन (Sycon)

9.5 संघ-सीलेन्ट्रेटा (Phylum - Coelenterata)

- 9.5.1 सामान्य लक्षण (General Characters)
- 9.5.2 सीलेन्ट्रेटा का वर्गीकरण (Classification of Coelenterata)
- 9.5.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits,Habitat and External Characters)
  - (i) ओबेलिया (Obelia)

9.6 संघ-प्लेटीहैल्मीन्थीज (Phylum-Platyhelminthes)

- 9.6.1 सामान्य लक्षण (General Characters)
- 9.6.2 प्लेटीहैल्मीथीज का वर्गीकरण (Classification of Platyhelminthes)
- 9.6.3 स्वभाव, वारन स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits,Habitat and External Characters)

(i) फैसिओला (Fasciola)

(ii) टीनिया (Taenia)

9.7 संघ-ऐस्कैल्मिथीज (Phylum-Aschelminthes)

9.7.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

9.7.2 ऐस्केल्मिथीज का वर्गीकरण (Classification of Aschelminthes)

9.8 संघ-ऐनेलिडा (Phylum-Annelida)

9.8.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

9.8.2 ऐनेलिडा का वर्गीकरण (Classification of Annelida)

9.8.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits,Habitat and External Characters)

(i) नैरीज (Nereis)

(ii) हीरूडीनिया (Hirudinia)

9.9 संघ-अथ्रोपोड़ा (Phylum- Arthropoda)

9.9.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

9.9.2 आर्थ्रोपोडा का वर्गीकरण (Classifications of Arthropoda)

9.2.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits,Habitat and External Characters)

(i) पेलिमॉन (Palaemon)

9.10 संघ-मोलस्का (phylum-Mollusca)

9.10.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

9.10.2 मोलस्का का वर्गीकरण (Classification of Mollusca)

9.10.3 स्वाभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits,Habitat and External Characters)

(i) पाइला (Pila)

(ii) लेमेलिडेन्स (Lamellidens)

9.11 संघ-इकाइनोडर्मेटा (Phylum-Echinodermata)

9.11.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

9.11.2 इकाइनोडर्मेटा का वर्गीकरण (Classification of Echinodermata)

9.11.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits,Habitat and External Characters)

(i) एस्ट्रियाज (Asterias)

9.12 संघ-हेमीकॉर्डेटा (Phylum-Hemi-chordata)

9.12.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

9.12.2 हेमीकॉर्डेटा का वर्गीकरण (Classification of Hemi-chordata)

9.12.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits,Habitat and External Characters)

(i) बैलेनोग्लोसस (Balanoglossus)

9.13 सारांश (Symmary)
9.14 शब्दावली (Glossary)
9.15 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)
9.16 अभ्यासों के उत्तर (Answers to Self assessment Questions)
9.17 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

9.0 उद्देश्य (Objectives)

पिछली इकाई में आप नॉन - कॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा की वर्गिकी एवं वर्गीकरण के आ धार के बारे में पढ़ चुके हैं।

इस इकाई का उद्देश्य है कि आप नॉन - कॉर्डेटा के विभिन्न संघों के सामान्य ल क्षण, उनका वर्गीकरण तथा उनके प्रारूपों के स्वभाव, वासस्थान एवं बाह्य ल क्षणों के बारे में जान सकें।

इस इकाई में विभिन्न प्रारूपों के बाह्य लक्षणों के साथ उनके चित्र भी दिये गये हैं जिससे, आपको उन प्राणि - प्रारूपों की आकृति का ज्ञान भी हो सकेगा।

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

संसार में पेड़ - पौधों एवं जीव - जन्तुओं की संख्या ही अधिक नहीं है वरन् उनके रूप एवं आकृति में भी अत्यधिक विविधता पायी जाती है। अब तक लगभग 10 लाख से अधिक जन्तुओं को पहचाना जा चुका है और न जाने कितनों को पहचानना अभी शेष हैं। प्राणियों का आकार एवं स्वभाव एक दूसरे से बहुत भिन्न होता है अत : संख्या की विशालता के साथ - साथ प्राणि - जगत् में विषमता भी बहुत अधिक होती है। प्राकृतिक समानता एवं विषमता के आ धार पर प्राणियों को पृथक् समूहों में आसानी से निर्धारित करके वर्गीकृत किया जाता है। समानताओं तथा असमानताओं के आ धार पर प्राणी जातियों को छोटे - बड़े समूहों में बांटना इनका वर्गीकरण (Classification) कहलाता है

9.2 नॉन - कॉर्डेटा वर्गीकरण (Classification of Non-chordata)

प्राणियों का वर्गीकरण विभिन्न वैज्ञानिकों ने अनेक प्रणालियों एवं विधियो द्वारा किया है। परन्तु इस सभी वर्गीकरणों की प्रणाली **लिनियस** (Linnaeus) के **प्राकृतिक वर्गकिरण** (Natural Classifications) पर आधारित है।

आर. एच. व्हीटेकर ने 1969 में पंच जगत् वर्गीकरण दिया था। उन्होंने सभी सजीवों को पाँच जगतों में वर्गीकृत किया था।

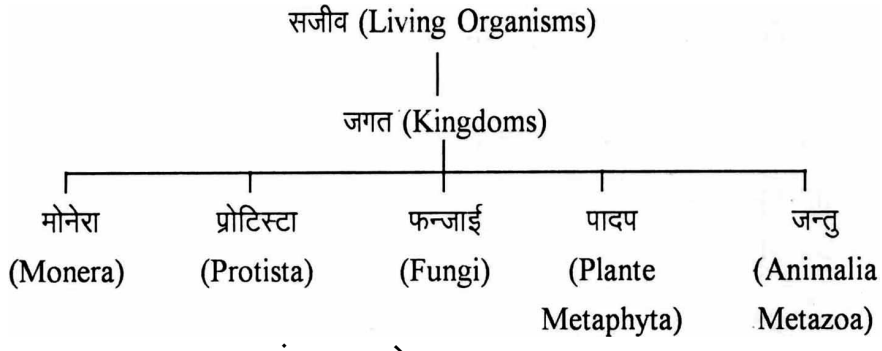

पंच जगत के कुछ प्रमुख लक्षण

लक्षण	मोनेरा	प्रोटिस्टा	फन्जाई	पादप	जन्तु
कोशिका की जटिलता	प्रोकेरियोटिक	यूकेरियोटिक	यूकेरियोटिक	यूकेरियोटिक	यूकेरियोटिक
सजीव की जटिलता	एक कोशिकीय	एक कोशिकीय	बहु कोशिकीय एवं एक कोशिकीय	बहु कोशिकीय	बहु कोशिकीय
कोशिकीका भित्ति	अधिकांशतया	कुछ में उपस्थित तथा कुछ में अनुपस्थित	उपस्थित	उपस्थित	अनुपस्थित
पोषण	स्वपोषी या विषमपोषी	विषमपोषी या स्व : पोषी	विषमपोषी	स्वपोषी	विषमपोषी
उदाहरण	बैक्ट्रिया नीले - हरे शैवाल माइको-प्लाज्मा	प्रोटोजोन्स शैवाल	विभिन्न प्रकार के कवक	बहू कोशिकीय पादप	बहु कोशिकीय जन्तु

निम्नलिखित प्राणी वर्गीकरण **स्टोरर एवं यूसिंगर**(Storer and Usinger) द्वारा सामान्य प्राणी विज्ञान (General Zoology) नामक पुस्तक में लिखित वर्गीकरण पर आ धारित है। इन्होंने प्राणी जगत् को 23 संघों में विभाजित किया हैं।

प्राणि - जगत् (Kingdom-Animalia)

प्राणि - जगत् (Kingdom-Animalia) - कोशिकीय स्तर पर निम्नलिखित विभिन्नताओं के आ धार पर प्राणियों को पादपों से अलग किया जाता हैं।

- प्राणि- कोशिका में सेल्यूलोज (cellulose) की बनी मोटी कोशिका -भित्ति (cell-wall) का **अभाव** होता है।
- प्राणियों के कोशिका -द्रव्य में क्लोरोफिल (Chlorophyll) का **अभाव** होता है। अत : जन्तु **परपोषित** (hetrotrophic) होते हैं।
- संचित पदार्थ प्राणियों में, ग्लाइकोजन (Glycogen) होता है जबकि पादपों में यह स्टार्च आदि होता है।
- कोशिका द्रव्य विभाजन प्राणियों में संकीर्णन (Constriction) के द्वारा होता है।
- प्राणि -कोशिका की सतह पर सुक्ष्मांकुर पाये जाते है एवं इनमें रिक्तिकांए Vacuoles छोटी या अनुपस्थित होती हैं।
- प्राणि - कोशिका में सेंट्रोसोम व गोल्जी काय सुस्पष्ट होती हैं।
- प्राणियों को सजीवों के दो जगत्- प्रोटिस्टा एवं ऐनिमेलिया अर्थात् मेटाजोआ में वर्गीकृत किया है। जगत् प्रोटिस्टा में एक कोशिकीय यूकेरियोटिक सजीवों (प्रोटोजोअन्स एवं शैवाल) को रखा गया तथा जगत - ऐनिमेलिया में बहु कोशिकीय प्राणियों को रखा गया॥

  जगत - ऐनिमेलिया को निम्न तीन शाखाओं में वर्गीकृत किया गया -

  (1) मीसोजोआ (Mesozoa)

  (2) परीजोआ (Parazoa) एवं

(3) यूनेटोजोआ (Eumetazoa)।

- शाखा **मीसोजोआ** (Mesazoa) में सम्मिलित जन्तु समुद्री अकशेरूकी प्राणियों के परजीवी होते हैं, तथा कृमि - सदृश्य हैं इनमें ऊतकों का अभाव होता हैं, उदा. डाइसीमा (Dicyema)'
- शाखा **पैराज़ोआ** (Parazoa) में आने वाले प्राणियों का शारीरिक संगठन केवल **कोशिकीय स्तरीय** (cellular Level) का होता है। परस्पर समानताओं के कारण उप-समूह में आने वाले प्राणियों को केवल एक **संघ - पॉरीफेरा** (Phylum porifera) में रखा जाता है। उदाहरण - सभी स्पंज (sponges)
- शाखा **यूमेटाजोआ** (Eumetazoa) में आने वाले प्राणियों का शारीरिक संगठन उतक (tissue), अंग अथवा **अंग- तन्त्र** (organ and organ system grade) **स्तर** का हो ता है। इस शाखा को दो **खण्डों**(divisions) में बाँटा जाता है - **रेडिएटा** (Radiata) तथा **बाइलेट्रिया** (Bilateria)।
- **खण्ड रेडिएटा** (division Radiata) में रखे जाने वाले प्राणियों का शरीर **अरीय** सममित (radially Symmetrical) एवं संगठन **उतक स्तरीय** (tissue Grade) क होता है। इस कोटि में दो **संघ सीलेन्ट्रेटा** एवं **टीनोफोरा** (Phylum Coelenterata and Ctenphora) आते हैं।
- **खण्ड बाइलेट्रिया** (division Bilateria) में सम्मिलित किये जाने वाले प्राणियों का शरीर **द्विपाश्वृय सममित** (Bilaterally Symmetrical) एवं संगठन **अंग-तन्त्र स्तर** (Organ System) क हो ता है। यह खण्ड दो उप खण्ड औंप्रोटोटोमिया (Protostomia) तथा डअटइरोस्टोमिया (Deuterostomia) में वर्गीकृत किया गया है तथा प्रोटोस्टोमिया तीन प्रमुख विभागों (Sections) में बाँटा जाता है :

(i) **विभाग - ऐसीलोमेटा** (Sections -Acoelomata) में देह-गुहा अर्थात् **सीलोम** का अभाव होता है तथा देह-भित्ति एवं आहार- नाल के मध्य का स्थान **मीसेनकाइम** (mesenchyme) कोशिकाओं द्वारा भरा होता है जिसमें आंतरांग स्थित होते हैं। इस विभाग के अन्तर्गत **संघ प्लेटीहेल्मिन्थीज** (Phylum Platyhelminthes) व **निमर्टीनिया** (Nemertinea) के चपटे - कृमि (Flat warms)

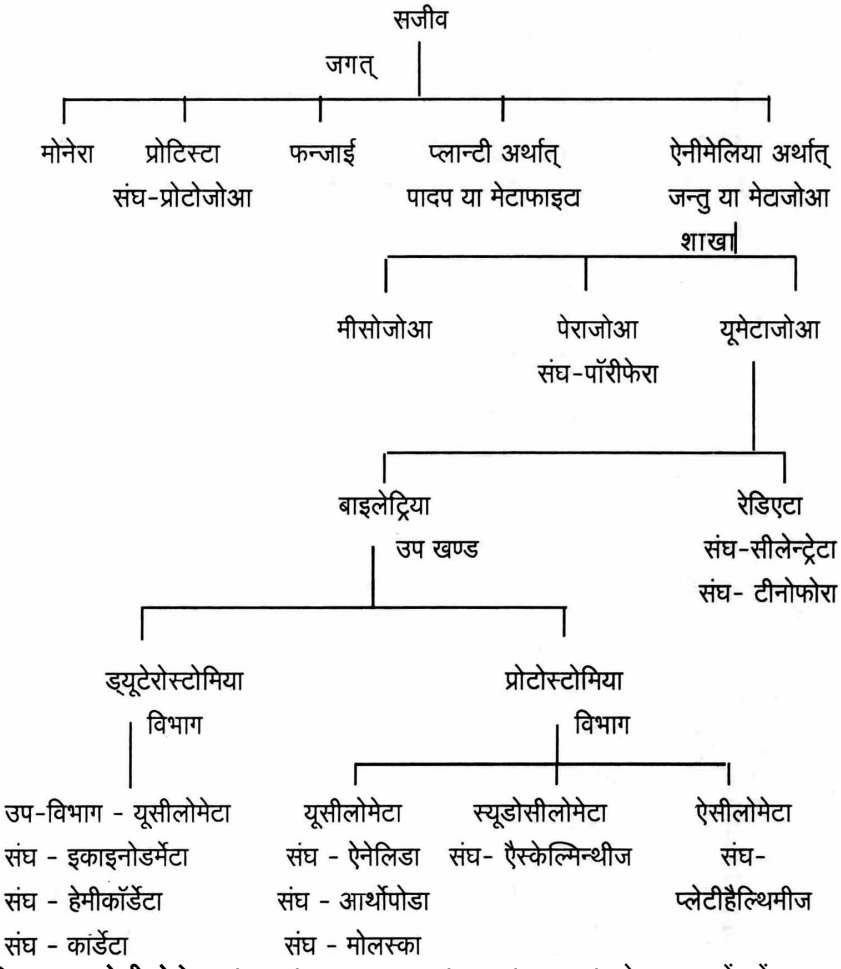

(ii) **विभाग-स्यूडोसीलोमेटा** (Section - Pseudocoelomata) के सदस्यों में वास्तविक देह-गुहा अर्थात् सीलोम का **अभाव** होता है किन्तु वयस्कों के आंतरांग देह-भित्ति एवं आहार नाल के बीच के रिक्त स्थान जिसे कूट देहगुहा या **स्यूडोसील** (Pseudocoel) कहते हैं, में स्थित होते हैं। यह गुहा भ्रूणीय विकास के अन्तर्गत मीसनकाइम कोशिकाओं के समाप्त होने पर बन जाती है तथा वास्तविक देह-गुहा की तरह ये मीसोडर्मी पेरीटोनियम कला द्वारा आस्तरित नहीं होती है। इस विभाग में **संघ एस्केल्मिन्थीस** (Phylum Aschelminthes), **संघ एन्टोप्रोक्टा** (Entoprocta) न संघ **एकेन्थोसिफेला** (Avanthocephala) के गोल-कृमि (round worms) आते हैं।

(iii) **विभाग - यूसीलोमेटा** (Eucolomata) के सदस्यों में वास्तविक देह-गुहा अर्थात **सीलोम** (coeloma) उपस्थित होती है जो मीसोडर्मी कोशिकाओं द्वारा विकसित **पेरीटोनियम** (Peritoneum) नामक कला द्वारा पूर्ण रूप से घिरी होती है।

विभाग - यूसीलोमेटा के अन्तर्गत तीन संघ ऐनेलिडा (Annelida), आर्थोपोडा (Arthopoda)' मोलस्का (Mollusca) तथा इनसे सम्बंधित लघु संघ (minor phyla) आते हैं। इन संघों के प्राणियों में **शाइजोशील** (Schizocoel) प्रकार की वास्तविक देहगुहा पायी जाती है।

इसी प्रकार उपखण्ड ड्यूटेरोस्टोमिया के अन्तर्गत विभाग - उप-यूसीलोमेटा आता है। इस समूह के प्राणियों में एन्टेरोसील प्रकार की वास्तविक देहगुहा पायी जाती है तथा इसमें इकाइनोडर्मेटा - (Echinodermata), हेमीकॉर्डेटा (Hemi-chordata) एवं कार्डेटा (Chordata) संघ आते हैं।

9.3 संघ - प्रोटोजोआ (Phylum - Protozoa)

9.3.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

इस संघ के सदस्य प्राय : **सूक्ष्मदर्शी** (Microscopic) एवं **एक कोशिकीय** (Unicellular) होते हैं। इनकी प्रत्यक्ष सरल संरचना के कारण इन्हें प्रोटिस्टा - जगत् के **प्रोटोज़ोआ** (Greek protos = first, zoon = animal) में रखा जाता है।

विभिन्न प्रकार के **अंगकों** (organelles) की उपस्थिति के कारण इनका एक -कोशिकीय शरीर सभी जैविक -क्रियाओं को पूर्ण करने में सक्षम होता है। इस प्रकार का दैहिक संगठन **जीवद्रव्यी-स्तर** (Protoplasmic grade) का कहलाता है।

इनमें **गमन** (Locomotion) के लिए **कूटपाद** (Pseudopodia), **कशाभ** (flagella) अथवा **रोमाभ** (cillia) नामक विशिष्ट **गमनांगक** उपस्थित होते हैं।

इनमें बाह्य कंकाल के रूप में पेलिकल (Pellicle), कवच (Shell), चोल (Test) आदि पाए जाते है

इसका भोजन प्राणीसमभोजी (Holozoic), पादपसमभोजी (Holophytic), परजीवी (Parasitic) या मृतोपजीवी (Saprophytic) प्रकार का हो सकता है तथा पाचन अन्तरा कोशिकीय (Intra-cellular) होता हैं।

इसमें उपस्थित संकुंचनशील धानिया (Contractile vacuoles) जलपरासरण नियमन (Osmoregulation) करती है।

इनमें जनन् द्विविभाजन, बहु विभाजन या बीजाणु जनन के द्वारा होता हैं तथा लैगिक जनन होलोगेमी एवं सिनोमी द्वारा होता है।

प्रोटोज़ोआ की अनेक जातियाँ ज्ञात हैं जो मुख्यत : **जलीय** (समुद्री एवं अलवणीय) होती हैं, किन्तु अन्य जातियाँ गीली मिट्टी में अथवा अन्य सजीवों में **परजीवी** (Parasitic) रूप में पायी जाती है।

9.3.2 प्रोटोजोआ का वर्गीकरण (Classification of Protozoa)

संघ प्रोटोज़ोआ के सदस्यों का वर्गीकरण मुख्यत : गमनांगकों की उपस्थिति तथा इनकी विधिधताओं पर आधारित है किन्तु केन्द्रकों की संख्या एवं प्रजनन-विधि भी महत्त्वपूर्ण होती है।

संघ को प्राय : दो **उपसंघों** (subphyla) में विभाजित किया जाता है : **उपसंघ प्लास्मोडोमा** (Plasmodroma) तथा **उपसंघ सिलियोफोरा** (Ciliophora)। इन दो उपसंघों को प्राय : पाँच **वर्गो** (classes) में बाँटा जाता है:

I. **उपसंघ - प्लास्मोडोमा (subphylum - Plasmodroma)**

गमनांगक **कशाभ** (flagella) अथवा **कूटपाद** (Pseudopodia) उपस्थित या अनुपस्थित होते हैं। इस उपसंघ को चार **वर्गो** में वर्गीकृत किया जाता है :

1. **वर्ग मैस्टीगोफोरा = फलैजिलेटा (Class Mastigophora = Flagellata)**: इसमें गमनांगक 1 से 8 तक लम्बे धागे-समान **कशुाभ** (Flagella) होते हैं। देह पर पारदर्शक, महीन

किन्तु दृढ़ तनुत्वक या **पैलिक्ल** (pellicle) नामक **आवरण** होता है जिसके फलस्वरूप दैहिक आकार निश्चित हो ता है। एक समूह के सदस्यों में पादपों के समान रंगीन क्रोमैटोप्लास्ट (Chromatoplast) उपस्थित होता है, अत : ये स्वयंपोषी होते हैं। इसी आधार पर इस वर्ग को दो उपवर्गो (subclasses) में बाँटा जाता है :

(i) **उपवर्ग फाइटोमैस्टीगोफोरा** (Subclasses Phytomastigophora). इस उपवर्ग में पादप - सदृश्य (Plant-like) सदस्य आते हैं जिनके जीवद्रव्य में आदर्शरूप से **क्रोमेटोप्लास्ट** (Chromatoplast) नामक रचनाएँ उपस्थित हो ती हैं जिनके कारण ये **स्वयंपोषी** (autotrophic) होते हैं तथा इनका संग्रहित खाद्य-पदार्थ पादपों की तरह **स्टार्च** (starch) होता है। उदाहरण : **यूग्लीना** (Euglena), निवही **वॉल्वॉक्स** (Volvox), **सिरेटियम** (Ceratium), **नॉक्टील्यूका** (Noctiluca)।

(ii) **उपवर्ग जुमेस्टीगोफोरा** (Subclass Zoomastigophora): इस उप समूह में प्राणि-सदृश्य (animal-like) कशाभी प्रोटोजोआ सम्मिलित किये हैं जिनके जीव-द्रव्य में क्रोमैटोप्लास्ट रचनाओं का अभाव होता हैं, अतः ये प्रायः **परपोषित** (heterotrophic) होते हैं। इनका संग्रहित-खाद्य अन्य जन्तुओं की तरह **ग्लाइकोजन** (glycogen) होता हैं। उदाहरण: **ट्राइपैनोसोमा** (Trypanosoma), **ट्राइकोमोनास** (Trichomonas) **जिआरडिया** (Giardia)।

2. **वर्ग सार्कोडीना = राइज़ोपोडा (Sarcodina = Rhizopoda)** : गमनांगक अस्थाई **कूटपाद** (Pseudopodia) होते हैं। क्योंकि कूटपाद निरन्तर बनते एवं लुप्त होते रहते हैं, इसलिए प्राणियों का आकार अनियमित एवं अनिश्चित होता है। उदाहरण : **अमीबा** (Ameoba), **एन्टामीबा** (Entamoeba), **एल्कीडियम = पॉलीस्टोमैला** (Elphidium = Polystomella)।

3. **औपैलाइनेटा (Class Opalinata) :** इस वर्ग के जन्तु मलाशय के परजीवी होते हैं, विशेषकर मैंढूक के मलाशय में पाये जाते हैं। इनमें प्रचलन कशाभिकाओं (Flagella) द्वारा होता हैं। इनमें कई केन्द्रक होते हैं जो एक समान होते है। उदा. औपेलाइना (Opalina)

4. **वर्ग स्पोरोजोआ (Class Sporozoa) :** इस वर्ग के सदस्य अन्य सजीवों पर **परजीवी** (Parasitic) होते हैं। इनमें विशिष्ट गमनांगकों का अभाव हो ता है। जटिल जीवन - चक्र में **बीजाणुजनन** (sporulation) के अन्तर्गत बीजाणु या स्पोर (spores) अवश्य बनते हैं। उदाहरण : मलेरिया परजीवी **प्लाज्योडियम** (Plasmodium), **मोनोसिस्टिस** (Monocystis)।

II. **उपसंघ - सीलीयोफोरा** (Subphylum - Ciliophora)

उपसंघ के सदस्यों में गमनांगक **सीलिया** अर्थात् रोमाभ या पूक्ष्माभ (cilia) होते हैं जो संख्या में अनेक, परिमाण में छोटे एवं आदर्श -रूप से पूर्ण शरीर को ढके होते हैं। कुछ जातियों में ये केवल प्रारम्भिक जीवन -काल तक ही सीमित रहते हैं तथा वयस्क अवस्था में इनका अभाव होता है। इस उपसंघ को दो वर्गों में बाँटा जाता है :

5. **वर्ग सीलिएटा (class Ciliata) -** इस वर्ग के सदस्यों में-सीलिया अर्थात् रोमाभ आजीवन उपस्थित होते हैं।

रोमाभ की लम्बाई में भिन्नता होने के साथ इनकी देह पर व्यवस्था भी विभिन्न प्रकार की होती है। पोषण हेतु **कोशिका-मुख**(Cytostome) उपस्थित होता है। केन्द्रकों की संख्या दो होती है -एक बड़ा दीर्घ केन्द्रक एवं एक छोटा लघु केन्द्रक (micronucleus)। प्रजनन की एक विशिष्ट विधि अर्थात् **संयुग्मन** (Conjugation) सदस्यों में पायी जाती है। उदा हरण - **पैरामीसियम**

(Paramecium), **बैलनटीडियम** (Balantidium), **निक्टोथीरस** (Nyctotherus), **वॉटीसेला** (Vorticella)।

6. **वर्ग सक्टोईरया (Class Suctoria) -** इस वर्ग के जन्तु प्राय : **स्थानबद्ध** (sessile) होते हैं। इन सदस्यों में केवल शिशुवस्था में **रोमाभ** (cilia) उपस्थित होते हैं तथा वयस्क में इनका **अभाव** होता है। देह किसी आधार वस्तु से एक **वृन्त** (stalk) द्वारा संलग्र होती हैं। स्वतंत्रा छोर पर पोषण हेतु **स्पर्शक** (tentacles) उपस्थित होते हैं। उदाहरण - **एफिलोटा** (Ephelota)।

9.3.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits, Habitat and External Characters)

(i) **अमीबा** (Amoeba)

अमीबा की खोज (Discovery) : रसेल वॉन रोजेनहॉफ (1755) ने की थी।

वर्गीकरण (Classification) :

संघ - प्रोटोज़ोआ - (Phylum Protozoa)

उप - संघ प्लास्मोड्रोमा - (Subphylum Plasmodroma)

वर्ग - सार्कोडिना = राइजोपोडा - (Class Sarcodina = Rhizopoda)

गण - अमीबीडा = लोबोसा - (Order Amoebida = Lobosa)

श्रेणी - अमीबा - (Genus Amoeba)।

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat) :

अमीबा अलवण जल का विश्वव्यापी प्राणी है जो पोखर, तालाब आदि जलाशयों में पैंदे के कीचड में व्यापक रूप से पाया जाता है। अमीबा का प्रयोग शाला में संवर्धन किया जा सकता है। प्रयोग शाला में अमीबा 'को हे इल्यूजन विधि द्वारा संवर्धित किया जाता है। **अमीबा** की अनेक जातियाँ (Species) ज्ञात हैं जिनमें **अमीबा प्रोटिअस** (Amoeba Proteus) नामक जाति सबसे सामान्य होती है। अमीबा रेडियोसा (Amoeba radiosa) भारत में पाई जाने वाली मुख्य प्रजाती है। अमीबा पिलोमिक्सा (Amoeba Pelomyxa) सबसे बडा अमीबा है, इसे दैत्य अमीबा (Giant Amoeba) भी कहते है।

संरचना (Structure) :

अमीबा का आकार अनियमित होता है (चित्र 9.1) जो हमेशा बदलता रहता है। प्राणि परिमाण में लगभग 0. 2 से 0. 6 mm व्यास का होता है। जीवित **अमीबा** जैली - सदृश्य, जीव - द्रव्य की एक रंगहीन एवं अर्ध पारदर्शक बूँद जैसा दिखाई देता है

अमीबा में गमन के लिए कूटपाद अर्थात् **स्यूडोपोडिया** (Pseudopodia) उपस्थित होते हैं जो जन्तु के शरीर पर निरंतर बनते एवं बिगड़ते है। कुटपाद आकार में अंगुली रूपी छोटे छोटे उभारों के रूप में अमीबा के शरीर से निकले हुए दिखाई देते हैं। अमीबा के कूटपादों के सिरे गोल अर्थात् कुन्द होते हैं, इसलिए इस प्रकार के कूटपादों को **लोबोपोडिया** (lobopodia) कहते हैं। एक साथ कई कूटपाद के निर्माण के कारण अमीबा प्रोटियस बहुपादी (Polypodial) कहलाता है।

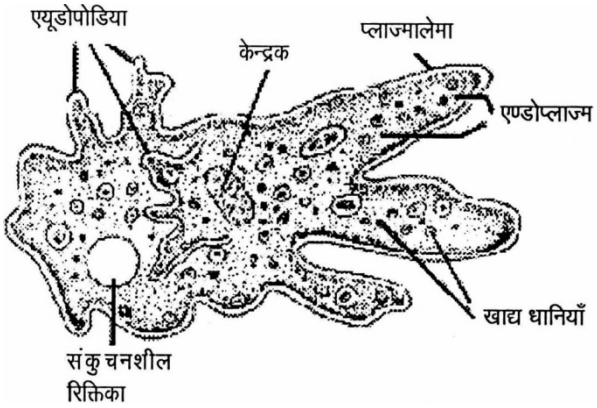

चित्र 9.1 : अमीबा

अमीबा में ध्रुवता (Polarity) पायी जाती है। जिस सिरे पर कूटपाद का निर्माण होता है। उसे अग्र सिरा (Anterior end) कहते है। अग्र सिरे के विपरीत सिरा पश्च सिरा (Posterior end) कहलाता है। इस सिरे पर झुर्रीदार छोटे-छोटे कूट पाद पाऐ जाते हैं जिन्हें यूरोइड (Uroid) कहते है। अमीबा स्टीएटा (Amoeba striata) तथा अमीबा वेरूकोसा (Amoeba verrucosa) में एक कूटपाद होता है।

(ii) पैरामिशियम (Paramecium)

वर्गीकरण (Classification) :

संघ - **प्रोटोजोआ** (Phylum - Protozoa)

उपसंघ - **सीलियोफोरा** (Subphylum - Ciliophora)

वर्ग - **सीलिएटा** (Class - Ciliata)

उपवर्ग - **यूसीलिएटा** (Subclasses - Euciliata)

गण - **होलोटाइका** (Order - Holotricha)

श्रेणी - **पैरामीसियम**(Genus - Paramecium)

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat) :

पैरामीसियम अलवणीय-जल (fresh water) का जन्तु है जो जल-भरे खड्डों, पोखरों, तालाबों आदि में प्रचुर मात्रा में तैरता हुआ पाया जाता है। यह प्राय: उन जलाशयों में मिलता है जहाँ जल स्थिर होता है तथा कार्बनिक पदार्थ (Organic material) तथा अन्य सूक्ष्म प्रोटोजोआ एव शैवाल आदि की मात्रा अधिक होती है। पैरामीशियम में होलोजोइक (Holozoic) प्रकार का पोषण पाया जाता है।

पैरामीसियम की लगभग 6,000 जातियाँ ज्ञात हैं तथा इनमें से सबसे सामान्य पैरामीशियम कॉडेटम (paramecium caudatum) है। निम्नलिखित वर्णन इसी जाति पर आधारित है।

विशेष लक्षण

पैरामीसियम का शरीर असममित (asymmetrical), लम्बा एव बेलनाकार होता है तथा जूती के तले के समान लगता है। अत: इसे 'स्लिपर ऐनीमलक्यूल' (Slipper animalcule) भी कहते हैं। शरीर का अग्र-अन्त गोलाकार अर्थात कुन्द (blunt) होता है तथा पश्च अन्त अपेक्षाकृत नुकीला (pointed) होता है। शरीर की लम्बाई लगभग 0.3mm होती है।

पैरामीसियम का शरीर एक महीन एवं मजबूत कुचंनशील आवरण से ढका होता है जिसे तनुत्वक या **पैलिकल** (Pellicle) कहते हैं। पैलिकल का पूरा तल **षट्भुजीय गर्तों** (Hexagonal depression) में बँटा होता है। प्रत्येक गर्त के मध्य से एक महीन बाल-जैसी संरचना, **रोमाभ** अर्थात् **सीलिया** (cilia), निकली होती है। प्रत्येक षदभुजीय गर्त के उभारों (ridges) पर **टाइकोसिस्ट** (Trichocyst) नामक संरचनाओं के छिद्र भी पैलिकल पर खुलते हैं।

पैरामीसियम का सम्पूर्ण शरीर रोमाभों (cilia) से ढका होता है। प्राय: सभी रोमाभ एक ही लम्बाई की होती हैं तथा शरीर पर अनुलम्ब पंक्तियों (Longitudinal rows) में व्यवस्थित रहती हैं, किन्तु पश्च भाग की रोमाभ अन्य सीलिया से कुछ अधिक लम्बी होती है। ये लम्बी रोमाभ (cilia) पुच्छ गुच्छ (caudal tuft) कहलाती है। सभी रोमाभ एक साथ स्पन्दन करते है इस प्रकार के स्पन्दन को समकालिक स्पिन्दन (synchronous beating) कहते हैं। रोमाभ जीव-द्रव्य की बनी एक छोटी अत्यन्त महीन बाल-रूपी संरचना होती है। प्रत्येक रोमाभ 11 लम्बे **तन्तुको** (filaments) की बनी होती है ये तन्तुक माइक्रोटयुब्ल्स (Microtubules) के बने होते हैं। इन तन्तुको में से दो अक्षीय (axial) होते है जिन्हें **अक्षीय तन्तुक** (axial filaments) कहते हैं तथा बाकि 9 तन्तुक परिचय (peripheral) होते है तथा चक्र में स्थित होते है, इन्हें **परिधीय तन्तुक** (peripheral filaments) कहते हैं। प्रत्येक परिचिय तन्तुक के दो अंश होते हैं। रोमाभी तन्तुको की इस व्यवस्था को 9 + 2 व्यवस्था कहते हैं। रोमाभों के ये संरचनात्मक तन्तुक **जीव-द्रव्य के आवरण** (Protoplasmic sheath) से बन्धे होते हैं। प्रत्येक रोमाभ पैलिकल के नीचे जीव-द्रव्य में स्थित आधार-कण अर्शात् **आधारी कणिका** (basal granule) नामक रचना से निकलकर बाहर आती है। रोमाभ के आधार-कण आपस में एक-दूसरे से तन्तुको (fibrils) द्वारा जुड़े रहते हैं। इन्हे काइनेटोडेस्मेटा (Kinetodesmata) कहते है। आधारकाय तथा काइनेटोडेस्मेटा को संयुक्त रूप से अवपक्ष्माभी तन्त्रा (Infraciliary system) कहते है।

शरीर के अधर पार्श्व (ventro - lateral) तल पर एक लम्बा एवं चौड़ा गर्त (depression) उपस्थित होता है जिसे **मुखीय खाँच** (buccal or oral groove) अर्थात **पेरीस्टोम** (peristome) कहते हैं। पेरीस्टोम शरीर के अग्र-अन्त से लगभग मध्य के कुछ पीछे तक उपस्थित होता है। पेरीस्टोम एक कपि-रूपी (funnel - like) **वेरिटब्यूल** (vestibule) द्वारा मुख-गुहिका अर्थात् मुख - गुहिका (buccal cavity) में खुलता है। मुख-गुहिका जन्तु के जीव-द्रव्य में बढ़कर अन्त में एक नलाकार एवं छोटी **कोशिकीय-ग्रसिका** (cytopharynx) में खुलती है। मुख-गुहिका के अन्त तथा मुख-ग्रसिका के शुरू होने के स्थान को कोशिकीय-मुख अर्थात **साइटोसटोम** (cytostome) कहते हैं पेरीस्टोम, वैस्टीब्यूल, मुख-गुहिका तथा **साइटोफैरिंक्स** रोमाभयुक्त होते हैं। परन्तु साइटोफैरिंकस पर सीलिया का अभाव होता है साइटोफैरिक्स के कुछ नीचे पैलिकल पर एक छोटा गर्त होता है जो कोशिकीय-गुदा कहलाता है।

(iii) युग्लीना(Euglena)

वर्गीकरण:

संघ - **प्रोटोजोआ** (Phylum - Protozoa)

उपसंघ - **प्लासमोड्रोमा** (Subphylum - Plasmodroma)

वर्ग - **मैस्टीगोफोरा** (Class - Mastigophora)

उपवर्ग - **फाइटोमैस्टीगोफोरा** (Subclass - Phytomastigina)

गण - **यूग्लीनॉयडीया**

श्रैणी - **यूग्लीना**(Genus - Euglena)।

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat):

यूग्लीना अलवणीय जल (fresh water) का सूक्ष्मदर्शीय प्राणी है। यह जल-भरे खड्डों, पोखरों, ताल आदि में प्रचुर मात्रा में तैरता हुआ पाया जाता है। यह प्राय: उन जलाशयों में बहुगयत से मिलता है जहाँ जल स्थिर, स्वच्छ, ऑक्सीजन-युक्त होता है और जल में कार्बनिक पदार्थ तथा अन्य सूक्ष्म प्रोटोजोआ एवं शैवाल आदि की मात्रा अधिक होती है। यूग्लीना को प्राणि-जगत तथा पादप जगत के बीच की कड़ी माना गया है।

यूग्लीना की अनेक जातियाँ होती हैं तथा इनमें से सबसे सामान्य यूग्लीना विरिडिस (Euglena virdis) है। निम्नलिखित वर्णन इसी जाति पर आधारित है :

विशेष लक्षण :

इसका शरीर तर्कु-आकार (spindle - shaped) का तथा करीब 0.1 मिमी. लम्बा होता है जो अग्र भाग से **कुन्द** (blunt) तथा पिछले भाग से **नुकीला** होता है। देह एक महीन किन्तु दृढ **पैलिकल** (pellicle) के आवरण से ढकी होती है। पेलीकल प्रोटीन की बनी होती है। पेलीकल पर सर्पिल धारियाँ पायी जाती हैं जिन्हें मायोनीम (Myonemes) कहते हैं। इन मायोनीम के कारण यह अपने शरीर को संकुचित एवं प्रसारित कर सकता है। अग्र भाग में **कोशिका-मुख** (cytostome) होता है जो एक कोशिका-ग्रसिका में खुलता है। **कोशिका-ग्रसिका** (cytopharynx) एक बडी रिक्तिका अर्थात् **आशय** (reservoir) से जुड़ी होती है। ये सभी अंगक खाद्य-भक्षण के लिए नहीं होते हैं परन्तु शरीर से फालतू द्रव्य फेकने के काम मे आते हैं। यूग्लीना में पोषण स्वपोषित (Autotrophic) तथा मृतोपजीवी (Saprophytic) दो प्रकार का पाया जाता है। अग्र भाग में दो **कशाभ** होती हैं- एक लम्बी जो शरीर के बाहर दिखाई देती है एवं एक बहुत छोटी जो शरीर से बाहर निकली नहीं होती है। दोनों कशाभ दो **आधार-कण** (basal - granule) से निकलती हैं जो आशय के नीचे स्थित होते हैं। आशय के निकट एक लाल **स्टिग्मा** (stigma) अर्थात् **नेत्र-बिन्दु** (eye - spot) होता है। लम्बी कशाभ के नीचे एक और **प्रकाश-ग्राही** अर्थात् फोटोरिसेप्टर (photoreceptor) उपस्थित होता है। इन सभी अंगकों के अतिरिक्त जीव-द्रव्य में एक **केन्द्रक** (nucleus), कई लम्बे **क्लोराप्लास्ट** (chloroplast) **पैरामाइलम संगृहीत खाद्य** (Paramylum food reserve) कण एवं एक **कुंचनशील रिक्तिका** (contractile vacuole) उपस्थित होती हैं। यूग्लीना मुख्य कप से द्विभाजन (Binary fission) द्वारा जनन करता है।

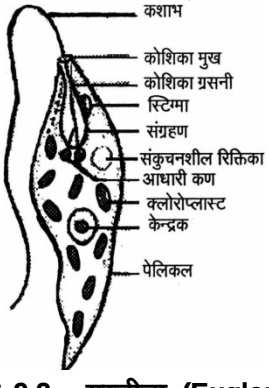

चित्र 9.2 : यूग्लीना (Euglena)

9.4 संघ - पोरीफेरा (Phylum - Porifera)

9.4.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

ये सामान्यत :**स्पंज** (sponges) कहलाते हैं। इस संघ के बहुकोशिकीय सदस्य उपजगत् **मैटाजोआ** की शाखा **पैराज़ोआ** (Parazoa) में आते हैं। शरीर की कोशिकाएँ विभेदित होती हैं, अत : इनका शरीर-गठन कोशिका स्तर का होता हैं। कोशिकाएं पृथक - पृथक कार्य करती हैं व इनमें समन्वयन (Coordination) का अभाव होता है। इनमें पाचन अन्तरकोशिकयि होता हैं।

जन्तु का शरीर **असममित** (asymmetrical) होता है तथा अनेक **ऑस्टिया** (Ostia) नामक छिद्रो से छिद्रित होती है जो शरीर में उपस्थित एक **नाल-तन्त्र** (canal system) में खुलते हैं।

शरीर को साधने के लिए प्राय : **अन्त : कंकाल** उपस्थित होता है जो छोटी - छोटी **कंटिकाओं** (spicules) अथवा **स्पंजिलिडी धागों** (sponging fibres) अथवा दोनों का बना होता है।

स्पंजों में जेम्यूल (Gemmules) के द्वारा अलैंगिक प्रजनन होता है। इनमें पुनरूद्भवन की क्षमता पाई जाती है। लैंगिक जनन शुक्राणु व अंडों के समेकन से होता है। निषेचन आंतीरक, परिवर्धन अप्रत्यक्ष, परिवर्धन में एम्फीवलास्टूला या पैरेंकाइमुला लारवा (Amphiblastula or Parenchymula larva) बनता हैं।

पॉरीफ़ेरा की करीब 5000 जातियाँ ज्ञात हैं जो प्राय : सभी समुद्रों में पायी जाती हैं। केवल एक कुटुम्ब **स्पजिलिडी** (Spongillidae), (उदाहरण - **स्पोंजिला** (Spongilla) 1 के सदस्य अलवणीय जल (fresh water) में पाये जाते हैं।

9.4.2 पोरीफेरा का वर्गीकरण (Classification of Porifera)

इस संघ के वर्गीकरण का प्रमुख आ धार अन्त : कंकाल की संरचना होती है। इसे तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है :

1. **वर्ग केल्केरिया (Class Calcarea) -** इस वर्ग के सदस्यों में अन्त : कंकाल बनाने वाली कंटिकाएँ (spicules) **कैल्सियम कार्बोनेट** (calcium carbonate) की बनी होती हैं। नाल तन्त्र सरल, ऐस्कॉन या साइकॉन (Sycon) प्रकार का। स्पन्जोसील (Spongocoel) का भीतरी स्तर कीप कोशिकाओं (Choanocytes) से आच्छादित होता है। उदाहरण - साइकन = स्काइफ़ा (Sycon = Scypha) तथा ल्यूकोसो लेनिया (Leucosolenia)।

2. **वर्ग हैक्जेक्टिनेलिडा** (Class Hexactinellida) - इस वर्ग के सदस्यों में अन्तःकंकाल बनाने वाली पारदर्शक कंटिकाएँ (spicules) **सिलिका** (silica) की बनी होती हैं तथा काँच के समान चमकदार होती हैं। प्रत्येक कंटिका में प्राय: 6 भुजाएँ होती हैं। नाल तन्त्र जटिल ल्यूकॉन (Leucon) प्रकार का होता है तथा कीप कोशिकाऐं केवल अंगुलाकार कक्षों तक ही सीमित होती है। उदाहरण- **यूप्लैक्टेला** (Euplectella), **हाइलोनीमा** (Hyalonema)।

3. **वर्ग डिमोस्पंजी** (Class Demospongiae) - इस वर्ग के कुछ सदस्यों में कंकाल स्पंजिन धागों (spongin fibres) तथा कुछ में स्पंजिन धागों एवं सिलिका की बनी कंटिकाओं का बना होता है। कुछ सदस्य-स्पंजों में अन्तःकंकाल अनुपस्थित होता है। नाल तन्त्र जटिल रैगॉन (Rhagon) प्रकार का होता है। उदाहरण-**यूस्पोंजिया** (Euspongia) अर्थात स्नान-स्पंज (bath sponge), अवलणीय स्पंज **स्पोंजिला** (Spongilla)।

9.4.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण

(Habits , Habitat and External Characters)

(i) साइकन (Sycon)

वर्गीकरण (Classifications):

संघ - **पॉरीफैरा** (Phylum - Porifera)

वर्ग - **केल्केरिया** (Class - Calcarea)

गण - **हिटरोसीला** (Order - Heterocolea)

श्रेणी - **साइकॉन** (Genus - Sycon)

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat):

यह निवही, स्थानबद्ध, छोटे परिमाण की समुद्री स्पन्ज तट के निकट किसी आधार-वस्तु जैसे चट्टान आदि से संलग्र पायी जाती है। यह विश्व व्यापी है तथा इसकी अनेक जातियाँ ज्ञात है। इसकी मुख्यजाति साइफा कोरोनेटा (Schypa coronata) है।

विशेष लक्षण

यह एक **निवही** (colonial) जीव है तथा इसका शरीर कई छोटे परिमाण के नलाकार स्तम्भों (cylindrical columns) का बना होता है। सारे स्तम्भ अपने निचले हिस्सों से एक दूसरे से जुड़े होते हैं। निवह के स्तम्भ 15 से 30 कम तक लम्बे होते हैं। प्राणि की देह असंख्य **ऑस्टिया** नामक छिद्रों से छिद्रित होती है। देह-भित्ति दलित होकर अन्तर्वाही नलिकाओं (incurrent canals) तथा कई अरीय नलिकाओं (radials canals) में विभेदित होती है। ऑस्टिया अन्तर्वाही नलिकाओं में खुलते हैं। अन्त में अरीय नलिकाएँ एक **बड़ी स्पंजोसील** (spongocoel) नामक देह-गुहा में खुलती हैं जो शरीर के हर स्तम्भ के मध्य में अन्तःस्थित होती हैं। स्पंजोसील गुहा शरीर के ऊपरी स्वतन्त्रा अन्त पर उपस्थित एक अपेक्षाकृत बड़े **ऑस्कूलम** (osculum) छिद्र द्वारा बाहर की ओर खुलती है। इस प्रकार के नलिका - संस्थान को **साइकन प्रकार** (sycon type) का नलिका - संस्थान कहते हैं। साइकन का लार्वा **एम्फीब्लास्ट्रुला** (amphiblastula) कहलाता है।

जल प्रवाह:

ऑस्टिया ⟶ अन्तर्वाही नाल ⟶ प्रोसोपाइल ⟶ अरीय नाल ⟶ एपोपाइल

बाहर ⟵ ऑस्कूलम ⟵ स्पोन्जोसील ⟵

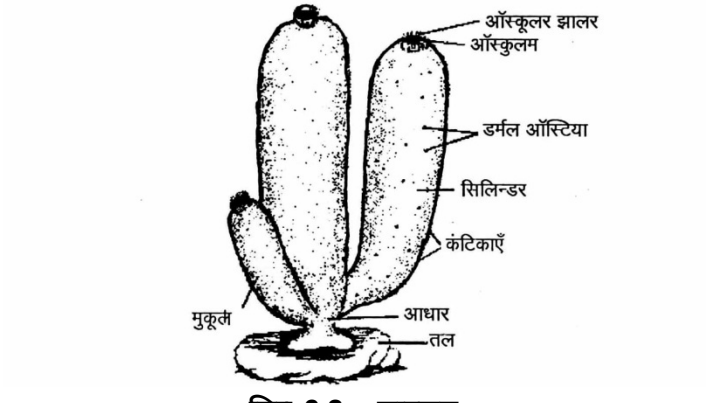

चित्र 9.3 : साइकन

9.5 संघ - सीलेन्ट्रेटा (Phylum - Coelenterata)

9.5.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

इस संघ के सदस्य बहुकोशीय तथा **अरीय सममित** (radially summetrical) होते हैं तथा शाखा **यूमैटाज़ोआ** (Eumetazoa) की कोटि **रेडिएटा** (Radiata) में आते हैं। इनका शरीर **कोशिका - ऊतकयि स्तर** (Cell - Tissue grade) का होता है।

ये **द्विस्तरीय कोशिकीय** (diploblastic) प्राणी होते हैं क्योंकि इनकी देह-भिति (body wall) बाहरी **एक्टोडर्म** (ectoderm) तथा भीतरी **एण्डोडर्म** (endoderm) स्तरों की बनी होती है। एक्टोडर्म तथा एण्डोडर्म के बीच एक अकोशिकीय (noncellular) **मिजोगलिया** (mesoglea) नामक जैली-सदृश्य पर्त होती है जो उपरोक्त दोनों कोशिकीय स्तरों को परस्पर जोड़ने का काम करती है।

देह-भित्ति (body - wall) एक **सीलेन्ट्रॉन** अर्थात् **जठरवाहिनी गुहिका** (coelenterons or gastrovascular cavity) को घेरे होती है। यह गुहिका केवल एक छिद्र अर्थात् मुख (mouth) दारा बाहर को खुलती है।

प्राणियों का मुख प्राय : धागे - समान कई **स्पर्शकों** (tentacles) से घिरा होता है।बाहरी एक्टोडर्म स्तर पर विशेष प्रकार की दंश कोशिकाएँ, जिन्हें निमैटोब्लास्ट (nematoblast) कहते है ,उपस्थित होती है। ये भोजन पकड़ने अथवा रक्षा करने के हेतु होती है।

इस संघ के सदस्यों में **द्विरूपता** (dimorphism) पायी जाती है तथा कुछ सदस्य **बेलनाकार** अर्थात् **पॉलिप प्रकार** (poly type)तथा कुछ सदस्य **तश्तरी समान** अर्थात् **मैड्यूसा प्रकार** (medusa type) के होते हैं। कुछ सदस्यों के जीवन-चक्र में दोनों पॉलिप एवं मैड्यूसा रूप पाये जाते हैं।

इनके शरीर में तंत्रिका जाल (Nerve net) पाया जाता है। पाचन बाहय कोशिकीय (Extra-cellular) व अन्तरा कोशिकीय (Intra cellular) प्रकार का होता है।

अलैंगिक जनन मुकुलन (Budding) द्वारा होता है। पुनरूद्भवन की क्षमता पाई जाती है। लैंगिक प्रजनन में प्लैनूला (Planula) लारवा पाया जाता है। इनके जीवन वृत्त में पीढ़ी एकान्तरण (Alternation of generation) पाया जाता है जिसे मेटाजिनेसिस (Metagenesis) कहते हैं।

सीलन्ट्रेटा की करीब 10,000 जातियाँ ज्ञात हैं, जो प्राय: सभी समुद्रों में पायी जाती हैं। कुछ अलवण-जल (fresh water) में भी मिलती हैं।

9.5.2 सीलेन्ट्रेटा का वर्गीकरण (Classification of Coelenterata)

जीवन-चक्र में प्रमुख प्ररूप के आधार पर इस संघ को तीन वर्गो में बाँटा जाता है:

1. **वर्ग-हाइड्रोज़ोआ (Class Hydrozoa) -** इस वर्ग के अधिकांश प्राणियों में दोनों **पॉलिप** एवं **मैड्यूसा** रूप मिलते हैं। जीवन-चक्र 'में इन दो रूपों का **पीढी-एकान्तरण** (Alternation of generation) होता रहता है। पॉलिप-अवस्था में प्रजनन अलैंगिक प्रकार '(asexual reproduction)तथा मैडयूसा-अवस्था में प्रजनन लैंगिक प्रकार (sexual reproduction) का होता है। मीजोग्लिया (Mesoglea) में कोशिकाओं का अभाव व ग्रसनी (Pharynx) व आन्त्र योजनियों

(Mesenteries) का अभाव होता है। उदाहरण : **हाइडा** (Hydra), **ओबीलिया** (Obelia), **फ़ाइसेलिया** (Physalia), **मिलीपोरा** (Millepora), **वलेला** (Vellela)।

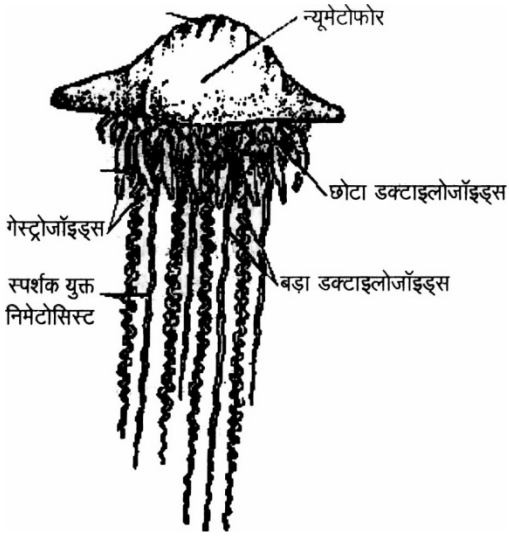

चित्र से. 4. फाइसेलिया

2. **वर्ग-स्काइफोजोआ (Class - Scyphozoa) -** इस वर्ग के सदस्यों का मुख्य रूप तश्तरी अथवा कटोरी-रूपी **मेड्यूसा** (medusa) होता है तथा पोलिप प्राय: अनुपस्थित अथवा बहुत ही अविकसित होता है, क्योंकि इन प्राणियों में मीजोग्लिया की मात्रा बहुत अधिक होती है, इसलिए यह जैली - समान होते हैं, अत : इन्हें जैली - मीन (Jelly - fishes) भी कहते हैं। इनमें वास्तविक वीलम के स्थान पर वेलेरियम (Velarium) होता है तथा ज्ञानेन्द्रियां (Tentaculocysts) उपस्थित होते है उदाहरण : **ऑरीलिया** (Aurella)।

3. **वर्ग - एनथोज़ोआ (Class - Anthozoa) -** इस वर्ग के सदस्यों का मुख्य रूप बेलनाकार **पॉलिप** (Polyp) हो ता है। जीव न - चक्र में मैड़ सूसा रूप का अभाव होता है। पॉलिप की सीलेन्ट्रॉन गुहा कई अपूर्ण पट्टियों (incomplete mesenteries) द्वारा कोहों में बँटी होती है। अनेक सदस्य केल्सियम कार्बोनेट का कंकाल बनाते हैं जिसे कोरल (coral) अथवा समुद्री - झाग कहते हैं। समुद्र में ये प्राय : कॉलोनी (colony) बनाकर एक स्थान पर स्थानबद्ध रहते हैं। उदाहरण **समुद्री एनिमोन** (Sea Anemone - Adansia Sagarita) तथा अनेक प्रकार के **कोरल, जैसे** - फन्तिया, मेडीपोरा मीयेन्डीना कोरेलियम आदि। (Fungia , Madrepora , Meandrina , Corallium (Red coral)।

9.5.3 स्वभाव, वारा स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits , habitat and external Characters)

(i) ओबेलिया (Obelia)

वर्गीकरण (Classifications)

संघ - **सीलेन्ट्रेटा** (Phylum - Coelenterata)

वर्ग - **हाइड्रोजोआ** (Class - Hydrozoa)

गण - **हाइडॉयडिया** (Order - Hydroidea)

श्रेणी - ओबेलिया (Genus - Obelia)

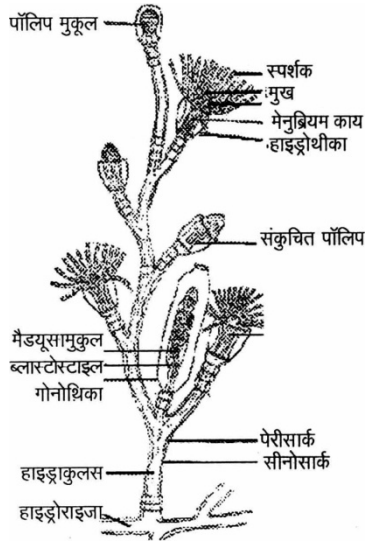

चित्र 9.5 ओबेलिया

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat)

यह सूक्ष्म वृक्ष -रूपी स्थानबद्ध निवही ,समुद्री - जल मे तट के निकट, किसी आधार - वस्तु से संलग्र पाया जाता है। यह विश्वव्यापी है तथा इसकी _ सामान्य जाति **ओबीलिया जैनीक्यूलेटा** (O.geniculata) है।

विशेष लक्षण (Special Characters)

ओबेलिया का शरीर वृक्ष - सदृश्य निवही एव नलिकाकार (Cylindrical) होता है तथा दो मुख्य भागों में बँटा होता है - क्षैतिज **देहांकुर** (stolon) जिन्हें **हाइडोराइजा** (hydrorhiza) कहते हैं तथा इससे निकले हुए अनुलम्ब **हाइड्रोकॉलस** (hydrocaulus) जो शाखान्वित होते हैं (चित्र 9. 5)। हाइड्रोराइजा द्वारा निवही किसी आधार वस्तु से लगा रहता है। हाइड्रोकॉलस के स्वतन्त्रा सिरों पर तीन प्रकार के जीवक (zooids) होते हैं - (i) **पोषक - जीवक** अर्थात् हाइड्रेन्थ (hydranth or polyp), (ii) **बलास्टोस्टाइल्स** (blastostyles), तथा (iii) **मैडयूसी** (medusae)। ब्लास्टोस्टाइल्स पर मैडयूसी लगे होते हैं तथा ये दोनों जीवक सम्मिलित रूप से **गोनेन्जियम** (gonangium) नामक रचना बनाते हैं। पोषक - जीवक या पॉलिप पोषण - कार्य (feeding) करते हैं और आकार में हाइड्रा के सामान होते हैं। **ब्लास्टोस्टाइला** पर **मैडयूसी** (अलैंगिक रूप से) बनते है। मैडयूसी की रचना छतरी के आकार की होती है जो स्वतन्त्रा रूप से तैरने वाला लैंगिक - जीवक होता है। इसके भी मुख तथा स्पर्शक होते हैं। मैडयूसी को **प्रजनन - जीवक** (reproductive zooid) भी कहते हैं, क्योंकि इसमें जनद (gonads) बनते हैं जो लैंगिक - प्रजनन के बाद अलैंगिक निवह (colony) को बनाते हैं। पूर्ण निवह क्यूटिकल के बने **पैरीसार्क** (perisarc) नामक पारद र्शक आवरण से ढका होता है।

9.6 संघ - प्लेटीहैल्मीन्धीज (Phylum - Playhelminthis)

9.6.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

इस संघ के सदस्य **बहु कोशीय** तथा **द्विपाशर्व सममित** (bilaterally symmetrical) होते हैं, अत : ये शाखा **यूमैटाज़ोआ** (Eumetazoa) की खण्ड **बाइलेटिया** (Bilateria) में आते हैं। प्राणियों में देह-गुहा (coelome) का **अभाव** होता है, अत : ये खण्ड बाइलेट्रिया की उपखण्ड - प्रोटोस्टोमिया (Protostomia) के विभाग **एसीलोमेटा** (Acoelomata) के अन्तर्गत आते हैं।

सघ के सदस्य **त्रिस्तरीय** (triploblastic) होते हैं तथा इनका **कोमल शरीर** (soft body) तीन **प्राथमिक जनन स्तरों** (primordial germinal layers) अर्थात् **एक्टोडर्म, मीज़ोडर्म** तथा **एण्डोडर्म** से बनता है।

संघ के सदस्यों में ऊतक के अलावा **अंग** तथा **अंग- तन्त्र** भी उपस्थित होते हैं, अत : इनका **शरीर गठन अंग- तंत्र स्तर** (organ system grade) का होता है।

इनमें स्पष्ट **सीलोम** अर्थात् **देहगुहा का अभाव** होता है तथा विविध आतराग **मीसेन्हाइम** नामक विशेष संयोजी ऊतक में धँसे रहते हैं। शरीर पर क्यूटिकल का मोटा आवरण होता है श्वसन अधिकतर अवायवीय, आहार नाल विकसित व शाखान्वित, (कुछ में अनुपस्थित) होती हैं। तंत्रिका तन्त्र सीढ़ीनुमा व गुच्छिकाओं (Ganglin) एवं तंत्रिकाओं (Nerves) का बना होता है।

संघ के सदस्यों में स्पष्ट पाचन, उत्सर्जी, तन्त्रिका एव जनन - तत्र पाये जाते हैं। उत्सर्जन विशेष प्रकार की ज्वाला **कोशिकाओं** (flames cells) द्वारा होता है। जीवन - चक्र प्राय : जटिल होते है। ये जन्तु द्विलिंगी (Hermaphrodite or Bisexual) होते हैं। जीवन चक्र में लारवा अवस्थाएं एक या कई पायी जाती है। जीवन वृन्त जटिल प्रकार का होता है।

संघ के सदस्य पृष्ट - अधर अक्ष (dorso - ventral axis) से चपटे होते हैं इसलिए इन्हें साधारणत : **चपटे-कृमि** (flat worms) की सज्ञा दी जाती है। सघ में करीब 10, 000 जातियाँ आती हैं जिनमें से अधिकाश पृष्टवशियो (vertebrates) में परजीवी (parasite) होती हैं।

9.6.2 प्लेटीहैल्मीन्थीज का वर्गीकरण (Classification of Platyhelminthes)

पाचन- तत्र (digestive system), शरीर पर रोमाभ (cilia) आदि के आ धार पर संघ को तीन वर्गों में बाँटा जाता है:

1. **वर्ग - टर्बेलेरिया (Class Turbellaria) -** इस वर्ग के अधिकाश जन्तु **स्वतंत्र- जीवी** (free living) होते हैं जो स्वच्छ जल व समुद्री जल में पाये जाते हैं; कुछ सदस्य बाह्य परजीवी (external parasites) भी होते हैं। देह - भित्ति की एपीडर्मल कोशिकाएँ रोमाभी अर्थात् सीलिया - युक्त (cilliated) होती हैं जिनकी सहायता से ये रेंगते हैं। इसके अतिरिक्त देह-भित्ति में शलेष्मी ग्रन्थिल कोशिकाए (mucous gland cells) भी होती हैं जो प्राणी को लसदार बनाये रखती हैं। मुखद्वार अधर-तल एव शरीर के दोनों सिरों से दूर स्थित होता है। आहार नाल अल्प विकसित एव पुनरूद्भवन की अद्भुत क्षमता होती है। उदाहरण - **डुगेसिया = प्लैनेरिया** (Dugesia - Planaria)।

2. **वर्ग - ट्रैमेटोडा (Class - Trematoda) -** इस वर्ग के सदस्य बाह्य अथवा अन्त : परजीवी (External or internal parasites) होते हैं। देह-भित्ति पर रोमाभ अर्थात् सीलिया

(cilia) का अभाव होता है परन्तु एक मोटा एव प्रतिरोधक (resistant) क्यूटिकल (cuticle) का आवरण उपस्थित होता है। पोषक (host) को मजबूती से पकड़ने के लिए इनके अधर - तल तथा मुखद्वार को घेरे आग्र सिरे पर चूषक उपस्थित होते हैं। मुखद्वार अगले सिरे पर होता है। पाचन - तत्र (digestive system) विकसित होता है। जीवन चक्र एक या अधिक पोषकों में पूर्ण होता है। उदाहरण फैसिओला (Fasciola) अर्थात यकृत - कृमि, सिस्टोला (Schistosoma) अर्थात एक - कृमि।

3. **वर्ग - सैस्टोडा (Class - Cestoda) -** इस वर्ग के सभी सदस्य अन्त : परजीवी (internal parasites) होते हैं। प्राय : सभी सदस्यों का आकार लम्बा चपटा फीते के समान होता है, अत : इन्हें **फीता- कृमि** (tape - worm) भी कहते हैं। देह अनेक खण्डों (segments or proglottids) में बँटी होती है। देह के अग्र सिरे पर पोषक (host) से चिपकने के लिए अक तथा हुक्स (suckers and hooks) उपस्थित होते हैं। इनमें मुखद्वार नहीं होता है क्योंकि पाचन तंत्र का पूर्ण अभाव होता है। देह भित्ति पर सीलिया (cilia) का अभाव होता है तथा यह एक्) क्यूटिकल के मोटे आवरण से ढकी होती है। देह के प्रत्येक खण्ड अथवा प्रोग्लॉटिड (proglottid) में एक्? या दो पूर्ण द्विलिंगी (bisexual) जनन तन्त्र उपस्थित होता है जीवन - चक्र एक या अधिक पोषको में सम्पन्न होता है। उदाहरण **टीनिया** (Taenia), **इकाइनोकोकस** (Echinococcus)।

9.6.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण

(Habits, Habitat and External Characters)

(i) फैसिओला (Fasciola)

वगीकरण (Classification):

संघ - **प्लेटीहेल्मिन्थीज** (Phylum - Platyhelminthes)

वर्ग - **ट्रिमेटोडा** (Class - Trematoda)

गण - **डाइजिनिया** (Order - Digenea)

श्रेणी - **फैसिओला** (Genus - Fasciola)

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat):

फैसिओला हिपैटिका (Fasciola hepatica) - यह एक द्विपोषी (Digenetic) परजीवी है जिसमें से पहला प्राथमिक (Primary) परपोषी कशेरूकी होता है तथा द्वितीयक (Secondary) परपोषी अकशेरूकी होता है। परजीवी भेड़, गाय व भैंस की पित्त वाहिनी में (bile duct) जाता है। यह परजीवी किन्हीं मनुष्य, खरगोश व कंगारू में भी देखा गया है। फैसियोला हिपेटिका के लिए प्राथमिक परपोषी भेड़ तथा द्वितीयक परपोषी स्वच्छ जलीय गैस्टोपोड पाइला होता है।

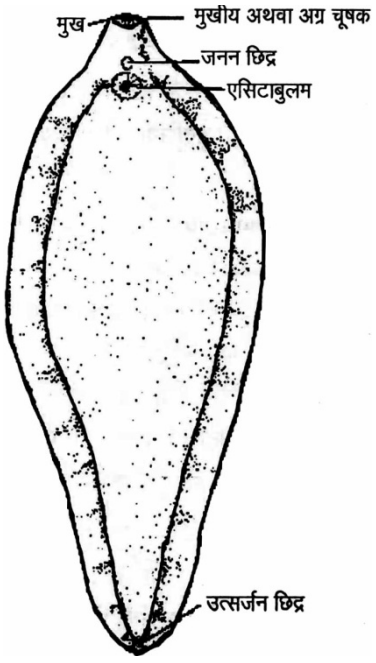

चित्र 96 : कैसिओला

विशेष लक्षण:

शरीर चपटा एवं पत्ती के आकार का होता है जो लगभग 25 से 35 गण लम्बा होता है (चित्र 96)। शरीरका अग्र त्रिकोणीय भाग **शीर्ष पिण्ड** (head lobe) कहलाता है। **शीर्ष पिण्ड**के पीछे शरीर करीब एक तिहाई लम्बाई तक चौड़ा होता है, फिर पिछले दो तिहाई भाग में सकरा होता जाता है। शरीर पर दो **चूषक** होते है। **अग्र मुखीय चूषक** (oral sucker) मुख को घेरे होता है। दूसरा बड़ा चूषक **अधर चूषक** (ventral sucker) अथवा **एसिटाबुलम** (acetabulum) देह के अधर तल पर सिर के पीछे स्थित होता है। एसिटाबुलम के थोड़े आगे एक लैंगिक जनन-छिद्र या नॉन-कॉर्डेदस प्रारूपोंका **गोनोपोर** (gonopore) होता है। जनन काल के समय शरीर की ऊपरी सतह पर गोनोपोर के नीचे एक अस्थायी छिद्र प्रकट होता है इससे **लॉरर की नाल** (Laurers canal) बाहर निकलती है।

उत्सर्जन तथा परासरण नियमन **प्रोटोनेफ्रिडिया** द्वारा होता है, प्रोटोनेफ़िडिया बहुत सारी **ज्वाला कोशिकाओं** (flames cells) के बने होते हैं। यह प्राय: पशुओं में **लीवर** रॉट (liver rot) की बीमारी करता है। इसकी **जातियाँ** (species) ज्ञात हैं जो विशवभर मे पाई जाती हैं। इसका जीवन-चक्र जटिल होता है।

(ii) टीनिया (Taenia)

वर्गीकरण (Classifications) :

संघ - **प्लेटिहेल्मिन्थीज़** (Phylum - Platyhelminthes)

वर्ग - **सेसटॉइडिया** (Class - Cestoidea)

गण - **टिनॉइडिया** (Order - Taenoidea)

श्रेणी एवं जाति - टीनिया सोलियम (Genus and Species : Taenia solium)।

स्वभाव एवं वासस्थान (Habits and Habitat) :

यह एक अन्तःपरजीवी प्राणी है जो वर्टिब्रेट्स की आहार नाल में पाये जाते हैं। मनुष्य की आन्त्रा में **टीनिया सोलियम** (Taenia solium) जाति पायी जाती है। यह द्विपरपोषदीय (digenetic) है। यह परजीवी उन देशों के मनुष्यों में पाया जाता है जहाँ के लोग अध-पका सुअर का माँस खाते हैं क्योंकि टेप-वर्म अपने जीवन-चक्र का एक चरण सूअर की माँस पेशियों में बिताता है। अगर ऐसे दूषित सूअर का माँस मनुष्य द्वारा खाया जाय तो टेप-वर्म उस मनुष्य की आन्त्र में आकर लार्वा अवस्था चरण में बदल जाता है। इसका वितरण विश्वव्यापी है।

विशेष लक्षण:

शरीर पतला, चपटा व फीते के समान होता है और इसकी लम्बाई दो से तीन मीटर तक होती है। इसके शरीर का अग्र गोलाकार भाग करीब 1 तुम व्यास का होता है जो **स्कॉलेक्स** (scolex) कहलाता है। स्कॉलेक्स के पार्श्वो पर चार **चूषक** (suckers) होते हैं। स्कोलेक्स के ऊपरी सिरे पर **रॉस्टेलम** (rostellum) होता है, जिस पर कई छोटे-छोटे हुक्स (hooks) लगे रहते हैं। ये हुक्स 22 से 32 होते हैं एवं दो चक्रों में व्यवस्थित रहते हैं। अन्दर के चक्र के हुक्स लम्बे होते हैं तथा बाहर के छोटे। चूषक एवं हुक्म की सहायता से यह पोषद की आत्रा से चिपका रहता है। स्कॉलेक्स के पीछे एक पतली अविभाजित गर्दन होती है जिससे पंक्ति में लगे हुए लगभग 800 से 900 **देह-खण्ड** (proglottides) होते है। प्रत्येक प्रोग्लोटिड में पूर्णविकसित नर एवं मादा जननांग होते हैं आहार नाल पूर्णतया अनुपस्थित होती है। सबसे पीछे के खण्ड, **अण्ड-युक्त** (Gravid) होते हैं। ये खण्ड टूट-टूट कर अलग होते रहते हैं इस घटना को **प्रमोचन** (Apolysis) कहते हैं। यह भोजन को अपने शरीर की सामान्य सतह से अवशोषित करके सोखता है। इस परजीवी से मनुष्य के पेट में दर्द होता है, वह कमजोर भी होता जाता है। मनुष्य जो गाय माँस खाते हैं उनकी आंत्र में टीनिया सेजीनेटा पाया जाता है जिसकी लम्बाई 35 से 50 फीट तक होती है। इसके परिवर्धन में सिस्टीसर्कस (cysticercus) लार्वा पाया जाता है। व्यस्क कृमि तथा सिस्टीसर्कस लार्वा दोनों रोगजनक होते हैं।

वयस्क कृमि से होने वाले प्रभाव को टीनिएसिस (Taeniasis) कहते हैं तथा लार्वा. से होने वाले प्रभाव को सिस्टीसर्कोसिस (Cysticercosis) कहते हैं।

9.7 संघ - ऐस्केल्मिंथीज़ (Phylum - Aschelminthes)

9.7.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

इस संघ के सदस्य मैटाज़ोआ की शाखा **यूमैटाज़ोआ** की कोटि **बाइलेटीरया** में आते हैं क्योंकि ये बहुकोशिकीय एवं द्विपार्श्वसममित होते हैं। प्राणियों में देह-गुहा अर्थात् सीलोम (coelome) का अभाव होता है परन्तु वयस्कों के शरीर में मिथ्या-देहगुहा अर्थात्(स्यूडोसीलोम (Pseudocoelome) पायी जाती हैं, अत : इन्हें **उपकोटि स्यूडोसीलोमेटा** में रखा जाता है। यह स्यूडोसीलोम शिशु-अवस्था में उपस्थित मीसेनकाइम कोशिकाओं के समाप्त हो जाने पर बन जाती हैं तथा वास्तविक देह गुहा अर्थात् सीलोम की तरह यह मीसोडर्मी **पेरिटोनियल** कला द्वारा आस्तीरत नहीं होती है।

संघ के सदस्य **त्रिस्तरीय** (triploblastic) होते हैं तथा इनका शरीर **ऐक्टोडर्म, मीज़ोडर्म** तथा **ऐन्डोडर्म** नामक तीन प्रा थमिक स्तरों (Primordial germinal layers) द्वारा बनता है जो **अंग-तन्त्रों** में विकसित होते हैं।

इस संघ में 5 विभिन्न समूह सम्मिलित किये जाते हैं जिन्हें प्राय : संघों का दर्जा दिया जाता है। ये जन्तु समूह हैं. 1**रॉटीफेरा** (Rotitera), 2.**गैस्ट्रोट्राइका** (Gastrotricha), 3**काइनोरिका** (Kinorhyncha), 4. **निमैटोमॉरफा** (Nematomorpha) तथा 5 **निमैटोडा** (Nematoda)। प्रस्तुत वर्गीकरण में केवल संघ **निमैटोडा** एक वर्ग के रूप में सम्मिलित किया गया है।

9.7.2 ऐस्केल्मिन्थीज का वर्गीकरण (Classification of Aschelminthes)

संघ - निमैटोडा (Phylum Nematoda) - पुच्छीय ज्ञानेन्द्रियों (Caudal receptors), जिन्हे फैस्मिड (Phasmids) कहते है, के आधार पर संध निमैटोडा को दो वर्गों में बांटा गया हैं।

(1) **वर्ग - ऐफैस्मिडा** (Class - Aphasmida) पुच्छीय ज्ञानैन्द्रियां अनुपस्थित परन्तु पुच्छीय आसंजन ग्रंन्थियां (Caudal adhesive glands) पायी जाती हैं। उदाहरण डेस्मोस्कॉलेक्स (Desmoscolex)

(2) **वर्ग - फेस्मिडा** (Class - Phasmida) : फैस्मिड पाये जाते है। पुच्छीय आसंजन ग्रन्थियाँ अनुपस्थित, उत्सर्जी तन्त्र उपस्थित होता है। उदाहरण ऐस्केरिस (Ascaris)।

संघ के सदस्य- जन्तु लम्बे, पतले तथा बेलनाकार होते हैं, अत : इन्हें गोल-कृमि (round worms) की संज्ञा दी जाती है।

चित्र 9.7: ऐस्कौरिस

देह-भित्ति पर मोटी एवं कड़ी चमकदार क्यूटिक्ल (cuticle) का आवरण होता है। क्यूटिकल के नीचे स्थित एपिडर्मिस (epidermis) एक बहु केन्द्रीय सिन्सिटियल (syncitial) स्तर के रूप में होती है; एपिडर्मिस के नीचे अनुलम्ब पेशी तन्तुओं (longitudinal muscle fibres) की पर्त होती है।

इनमें आभासी देहगुहा (pseudocoel) होती है, जिसमें एक द्रव्य भरा होता है।

पाचन एवं जनन - तन्त्र आदि पूर्ण रूप से विकसित हो ते हैं। अधिकांश जन्तु प्राय : **एकलिंगी** (unisexual) होते हैं तथा इनमें **लैंगिक द्विरूपता** (sexual dimorphism) पायी जाती है।

निमैटोडा की लगभग 12, 000 जातियाँ ज्ञात हैं जिनमें कुछ **स्वतन्त्रा-जीवी** (free - living) होती हैं जो जल व गीली मिट्टी में पायी जाती हैं किन्तु अधिकांश अन्य जन्तुओं तथा पेड़पौधों पर

परजीवी हो ते हैं। उदाहरण : मनुष्य का गोल - कृमि अर्थात् **ऐस्कैरिस** (Ascaris), **एन्टेरोबियस** (Enterobius) आदि।

संघ ऐनिलिडा एवं निम्न वर्णित अन्य सभी संघों को यूमैटाज़ोआ की खण्ड **बाइलेटिया** एवं **विभाग यू - सीलोमेटा** के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

9.8 संघ ऐनेलिडा (Phylum - Annelida)

9.8.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

इस संघ के सदस्य **त्रिस्तरीय** (tri - ploblastic) द्विपार्श्वीय सममित यूमैटाजोअन्स होते हैं जिनका शरीर लम्बा व **कृमि-रूपी** (worm - like) होता है।

इनकी लम्बी देह **समखण्डो** में बँटी होती है तथा यह **विखण्डन** (segmentation) बाहर के अलावा भीतर की देह-गुहा में स्थित अन्तरांगों में भी उपस्थित होता है। इस प्रकार के विखण्डन को **अन्तरांगी समखण्डन** (metamerical segmentation) कहते हैं। इनमें शरीर संगठन अंग तन्त्र (Organ system) स्तर का होता है। 'देह पर पतले क्यूटिकल (cuticle) का आवरण होता है तथा काइटिन से बनी त्वचा में **सीटी** (setae) नामक **असंयुक्त गमनागक** (unjointed appendages) उपस्थित होते हैं।

देह-गुहा वास्तविक **सीलोम** (coelom) होती है क्योंकि यह गुहा मीसोडर्म (mesoderm) के आवरण अर्थात् **पेरीटोनियम** कला द्वारा आस्तीरत होती है।

देह-गुहा में **आहार-नाल** एक अन्त से दूसरे अन्त तक फैली होती है।

स्पष्ट एवं प्राय: **बन्द प्रकार** का रक्त **परिसंचरण तंत्र** (closed type of blood vascular system) पाया जाता है। श्वसन वर्णक **हीमोग्लोबिन** (Haemoglobin) या **एरिथ्रोक्रूएनिन** (Erythrocruonin) होता है। जो प्लाज्मा में धुला रहता है।

श्वसन अधिकांश प्राणियों में त्वचा तथा कुछ में **क्लोम** (gills) द्वारा होता है।

उत्सर्जन विशेष प्रकार की समखण्डी **उत्सर्गी नलिकाओं**, जिन्हें **नैफ्रीडिया** (nephridia) कहते हैं, द्वारा होता है।

तन्त्रिका-तंत्र **प्रमस्तिष्क** गुच्छकों (cerebral ganglia) द्वारा रचित ' 'मस्तिष्क' ' तथा इससे जुड़ी **दोहरी** एवं **अधरीय तंत्रिका रज्जु** (double ventral nerve cord) का बना होता है।

सदस्य **एकलिंगी** अथवा **द्विलिंगी** होते हैं तथा कुछ सदस्यों में **ट्रोकोफोर** (trochophore) नामक **लार्वा अवस्था** पायी जाती है।

संघ की करीब 15 ,000 जातियाँ ज्ञात हैं जो जल (समुद्र अथवा अलवण-जल) तथा गीली भूमि में पाये जाते हैं।

9.8.2 ऐनेलिडा का वर्गीकरण (Classification of Annelida)

इस संघ का वर्गीकरण सीटी (setae) तथा कुछ अन्य लक्षणों के आधार पर किया जाता है ताकि इसे चार वर्गों में बाँटा जाता है :

1. **वर्ग-पॉलिकीटा (Class - Polychaeta) -** इस वर्ग के सदस्य **समुद्री** होते हैं तथा तैरने अथवा गमन हेतु इनके खण्डों के पार्श्वों पर **पार्श्ववाद** अर्थात् **पैरापोडिया** (parapodia) के जोड़े लगे होते हैं। पार्श्वपाद पर दो या अधिक प्रकार के सीटी (setae) लगे होते हैं। देह का अग्र अन्त

सुस्पष्ट शीर्ष (head) में परिवर्तित होता है, जिस पर संवेदी स्पर्शक (tentacles), पैल्प (palps) तथा नेत्र उपस्थित होते हैं। क्लाइटेलम (Clitellum) अनुपस्थित होता है। ये एकलिंगी (unisexual) होते हैं तथा इनके जीवन-वृत्त में टोकोफ़ोर (trochophore) लारवा-अवस्था (larva stage) पायी जाती है। उदाहरण : **निऐन्थिस = नेरीस** (Neanthes = Nereis), **कीटॉप्टेरस** (Chaetopterus), **एरेनिकोला** (Arenecola)।

2. **वर्ग-ओलीगोकीटा (Class -sOligochaeta) -** इस वर्ग के सदस्य भूमि के नीचे, तालाब, झीलों तथा अन्य मीठे जलाशयों में पाये जाते हैं। इनमें पार्श्वपाद (parapodia) तथा स्पष्ट शीर्ष का अभाव होता है। सीटी जो केवल एक ही प्रकार के होते हैं, त्वचा में स्थित शूक-कोष (setal sacs) में पाये जाते हैं। नेत्र एवं स्पर्शक आदि नहीं होते हैं। ये द्विलिंगी होते हैं। देह के अगले भाग में चौड़े छल्ले रूपी क्लाइटेलम (clitellum) नामक ग्रन्थिल रचना होती है जो जनन-काल में कोकून (cocoon) बनाती है। इनके जीवन-वृत्त में लारवा-प्रावस्था (larva stage) का अभाव होता है।

उदाहरण : **केंचुआ = फेरीटिमा** (Pheretima) तथा **लम्ब्रिकस** (Lumbricus)।

3. **वर्ग-हिरूडीनिया (Class - Hirudinea) -** इस वर्ग के सदस्य समुद्र, अलवणीय जलाशयौ तथा गीली मिट्टी में पाये जाते हैं तथा रुधिरहारी (Sanguivorous) होते हैं। इन प्राणियों को सामान्यत: जोंक (leech) कहते हैं। ये बाह्य परजीवी (ectoparasites) होते हैं तथा प्राय: पृष्टवंशियों (vertebrates) के शरीर पर चिपक कर उनका रक्त चूसते हैं। इन प्राणियों में सीटी का अभाव होता है परन्तु चिपकने हेतु देह के दोनों सिरों पर चूषक (suckers) लगे होते हैं। देह 33 खण्डों की बनी होती है, परन्तु हर खण्ड कई छोटे उपखण्डों अर्थात् ऐनुलाई (annuli) में विभाजित होता है। ये द्विलिंगी होते हैं तथा कोकून (cocoon) बनाने हेतु इन पर एकं क्लाइटेलम (clitellum), अस्थायी, उपस्थित होता है। जीवन-वृत्त में लारवा-प्रावस्था का अभाव होता है। उदाहरण. **हिरूडीनेरिया** (Hirudinaria), **हिरुडो** (Hirudo)।

4. **वर्ग-आकीऐनेलिडा (Class - Archiannelida) -** इस छोटे आदिम (primitive) वर्ग के सभी सदस्य समुद्री होते हैं। प्राणियों की देह प्राय: छोटी होती है तथा बाहय समखण्डन (segmentation) स्पष्ट नहीं होता है परन्तु आन्तरिक विखंडन पूर्ण व स्पष्ट होता है। अग्र सिरे पर नेत्र तथा स्पर्शक प्राय: उपस्थित होते हैं। ये एक अथवा द्विलिंगी होते हैं तथा इनके जीवन-वृत्त में ट्रोकोफ़ोर (trochophore) लारवा-प्रावस्था पायी जाती है। उदाहरण : **पॉलीगॉरडियस** (polygordius)

9.8.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण

(Habits , Habitat and External Characters)

(i) नैरीज (Nereis)

वर्गीकरण (Classification)

संघ - **ऐनेलिडा** (Phylum - Annelida)

वर्ग - **पॉलीकीटा** (Class - Polychaeta)

गण - **इरेनिशया** (Order - Errantia)

श्रैणी - **निएन्थीस = नेरीस** (Genus Neanthes = Nereis)।

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat):

पहले **नेरीज़** (Nereis) तथा **निएन्थीज़** (Neanthes) दो पृथक श्रेणियाँ (genera) मानी जाती थी परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों ने इन दोनों श्रेणियों के सदस्यों को केवल एक श्रेणी के अन्तर्गत कर दिया है तथा **नेरीज़** के स्थान पर अब निएन्धीज नाम का प्रयोग किया जाता है। **निएन्थीज** की कई जातियाँ ज्ञात है एवं इनमें से मुख्य **नि. वाइरेन्स** (N. Virens) तथा **नि. डुमेरिली** (N. Dumerilli) हैं। सामान्य तौर पर **निएन्थीज को सीपी-कृमि** (clam - worm) अथवा बालू कृमि (sand worm) कहते हैं।

नेरीज़ एक **रात्रिचर** (nocturnal), **पर-भक्षी** (predacious) **समुद्री** (marine) प्राणी है जो विश्व के प्राय: सभी तटों के निकट **अन्तर-ज्वारीय क्षेत्र** (intertidal zone) में पत्थरों आदि के नीचे अथवा श्लैष्म-रेखित छोटे बिलों में पाया जाता है।

विशेष लक्षण :

कृमि रूपी देह लम्बी एवं संकरी परन्तु पृष्ट-अधर सतह से कुछ चपटी होती है। इसका शरीर प्राय: 100. से 45 पा। तक लम्बा तथा लगभग ½ cm. से 2 cm, तक चौड़ा होता है। शरीर का रंग हल्का हरा अथवा नीला होता है तथा कहीं-कहीं तेज बैंगनी, लाल एव नारंगी रग के धब्बे होते हैं।

नेरीज का शरीर सुस्पष्ट **शीर्ष** (head), कई समखण्डों से बँटा **धड़** (trunk) तथा अन्तिम **गुद-खण्ड** अर्थात् **पाइज़ीडियम** (anal segment or pygidium) का बना होता है।

1. **शीर्ष (Head)** शरीर के अग्र छोर पर उपस्थित **शीर्ष, पेरिस्टोमियम** (peristomium) तथा **प्रोस्टोमियम** (prostomium) नामक दो खण्डों का बना होता है। पेरिस्टोमियम देह का पहला खण्ड माना जाता है, क्योंकि इसके आधार-तलपर मुख (Mouth) उपस्थित होता है। प्रोस्टोमियम शरीर का **पूर्वखण्डीय भाग** (pre-segmental part) माना जाता है तथा पैरीस्टोमियम के अग्र पृष्ट किनारे से एक चपटी, त्रिकोणाकार प्लेट-रूपी रचना के समान निकला रहता हैं।

प्रॉस्टोमियम के पिछले भाग के पृष्टतल पर दो जोड़ी नेत्र तथा इसके अगले छोर पर एक जोड़ी प्रॉस्टोमियल स्पर्शक (prostomial tentacles) स्थित होते हैं। प्रॉस्टोमियम के ही अधर-पार्श्व भागों से एक जोड़ी मोटे पैलप्स नामक मांसल रचनाये आगे की ओर निकली रहती हैं। प्रॉस्टोमियम अपने पिछले अन्त द्वारा बड़े पैरीस्टोमियम से जुड़ा होता है।

पैरिस्टोमियम बड़ा एवं चौड़ा होता है परन्तु इस पर पार्श्वपादो (parapodia) का अभाव होता है। इसके अग्र-अधर अन्त पर तथा प्रॉस्टोमियम के नीचे एक अनुप्रस्थ दरार-रूपी (slit - like) **मुख** (mouth) उपस्थित होता है। पैरिस्टोमियमके अग्र भाग के प्रत्येक पार्श्व से **चार पैरिस्टोमियल रोमक** अर्थात् **सिराई** (peristomial cirri) निकले रहते हैं। प्रत्येक पार्श्व जोड़ी का एक सदस्य पृष्टिय (dorsal) होता है तथा उसके नीचे स्थित दूसरा सदस्य **अधरीय** होता है।

2. **धड़ (Trunk) :** शीर्ष के पीछे का लम्बा समखण्ड-युक्त लम्बा भाग धड़ कहलाता है। धड़ लगभग 80 से 200 प्राय: एक ही आकार के **सम-खण्डों** (segments) में बँटा होता है। प्रत्येक समखण्ड की पार्श्व दिशाओं में एक-एक पार्श्वपाद स्थित होता है। अर्थात् धड़ के प्रत्येक समखण्ड में एक जोड़ी पार्श्वपाद होते हैं।

पार्श्वपाद (Parapodium) पार्श्वपाद त्वचा के बने अग्र एव पश्च दिशाओं से चपटे चप्पू-रूपी (paddle - like) रचनायें होती हैं जो सम-खण्डों से पार्श्व **अधिवृद्धियों** (lateral outgrowths) की तरह निकली रहती है।

प्रत्येक पार्श्व पाद का दूरस्थ अंत (distal end) दो **पिण्डों** (lobes) में अर्थात् पृष्ठ तथा अधर पिण्डों में बँटा होता है। पृषठ पिण्ड को **नोटोपोडियम** (notopodium) तथा अधर-पिण्ड को **न्यूरोपोडियम** (neuropodium) कहते हैं।

3. **गुद-खण्ड अर्थात् पाइजीडियम** (Anal segment or Pygidium) : शरीर के अन्तिम एव सबसे छोटे खण्ड को **गुद खण्ड** (anal segment) कहते हैं। इसमें पार्श्वपादो का अभाव होता है तथा इस पर एक **छोटी गुदा** (anus) स्थित होती है। गुदा के अतिरिक्त इसके पश्च अत से एक जोड़ी पार्श्वीय स्पर्शक-रूपी संवेदांग निकले रहते हैं जिन्हें **गुद-रोमक** (anal cirri) कहते हैं। इसकी सतह से कई **सूक्ष्म संवेदी-अंकुर** (sensory papillae) निकले रहते हैं। गुद-खण्ड को शरीर का खण्डोतर भाग (Post - segmental) माना जाता है तथा इसे पाइजीडियम (Pygidium) की संज्ञा दी जाती है। इसका लार्वा टोकोफोर होता है।

(ii) हीरूडीनिया (Hirudinaria)

वगर्किरण (Classifications) :

संघ - एनेलिडा (Phylum - Annelida)

वर्ग - हिरुडीनिया (Class - Hirudinea)

गण - नैथोव्हैलिडा (Order - Gnathobdelida)

श्रेणी - हीरूडीनेरिया (Genus - Hirudinaria)।

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat):

जोंक एक सामान्य **बाह्य परजीवी** है जो अलवणीय जल जैसे ताल, तालाब, नदियों में वास करता है। ये उभयलिंगी होते हैं परन्तु परनिषेचन करते हैं। यह मवेशी आदि स्तनियों के रक्त का शोषण करता है। इसे रूधिरहारी (sanquivorous) कहते हैं। मुख्य भारतीय जाति **हीरुडीनेरिया ग्रेन्लोसा** (Hirudinaria granulosa) है।

विशेष लक्षण:

देह बेलनाकार तथा अत्यन्त लचकदार (elastic) होती है जो लगभग 10 से 30 cm लम्बाई में होती है शरीर 33 खण्डों में विभाजित रहता है जिन्हें विखंड (Metameres) कहते हैं प्रत्येक विखंड (Metameres) में फिर वलय (Annuli) पाई जाती हैं। पाँच वलयों वाला विखंड पूर्ण होता है तथा इसे पंचवलयी कहते हैं। पृष्ट से यह गहरे हरे एवं नीचे से भूरे व पीले रंग की होती है। देह का अग्र भाग सकरा तथा पिछला भाग चौड़ा होता है। शरीर के दोनों छोरों पर चिपकने के लिए एक - एक **चूषक** (sucker) उपस्थित हो ता है। **पश्च - चूषक** बड़ा एवं गोल होता है परन्तु **अग्र - चूषक** (anterior sucker) छोटा होता है तथा मुख हो घेरे होता है। मुखद्वार पर तीन आरी - समान अर्धचन्द्राकार **जबड़े** (jaws) स्थित होते हैं जो **परपोषी** (host) की त्वचा को काटने का कार्य करते हैं। जोंक में सुस्पष्ट सिर का अभाव होता है तथा केवल पाँच जोड़ी नेत्र अग्र भाग के पृष्ट तल पर स्थित होते हैं। **गुद - छिद्र** (anus) पश्च चूषक के पृष्ट तल पर खुलता है। जनन के समय कोकून का निर्माण होता है। पिछली सदियों में वैद्य, हकीम आदि, रोगी को स्वस्थ करने हेतु जोंक को रोगी का **"खराब" रक्त निकालने** के काम में लाते थे।

9.9 संघ - आर्थ्रोपोड़ा (Phylum - Arthropoda)

9.9.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

इस संघ के सदस्य **त्रिस्तरीय** (Triblobl stic), **द्विपाशवर्यि** एव **सीलोमेट यूमैटाज़ोअन्स** (Eumetazoa) हो ते हैं तथा इनका शरीर भी एनेलिडा के भाँति विखण्डी राप से **खंडित** (Metamerically segmented) होता है।

शरीर प्राय : सिर, वक्ष व धड़ में विभाजित, आदर्श रूप रवे प्रत्येक खण्ड पर एक जोड़ी **संधियुक्त उपांग** (jointed appendages) पाये जाते हैं।

पूर्ण शरीर, एक कठोर एवं दृढ़ **बाह्यकंकाल** (exoskeleton) से ढका होता है जो **काइटन-युक्त क्यूटिकल** (Chitinous cuticle) का बना होता है।

हीमोलिष्फ रो भरी हुई गुहा, **हीमोसील** (Haemocoel) कहलाती है क्योंकि इसमें रक्त भरा होता है। इस प्रकार के रक्त परिवहन तन्त्र को **खुला रक्त पीरसंचरण तन्त्र** (open type of blood vascular system) कहते हैं।

श्वसन प्राय : विशिष्ट अंग अर्थात् **क्लोम** (gills), **ट्रेकिया** (trachea) अथवा पुस्तक **फुफ्फुस** (book- lungs) द्वारा होता है। उत्सर्जन मैल्पीघी नलिकाओं (Malpighian tubules) अथवा ग्रीन ग्रन्थियों Green glands) के द्वारा होता है।

तंत्रिका- तंत्र एनेलिडा जैसा ही होता है जो शीर्ष में स्थित मस्तिष्क तथा इससे जुड़ी लम्बी मध्य-अधर रेखा पर स्थित दोहरी तंत्रिका - रखु (nerve cord) का बना होता है।

प्राय : संघ के सदस्य एकलिंगी होते हैं तथा इनमें **लैंगिक द्विरूपता** (sexual dimorphism) स्थ्यी-। जाती है।

अधिकाश जन्तुओं के जीवन -वृत्त में एक या अधिक **लार्वा प्रावस्थाएँ** (larval stages) पायी जाती हैं जिनके **रूपान्तरण** (metamorphosis) से ये वयस्क में परिवर्तित होते हैं।

इस संघ की करीब 10 लाख जातियाँ ज्ञात हैं तथा ये मिलकर प्राणि- जगत 90 प्रतिशत भाग बनाती हैं। ये जातियाँ संसार के हर भाग एवं कोने में मिलती हैं तथा कई जातियों का मनुष्य से गहरा आर्थिक सम्बन्ध रहता है।

9.9.2 आर्थोपोड़ा का वर्गीकरण (Classification of Arthropoda)

इस संघ का वर्गीकरण शरीर के आकार, विखण्डन तथा श्वसन- अंग आदि पर आधारित होता है। इस संघ को 6 उपसंघों (subphyla) में बाँटा जाता है।

I. उपसंघ ओनिकोफ़ोरा (Subphylum Onychophora)

उपसंघ के सदस्य छोटे, पतले तथा कृमि रूपी (worm- like) होते हैं जो भूमिगत होते हैं। देह स्पष्ट रूप से विखण्डित एवं क्षेत्रों में विभेदित नहीं होती है। पाशर्व में 15 से 44 जोड़ी असंधियुक्त (nonjointed) ढूँठ के समान पाद होते हैं। अग्र- अन्त अर्थात् शीर्ष पर मुख एव सेयुक्त नेत्र तथा छोटे ऐन्टिनी के जोड़े होते हैं। श्वसन टेकिया (trachea) द्वारा होता है। उत्सर्जन वृक्ककों (Nephridia) द्वारा होता है। उदाहरण : **पेरीपेटस** (peripatus)। (इसे आर्थोपोडा व ऐनेलिडा के बीच की योजक कड़ी मानते हैं)

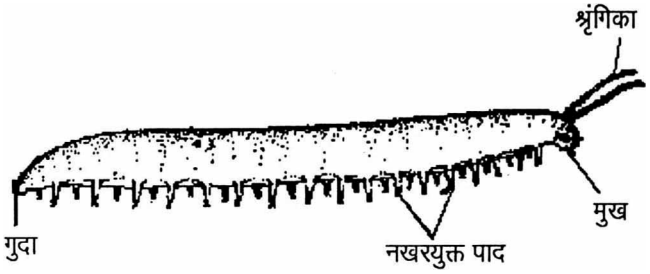

चित्र 9.8 पेरीपेटस

II. उपसंघ चेलीसिरेटा (subphylum Chelicerata)

देह दो क्षेत्रों अर्थात **शिरोवक्ष** (cephalothorax) जो शीर्ष (head) तथा वक्ष (thorax) के समेकन से बनती है तथा **उदर** (abodomen) में बँटी होती है। शिरोवक्ष पर एक जोड़ी लम्बे पजेदार (clawed) चेलीसीरी (chelicerae), एक जोड़ी पेडीपेल्प (padipalps) तथा 4 जोड़ी संधियुक्त गमन हेतु पाद (walking legs) उपस्थित होते हैं। स्पर्शक अर्थात् श्रगिकायें एवं वास्तविक मेण्डिबल (जबड़ों) का अभाव होता है। उत्सर्जन कॉरूरल (Coxal) कोशिकाओं या मैल्पीघी नलिकाओं (Malipgian tubules) के द्वारा होता है।

श्वसन क्लोम (gills), पुस्तक फुफ्फुस (lungs - books) अथवा टेकिया (trachea) तारा होता है। इस उपसंघ को तीन वर्गों में बाँटा जाता है.

1. **वर्ग मीरोस्टोमैटा (Class Merostomata) -** ये समुद्र में पाये जाते हैं तथा इनमें श्वसन क्लोम (gills) द्वारा होता है जो उदर पर स्थित 5 - 6 जोड़ी उपांगों से लगे होते हैं। पुच्छ खण्ड (telson) उपस्थित होता है। उदाहरण : **जिफ़ोसुरा = लिम्यूलस (Xiphosura = Limulus चित्र 9.9)।**

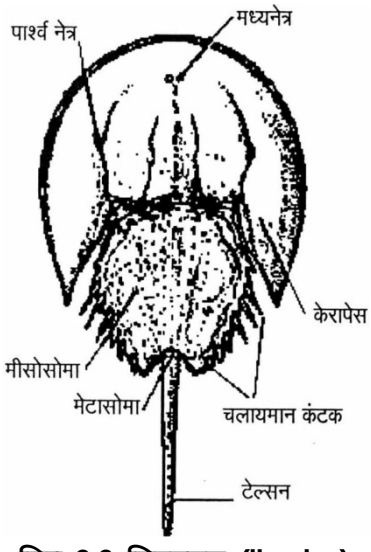

चित्र 9.9 लिम्यूलस (limulus)

2. **वर्ग एरैक्नीडा (Class Arachnida) -** अधिकांश सदस्य भूमि पर पाये जाते हैं तथा श्वसन पुस्तक फुष्फुस (lunga books) अथवा ट्रेकिया (trachea) द्वारा होता है। उदर उपांग - रहित होता है। उदाहरण : **बिच्छू = पैलैमिनयस** (Palamnaes), **मकड़ी** (spiders), **किलनी** (tick), **चिचड़ी** (mite)।

3. **वर्ग पिक्नोंगोनिडा (Class Pccnogonida) -** ये ' मकड़ियाँ ' (sea - spiders) समुद्र में पायी जाती हैं। इसके शिरोवक्ष का अग्र- अन्त शुण्ड (proboscis) जैसा होता है तथा इस पर चूषक- रूपी मुख (suctorial mouth) उपस्थित होता है। पाद (legs) अत्यन्त लम्बे होते हैं। उपांग - रहित उदर अत्यन्त सूक्ष्म होता है। उदाहरण : **निस्फॉन** (Nymphon)।

III. उपसंघ मैनडीबुलेटा (Subphylum Mandibulata)

देह दो अथवा तीन क्षेत्रों अर्थात् **शिरोवक्ष** एवं **उदर** अथवा **शीर्ष वक्ष** एवं **उदर** में बँटी होती है। शीर्ष पर एक या अधिक जोड़ी श्रीगिकायें (antennae), एक जोड़ी मेण्डिबल्स (mandibles) तथा प्राय : दो जोड़ी मैक्सिले (maxillae) सदैव पाये जाते हैं। श्वसन क्लोम अथवा ट्रेकिया द्वारा होता है। यह उपसंघ **पाँच वर्गों** में बाँटा जाता है :

1. **वर्ग क्रस्टेशिया (Class Crustacea) -** अधिकांश सदस्य जलीय (aquatic) होते हैं जो समुद्र अथवा मीठे जल में पाये जाते हैं। देह **शिरोवक्ष** अर्थात् सिफ़ैलोथारैक्स (cephalothorax) तथा उदर (abdomen) में बँटी होती है। सिर पर 2 जोड़ी श्रगिकायें (antennae), 1 जोड़ी मैण्डिबल्स (mandibles) तथा 2 जोड़ी मैक्सिली (maxillaae) उपस्थित होते हैं। बाह्य ककाल बहुत कठोर होता है जो काइटिन तथा कैल्शियम कार्बोनेट (calcium carbonate) के संयोजन से बना होता है। श्वसन क्लोम (gills) द्वारा होता है। उपांग द्विशाखित (Biramous) होते हैं तथ उत्सर्जन कॉक्सल ग्रंथियां या ग्रीन ग्रंथियों (Coxal glands or Green glands) द्वारा होता है। उदाहरण - **झींगा** अर्थात **प्रॉन** (prawn = palaemon), **केकड़े** (crabs, eg cancer) आदि।

2. **वर्ग इनसैक्टा (Class Insecta) -** कीट वर्ग के सदस्यों की देह तीन क्षेत्रों अर्थात् शीर्ष, वक्ष तथा उदर में बँटी होती है। शीर्ष पर नेत्र एवं मृंगिकायें (Antennae) की जोड़ी तथा मुखांग (mouth) उपस्थित होते हैं। आदर्श रूप से व क्ष पर तीन जोड़ी संधियुक्त पाद एवं दो जोड़ी पंख पाये जाते हैं। ये जल, थल तथा वायु में पाये जाते हैं। इनमें श्वसन ट्रेकिया (trachea) द्वारा होता है। उदाहरण - **तिलचट्टा** (periplantae), **मक्खी** (Musca), **मच्छर** (Anopheles or Culex), **मधुमक्खी** (Apis) आदि।

3. **वर्ग डिप्लोपोडा (Diplopoda) :** शरीर लम्बा व उदर में 20 से 100 खण्ड तक पाये जाते है। एक जोडी एन्टिना (Antennae), एक जोडी मैंडिबल (madible) व एक जोडी मैक्सिला (Maxillliae)पायी जाती है।

प्रत्येक वक्ष खण्ड में एक व उदर खण्ड पर दो जोडी टांगें हो ती है। उदाहरण - मिलीपीड (Millipede), जुलुस (Julus)।

4. **वर्ग चीलोपोडा (Class Chilopoda) :** इन सथलीय जन्तुओं का शरीर चपटा व 15 से 173 खण्डो में विभक्त होता है। शरीर सिर व धड में विभक्त। सिर पर एक जोडी एन्टिना, एक जोडी मैडिबल व एक जोडी मैं मैक्सिला होती है। प्रत्येक शरीर खण्ड में एक जोडी टागें। टांगों की प्रथम जोडी विष नखर (Poision Claws) बनाती है। उदाहरण - शतपदी (Centipede)।

5. **वर्ग पौरोपोडा (Class Pauropoda)** इन भूमिगत जन्तुओं के शरीर में 12 खण्ड होते है। शरीर सिर व धड़ में विभक्त , सिर पर नेत्रों का अभाव परन्तु तीन जोडी शाखान्वित मृगिकायें पायी जाती हैं। इनमें नौ जोडी पाद उपस्थित होते हैं। उदाहरण - पौरोपस (Pauropus)

6. **वर्ग सिस्फाइला (Class Symphyla) :** ये भूमिगत छोटे प्राणी है जिनमें नैत्रों का अभाव है परंतु भूमिका पाये जाते है। शरीर पर 15 से 22 खण्ड होते है। उदाहरण - स्कूटी जेरेला स्थान (Scurtigerella)

IV. उपसंघ पेन्टास्टोमिडा (Subphyulum Pentastomida)

इस संघ के सदस्य कृमि-रूपी (worm - like) तथा परजीवी (parasitic) होते हैं। देह क्षेत्रो में बँटी होती है, परन्तु विखण्डन स्पष्ट नहीं होता है। रक्त-परिवहन, श्वसन तथा उत्सर्जन अंगों का पूर्ण अभाव होता है। एन्टिना व उपांगों का अभाव होता है। उदाहरण - **लिंग्वाटुला (Linguatula)**।

V. उपसंघ टारडीग्रेडा (Subphylum Targrada)

ये सूक्ष्म जलीय-जन्तु होते हैं जिन्हें जल- भालू (water bears) कहते हैं। देह पर काइटिन रहित क्यूटिकल का आवरण होता है। इनमें 4 जोड़ी पाद उपस्थित होते हैं। उदाहरण - **इकाइनिस्कस** (Echiniscus)

VI. **उपसंघ टाइलोबाइटा (Subphylum Trilobita):** ये विलुप्त, समुद्री जीवाश्म प्राणी है। इनका शरीर दो लम्बवत् खांचों द्वारा तीन पालियों में विभक्त था। शरीर के प्रत्येक खण्ड में, अन्तिम खण्ड के अलावा, एक जोडी द्विशाखित उपाग (Biramous appendages) पाये जाते थे। उदा. टाइलोबाइदस (Trilobites) जैसे ट्राइआर्थस (Triarthrus), डेल्मेनाइटस (Dalmanites)।

9.2.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits , Habitat and External Characters)

(i) पेलिमॉन (Palaemon)

वर्गीकरण (Classification)

संघ - **आर्थोपोडा** (Phylum - Arthropoda)
उपसंघ - **मैण्डीब्यूलेटा** (Subphylum - Mandibulata)
वर्ग - **क्रस्टेशिया** (Class - Crustacea)
गण - **डेकापोडा** (Order - Decapoda)
श्रेणी - **पेलिमॉन** (Genus - Palaemon)।

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat) :

ये जलचर प्राणी दक्षिण भारत (केरल) की उन नदियों में वास करते हैं, जिनमें कैल्शियम की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। यह रात्रिचर जन्तु है। यह सर्वाहारी (Omnivorus) होता है। शत्रुओं से बचाव के लिए यह अपने उपांगों को तोड़ देता है, यह घटना स्वागोच्छेदन (Autonomy) कहलाती है। मुख्य भारतीय जाति **पेलिमॉन मैलकमसोनी** (Palaemon malcomsonii) है, जिसे सामान्यत : ' झींगा ' कहते हैं। इसके माँस का सेवन मनुष्य द्वारा बड़े चाव से किया जाता है, अत : इसका सवर्धन भी किया जाता है तथा यह एक बड़ा उद्योग बनाता है जो विदेशी मुद्रा अर्जित करता है।

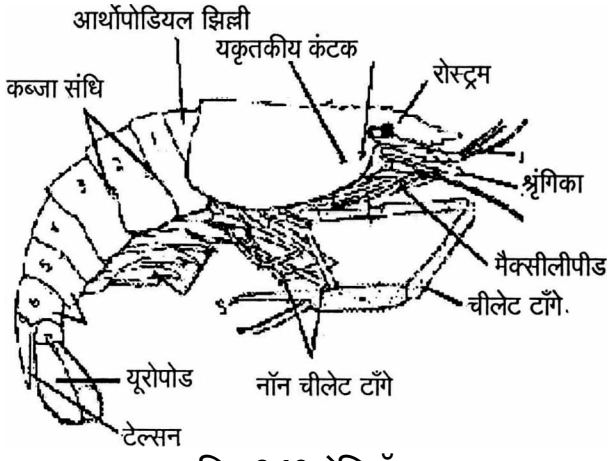

चित्र 9.10 पेलिमॉन

विशेष लक्षण :

देह लगभग 20cm लम्बी होती है (चित्र 9. 10)। शिरोवक्ष (cephalo - thorax) एक ढाल - रूपी **केरापेस** (carapace) से ढका रहता है। अग्र सिरे पर केरापेस एक आरी - रूपी नुकीला **रॉस्टम** (rostrum) बनाता है। सिर के सभी उपांग (appendages) **एन्टीन्यूल** (antennules), **एन्टिने** (antennae) **मैन्डिब्ल** (mandible), **मैक्सीलूले** (maxillulae) व **मैक्सिले** (maxillae) सुस्पष्ट होते हैं। एन्टीन्यूल में संवेदी अंग संतुलन - पुटी (satocyst) पायी जाती है। शीर्ष पर संयुक्त नेत्रो की एक जोड़ी होती है जो नेत्रा - वृन्त (eye - stalk) पर उपस्थित होते हैं। शिरोवक्ष 13 खण्डों का बना होता है तथा उदर 6 खण्डों का बना होता है। प्रत्येक खण्ड एक अर्द्ववृत्ताकार काइटिन की प्लेट से ढका रहता है। इस प्लेट को स्कलेराइट कहते हैं। इसके ऊपरी भाग को टर्गम (Tergum) पार्श्व भाग को प्लूरोन (pleuron) तथा नीचे के भाग को स्टर्नम (sternum) कहते हैं। दो समीपस्थ प्लेट कब्ज़ा संधि द्वारा जुडी रहती है। वक्ष के पहले तीन खण्डों के उपांग **मैक्सिलीपीड** (maxilipedes) कहलाते हैं व इनके अधर - तलों पर **क्लोम** (gills) होते हैं। इस प्रकार के क्लोम पोडोब्रैंक (podobranch) कहलाते हैं। शेष 5 वक्ष - खण्डों के उपांग **पाँच टाँगों** (walking legs) के रूप में होते हैं जिनके सिरे **चिमटी - रूपी** (chelate) होते हैं। नर के दूसरे वक्ष खण्ड के मैक्सिलीपीड बहुत लम्बे होते है एवं प्रजनन के समय काम में आते हैं। उदर पर पाँच **प्लियोपोड** (pleopads) उपांग एव अन्तिम **यूरोपोड** (uropod) उपांग होते है। यूरोपोड एक चपटे टैलसन (telson) से ढका रहता है। **टेल्सन** तथा यूरोपोड मिलकर पुच्छिय पखने (tail finn) का निर्माण करते हैं। उदर के उपांग तैरने के लिए होते हैं। पेलिमॉन में कुल मिलाकर 19 जोड़ी उपांग पाए जाते हैं। नर पेलिमॉन में दूसरी टाँग की जोड़ी बहुत बड़ी और मजबूत होती हैं जिस के द्वारा नर को मादा फेन से पहचाना जा सकता है।

9.10 संघ - मोलरका (Phylum - Mollusca)

9.10.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

इस संघ के सदस्य मूलत : **द्विपश्वरीय, त्रिस्तरीय** (triploblastic) एवं **सीलोमेट** (coelmate) **यूमैटाज़ोन्स** होते हैं। इनका शरीर **कोमल** होता है तथा **खण्डयुक्त** (segmented) नहीं होता है।

कुछ सदस्यों की मूलत : द्विपशवींय सममिति **ऐंठन** (torsion) के कारण **असममित** (asymmetrical) हो जाती है।

संघ के सदस्यों मे संधियुक्त उपांगों (jointed appendages) का अभाव होता है। देह के ऊपर एक लिफ़ाफ़ेनुमा कोमल आवरण होता है जिसे मैन्टल mantle कहते हैं। मैन्टल कई सदस्यों में कैल्सियमयुक्त बाह्य **कवच** (shell) बनाता है।

गमन हेतु प्राय : सभी प्राणियों में एक मोटा मांसल **पाद** (foot) अधर- तल पर स्थित होता है।

देहगुहा **हासित** (Reduced) एवं **हृदयावरण** (Pericardium), वृक्क गुहा (Urocoel) एवं जननगुहा (Gonocoel) तक सीमित। मुखगुहा में रेडुला (Radula) उपस्थित।

परिसंचरण बन्द परन्तु कुछ जगह **कोटरों** (Lacunae) में खुलता है। रक्त वर्णक **हीमोसाइनिन** (Haemocyanin) होता है। उत्सर्जन मेटानेफ़ेडिया (Metanephredia) द्वारा। तन्त्रिका तन्त्र सुविकसित, संवेदी अंग नेत्र (Eyes), **स्टेटोसिस्ट** (Statocyst), **स्पर्शक** (Tentacles) गंध एवं श्वाद ग्राही होते है। कुछ में **ऑस्केडियम** (Osphradium) पाया जाता है। परिवर्धन में लारवा अवस्था पाई जाती है।

मॉलस्का की करीब 1, 00, 000 जातियाँ ज्ञात हैं जो जल (समुद्र अ थवा मीठे जलाशय) अथवा गीली भूमि में पायी जाती है।

9.10.2 मोलस्का का वर्गीकरण (Classification of Mollusca)

1. **वर्ग मोनोप्लैकोफ़ोरा (Class Monoplacophora) -** यह वर्ग निम्न कोटि के समुद्री मॉलस्कन सदस्यों का बना होता है जो ऐनेलिडा से समानता रखते हैं। उदाहरणार्थ, खण्ड युक्त शरीर (segmented body), परिसंचरण, उत्सर्जन तथा जनन - तन्त्र एनेलिडा से मिलते हैं। ये मॉलस्का में इसलिए सम्मिलित किये जाते हैं क्योंकि इनका शरीर मैन्टल (mantle) तथा कवच (shell) से ढका होता है तथा गमन हेतु माँसल पाद (foot) एवं पांच जोड़ी श्वसनीय क्लोम (gills) उपस्थित होते हैं। वृक्क छ : जोड़ी होते हैं। उदाहरण- नियोपाइलीना (Neopilina)।

2. **वर्ग एम्फीन्यूरा (Class Amphineura) -** ये भी निम्न कोटि के मॉलस्का हैं जो समुद्री होते हैं। कुछ सदस्यों का शरीर पतला एवं लम्बा होता है किन्तु अधिकांश का छोटा एवं चपटा होता है। देह 8 चपटी प्लेटों के बने कवच से ढकी होती होती है। रेडुला उपस्थित। परिवर्धन में **ट्रोकोफोर** (Trochophore) लारवा पाया जाता है। उदाहरण- काइटन (Chiton)।

3. **वर्ग गैस्ट्रोपोडा (Class Gastropoda) -** इस वर्ग के सदस्य समुद्र, तालाब, झील, नदी आदि में पाये जाते हैं। आदर्श रूप से देह तथा कवच (shell) ऐंठन (torsion) के कारण **कुण्डलित** (coiled) होता है परन्तु कुछ प्राणियों में कवच **अकुण्डलित** (uncoiled) होता है, कुछ में बहुत छोटा हो जाता है तथा कुछ सदस्य में तो लुप्त ही हो जाता है कवच एक कपाटीय होता है। देह का अग्र भाग सिर में विभेदित होता है जिस पर नेत्र, स्पर्शक तथा कुतरने के लिए दन्त- रूपी रेड़युला (radula) उपस्थित होते हैं। माँसल पाद मजबूत, चौड़ा एवं चपटा होता है। इस वर्ग के कई प्रकार के घोंघे (snails) आते हैं। उदाहरण - **पाइला** (pila), **शंख** अर्थात् **टर्बिनैला** (Turbinella), **कौड़ी** अर्थात् **साइप्रिया** (Cypraea) आदि।

4. **वर्ग स्कैफोपोडा (Class Scaphopoda) -** इस वर्ग के सदस्य समुद्र में पाये जाते हैं। देह तथा **कवच** (shell) द्विपार्श्वीय लम्बे एवं बेलनाकार होते हैं। कवच दोनों तरफ से खुला व

हाथी - दांत के समान होता है। पाद छोटा शंकु आकार का पालियों में विभक्त परन्तु स्पष्ट होता है। क्लोम अनुपस्थित- होते हैं। उदाहरण - **डैन्टेलियम** (Dentalium)।

5. **वर्ग पिलैसीपोडा या बाइवैल्विया (Class Pelecypoda or Bivalvia) -** द्विपार्श्वीय देह पार्श्वो से चपटी होती है तथा कोमल मेंटल एवम मोटा कवच जो दो पार्श्व अर्धभागों (lateral halves) में बँटा होता है, से ढकी होती है अत: कवच द्विकपाटीय (biralved) है। पाद हल (plough) के आकार का होता है जो भूमि में धँसने के काम आता है। इस वर्ग के सदस्य सीपियाँ कहलाते हैं जो समुद्र एवं अलवण जल में पाये जाते हैं। ये निस्यन्दन-भोजी **(filter feeder)** होते है। परिवर्धन में वेलिजर (Veliger) या **ग्लोकीडियम** (Glochidium) लारवा होता है। उदाहरण- **लैमेलिडैन्स = यूनियो** (Lamellidens = Unio), **माइटिलस** (Mytilus)।

6. **वर्ग सिफैलोपोडा (Class Cephalopoda) -** इस वर्ग के सदस्य संघ मॉलस्का के सबसे अधिक विकसित सदस्य समझे जाते हैं जो केवल समुद्र में पाये जाते हैं। ये कई बार बहुत बड़े परिमाण के होते हैं। कवच अधिकांश में अविकसित होता है तथा केवल एक जाति **नॉटिलस** (Nautilus) मे विकसित होता है। स्पष्ट तथा विकसित शीर्ष होता है जिस पर बड़े-बड़े नेत्र उपस्थित होते हैं। पाद शीर्ष को घेरे होता है तथा इसका पाद 8 अथवा 10 भुजाओं में विभेदित होता है (**नॉटिलरा** में भुजाओं की जगह अनेक स्पर्शक (tentacles) उपस्थित होते हैं)। भुजाओं तथा स्पर्शकों पर कई चूषक लगे होते हैं जो भोजन पकड़ने का कार्य करते हैं। उदाहरण- **सीपिया** (sepia), **ऑक्टोपस** (Octopus), **नॉटिलस** (Nautilus)।

9.10.3 स्वभाव, वासरथानएवं बाह्य लक्षण

(Habits , Habitat and External Characters)

(i) पाइला (Pila)

वर्गीकरण (Classifications)_

संघ - **मॉलस्का** (Phylum - Mollusca)

वर्ग - **गेस्ट्रोपोडा** (Class - Gastropoda)

गण - **पेक्टिनिब्रेंकीय** (Order - Pectinibranchia)

श्रेणी - **पाइला** (Genus - Pila)।

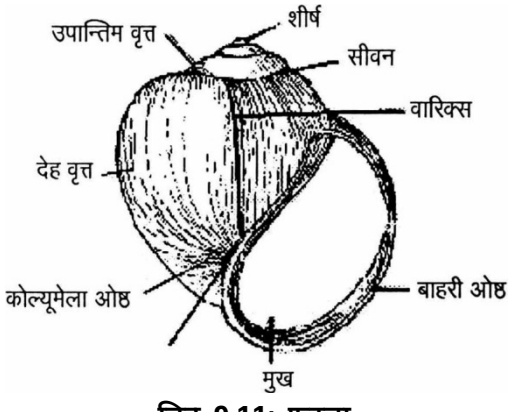

चित्र 9.11: फइला

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat):

यह अलवणीय जल (fresh water) का एक सामान्य घोंघा (snail) है। मुख्य भारतीय जाति **फइला ग्लोबोसा** (Pila globosa) है। यह प्राणी बड़ा एवं गोलाकार होता है जो प्राय: तालाबों आदि के स्वच्छ जल में पाया जाता है।

विशेष लक्षण

पाइला का बड़ा, गोलाकार (4-5 cm व्यास) एवं मुलायम शरीर एक सख्त सर्पिल कुण्डल (Spirally coiled) रूपी कैल्शियम कार्बोनेट के कवच से ढका होता है (चित्र 9. 11)। जिस काल्पनिक अक्ष के चारों ओर यह कुंडलित (Coiled) होता है उसे कोल्यूमेला (Columella) कहते है। पाइला का कवच शंकु सर्पिल होता है। कवच का सबसे पुराना वृत्त इसके शीर्ष पर होता है इसे प्रोटोकॉन्च कहते हैं। सबसे बड़ा वृत्त देहवृत (Body Whorl) कहलाता है। देह वृत्त से पहले का वृत्त उपान्तिम वृत्त (Penultimate whorl) कहलाता है। पाइला में कुण्डलन दक्षिणावर्त्त (Dextral) होता है। पाइला में एक संवेदी अंग जलेक्षिका (Osphradium) होता है जो जल की जांच करता है।

पाइला में जलीय तथा वायवीय दोनों प्रकार का श्वसन पाया जाता है। पाद (Foot) से चिपका एक सख्त अण्डाकार कवच का **ढक्कन** (Operculum) होता है। कवच को हटाने के पश्चात् **शीर्ष, आतरांगी - पिण्ड** (visceral mass) एवं पाद दिखाई देते हैं। शीर्ष के ऊपर दो जोड़ी **स्पर्शक** (tentacles) एवं एक जोड़ी नेत्र होते हैं। दक्षिण भारत में **पाइला** खाया भी जाता है।

(ii) लेमेलिडेन्स (Lamellidens)

वर्गीकरण (Classifications):

संघ - **मॉलरका** (Phylum - Mollusca)

वर्ग - **बाइवेल्विया** (Class Bivalvia = Pelecyopoda)

गण - **यूलेमेलिब्रेन्क्रिया** (Order - Eulamellibranchia)

श्रेणी - **लैमेलिडैन्स** (Genus - Lamellidens)।

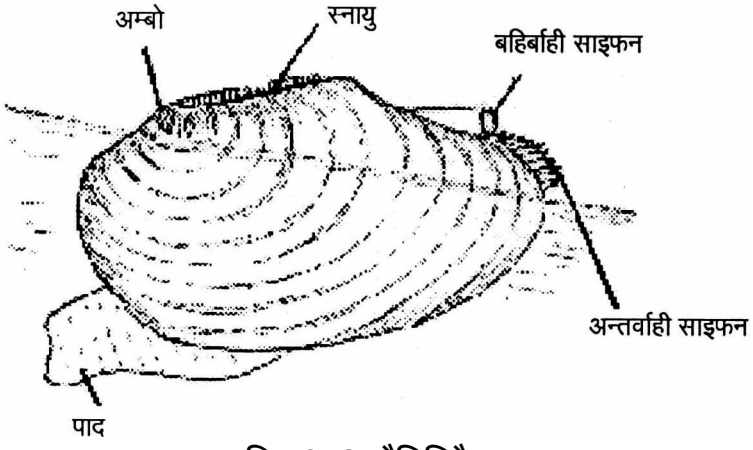

चित्र 9.12: लैमिलिडैन्स

स्वभाव एवं वास स्थान (Habits and Habitat)

ये अत्यन्त सामान्य विश्वव्यापी जलचर सीपियाँ है जो तालाबों और नदियों में मिलती है। मुख्य भारतीय स्पीशीज **लेमेलिडेन्स मार्जिनेलिस** (Lamellidens marginalis) है।

विशेष लक्षण:

कवच एवं शरीर **द्विपाशर्व सममित** (bilateral symmetrical) होता है। कवच के दोनों भाग समान एवं पार्श्वो से चपटे होते है। कवच का अग्र भाग गोल व पिछला भाग नुकीला होता है। दोनों कवच कब्जा सन्धि द्वारा जुडे रहते हैं। कपाट के ऊपर उभरा हुआ भाग होता है जिसे अम्बो (Umbo) कहते हैं। कवच के अन्दर मेंटल (Mental) से ढका आतरागी पिण्ड (visceral mass) होता है (चित्र 9. 12)। मेन्टल का पिछला भाग एक बहिर्वाही एवं एक अन्तर्वाही (excurrent and incurrent) साइफन (siphon) में विभेदित होता है। अधर तल पर पार्श्वो से चपटा पाद (foot) होता है। सिर स्पष्ट नहीं होता है। इन प्राणियों में नेत्र एवं स्पर्शक नहीं होते हैं परन्तु एक बड़ा मुख उपस्थित होता है। इनके कवच से मोतियों के बटन (pearl button) बनाये जाते हैं। इसके परिवर्धन में ग्लोकीडियम (glochidium) लार्वा आता है।

9.11 संघ - इकाइनोडर्मेटा (Phylum - Echinodermata)

9.11.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

इस संघ के **यूमैटाज़ोआ** सदस्य **त्रिस्तरीय** (triploblastic) **सीलोमेट्स** होते हैं। इनकी गलत : सममिति **द्विपाशर्व** होती है परन्तु **वयस्क- अवस्था** में ये **पंचतयी - अरीय सममित** (Pentamerousradially symmetrical) हो जाते हैं। **त्वचा कैल्सियमयुक्त अस्थिकाओं** (Ossioles) अर्थात **कंटिकाओ** (spines) के **अंत : कंकाल** के कारण दृढ़ एवं चिम्मड़ होती है।

देह-गुहा अर्थात् सीलोम कई नलिकाओं में बँटकर **हीमल- तन्त्र** (haemal system) तथा जल- **संवहनी- तन्त्र** (water - vascular - system) का निर्माण करती है।

जल- संवहनी- तंत्र गमन के अलावा भोजन-ग्रहण, श्वसन -ग्रहण एवं संवेदना-ग्रहण में सहायक होता है। गमन के लिए **नाल-पाद** (tube - feet) नामक 'विशेष अंग होते हैं।

उत्सर्जन अंगों का अभाव एंव यान्त्रिकी तन्त्र व संवेदी अंग कम विकसित होते है। **प्राणी एकलिंगी** (unisexual) होते हैं तथा निषेचन बाह्य प्रकार का होता है। जीवन-वृत्त में **लार्वा प्रावस्था** (larval stage) पाई जाती है। **पुनरुद्भवन** (regeneration) की क्षमता बहुत अधिक होती है। परिवर्धन में बाइपिनेरिया (Bipinnaria) या ऑरिकुलेरिया (Auricularia) लारवा प्रावस्थाए पाई जाती है।

इकाइनोडर्मेटा की लगभग 6,000 जातियाँ ज्ञात हैं जो सभी समुद्रों में पाई जाती हैं।

संघ इकाइनोडमेटा को दो उपसंघों, एल्यूथीरोजोआ (Eleutherozoa) व पैल्मैटोजोआ (Pelmatozoa) में वर्गीकृत किया जाता है।

9.11.2 इकाइनोडर्मेटा का वर्गीकरण (Clasification of Echinodermata)

इस संघ को आकार, अंत : कंकाल आदि के आ धार पर 5 वर्गों में बाँटा जाता है :

1. उपसंघ - एज्यूथीरोजोआ (Eleutherozoa)

1. **वर्ग - ऐस्टीरॉइडिया (Class - Asteoidea) -** इसमें देह पंचतयी अरीय सममित (Pentamerous radially symmetrical) होती है तथा तश्तरी-रूपी केन्द्रीय भाग से 5 अथवा 5 के गुणन की भुजायें निकलती हैं। भुजायें प्राय : छोटी होती हैं तथा केन्द्रीय भाग से इनका संगम स्पष्ट नहीं होता है। भुजायें शाखान्वित भी नहीं होती हैं। मुखद्वार के न्द्रीय भाग से निचले तल पर होता है तथा गुदा (anus) ऊपरी सतह पर स्थित होती है। एन्बुलेक्रल नाल खुली हुई होती है। नालपाद पर चूषक उपस्थित होते है। क्योंकि इनका आकार तारा - रूपी(star like) होता है,

इसलिए इन्हें तारा - मीन (star fish) क होते हैं। उदाहरण - **ओरिएस्टर = पैन्टासिरॉस "** (Oreaster = Pentacerous) आदि।

2. **वर्ग ऑफियूरॉइडिया (Class Ophiurodea) -** इस वर्ग के सदस्यों की देह भी तारा-रूपी होती है तथा इनमें भी पंचतयी अरीय सममिति मिलती है। भुजायें हमेशा पाँच होती हैं जो पतली, लम्बी तथा लचीली होती हैं। भुजाओं का केन्द्रीय- भाग से जोड़ स्पष्ट होता है। कई सदस्यों में भुजायें शाखान्वित (branched) भी होती हैं। इनमें मुखद्वार केन्द्रीय भाग की ऊपरी सतह पर होता है तथा गुदा का अभाव होता है। एम्बुलेक्रल नाल बन्द व अस्थिकाओ (Ossicles) से ढ़की। नाल पादों पर चूषकों का अभाव होता है। उदाहरण : **ब्रिटल- तारे** (brittle star) अर्थात् **आफिओथिक्स** (Ophiothrix) आदि।

3. **वर्ग इकाइनॉइडिया (Class Echiniodea) -** इस वर्ग के सदस्यों की देह पर भुजाओं का अभाव होता है तथा देह प्राय : गोल, अंडाकार एवं चपटी अथवा गेंद समान होती है। त्वचा पर अनेक गतिमान कटिकाये (moveable spines) होती हैं जो शरीर के लिए एक कवच (shell) बनाती हैं। एम्बुलेक्रल नाल बन्द तथा अस्थिकाओं (Ossicles) से ढकी होती है। नालपादों पर चूषक उपस्थित। उदाहरण : **समुद्री अर्चिन्स** (Sea - urchins) जैसे **इकाइनस** (Echinus) आदि।

4. **वर्ग होलोधुरॉइडिया (Class Holothuroidea) -** इस वर्ग के सदस्यों की देह पर भुजाओं का अभाव होता है। देह मोटी एवं ककड़ी की भाँति बेलनाकार होती हैं। मुखद्वार एवं गुदा विपरीत दिशाओं पर स्थित होते हैं तथा मुखद्वार के चारों ओर शाखान्वित एवं खोखले स्पर्शक उपस्थित होते हैं। त्वचा कोमल एवं पेशीय होती है। ऐम्बुलेक्रल (Anbulacral) नाल बन्द व श्वसन वृक्ष (Respiratory tree) पाया जाता है। उदाहरण : **समुद्री-खीरे** जैसे **होलोथुरिया** (Holothuria), **कुकुमेरिया** (Cucumaria) आदि।

II. उपसंघ - पैल्मेटोजोआ (Pelmatozoa)

5. **वर्ग क्रिनॉइडिया (Class Crinoidea) -** इस वर्ग के सदस्य अन्य वर्गों के विपरीत जीवन- वृत्त के कुछ काल अथवा जीवन पर एक वृन्त (stalk) की सहायता से समुद्र में किसी चट्टान आदि से चिपके रहते हैं। इसमें शरीर पंचतयी अरीय सममित होता है। शरीर का केन्द्रीय-भाग बहुत छोटा होता है इसे केलिक्स (Calyx) कहते हैं, तथा भुजायें बहुत लम्बी तथा शाखान्वित होती हैं। भुजाओं की संख्या पाँच या पाँच के बहुगुणों में होती है। मुखद्वार एवं गुदा केन्द्रीय भाग की ऊपरी सतह पर उपस्थित होते हैं। उदाहरण : पंख- तारे अथवा समुद्री -लिली (feather stars or sea lilies) जैसे एन्टिडॉन (Antedon) आदि।

9.11.3 स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits, Habitat and External Characters)

(i) एस्ट्रीयाज Asterias

वर्गीकरण (Classification):

संघ - **इकाइनोडर्मेटा** (Phylum - Echinodermata)

वर्ग - **एसटिरॉइडिया** (Class - Asteroidea)

गण - **फॉरसिपुलेटा** (Order - Forcipulata)

श्रेणी - **एस्टीरियस** (Genus - Asterias)।

स्वभाव एवं वासस्थान (Habits and Habitat):

ये समुन्द्र प्राणी हिन्द एवं प्रशांत महासागरो के ऊषण क्षेत्रों में बहुतायत से पाये जाते हैं। यह समुद्र के चट्टानी भागों में वास करती है तथा प्राय: सभी गहराइयों में मिलती है। ये सभी माँसाहारी होते हैं तथा मोलस्क, क्रस्टेशियन आदि इनका प्रमुख भोजन है। इन प्राणियों में पुनरुद्भवन (Regeneration) की क्षमता पायी जाती है। इसकी अनेकजातियाँज्ञात हैं, उदाहरणार्थ, **एस्टीरियस** (Asterias) के अतिरिक्त **पेंटासिरॉस** (Pentaceros) एवं **आरिएस्टर** (Oreaster) अति सामान्य भारतीय जातियाँ हैं।

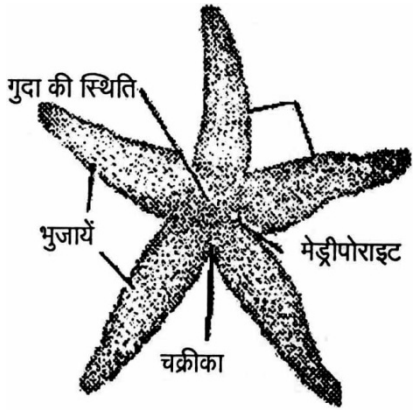

चित्र 9.13 तारामीन (Star fish). उपमुख - तलीय दृश्य

विशेष लक्षण:

तारामीन की देह तारा - रूपी होती है जिसमें एक **केन्द्रीय- चक्रिका** (central disc) एवं **पाँच भुजाएँ** होती हैं। केन्द्रीय - चक्रिका के निचले भाग पर मुख होता है। देह के इस तल को मुखतल (oral surface) कहते हैं। शरीर के ऊपरी तल को **उपमुखतल** (aboral surface) कहते हैं। इस सतह पर कैलिनयम कार्बोनेट के बने शूल पाये जाते हैं। कहीं - कहीं छोटी चिमटी के समान पेडिसिलेरिया (Pedicellariae) पाए जाते हैं। भुजाओं के मुखतल पर **एम्बुलेक्रल खाँच** होते है एम्बुलेक्रल खाँच में कई **नली - पाद** (tube - feet) होते हैं, जिनकी सहायता से यह परंभ क्षी अपने शिकार को जो प्राय : **बाइवेल्वस** (bivalves) आदि होते है, चिपक कर तोड़ता है। नली पाद गमन में भी सहायता करते हैं। केन्द्रीय चक्रिका के ऊपरी उपमुखतल (aboral surface) पर **मेडीपोराइट छिद्र** (madreporite) एवं **गुद - छिद्र** (anus) होता है। देह छोटे - छोटे **पचकोणीय** (pentagonal) केलकेरियस **ऑसिक्ल्स** (ossicles) अस्थिकाओं से ढकी रहती है। यह एक हानिकारक जीव है जो मोती की सीप का भक्षण कर मोती उद्योग को हानि पहुँचाता है।

9.12 संघ - हेमी - कॉर्डेटा (Phylum Hemi-Chordata)

इस समूह में लगभग 90 जातियाँ आती हैं। इस समूह को पहले कॉर्डेटा में रखा जाता था। लेकिन इस समूह के प्राणियों में नोटोकॉर्ड की अनुपस्थिति के कारण अब नॉन - कॉर्डेटा में अलग संघ के रूप में संघ - इकाइनोडर्मेटा के बाद रखा जाता है।

9.12.1 सामान्य लक्षण (General Characters)

- ये सभी समुद्री जल में पाये जाते हैं, जो सामान्यतया एकल, या निवही, नलाकार एवं बिलकारी होते हैं।
- इनका शरीर कोमल, कृमि समान, अविखण्डित, द्विपार्श्व सममित एवं त्रिस्तरीय होता है।
- इनका शरीर तीन भागो मे शुण्ड (proboscis), कॉलर (Collar) एवं धड (trunk) मे बंटा होता है।
- देह भित्ति में एकल स्तरीय एपीडर्मिस उपस्थित होती है। जिसमें श्लेष्म ग्रंथिया पायी जाती हैं।
- देह गुहा, प्रोटोसील, मीजोसील एवं मेटासील में विभेदित होती है।
- पाचन तन्त्र पूर्णविकसित होता है। आहार नाल सीधीया 'U' आकारकी होती है।
- ग्रसनी, क्लोम दरारों से छिद्रित होती है।
- इनमें रक्त परिसंचरण तन्त्र सरल एवं खुला हुआ होता है।
- उत्सर्जन के लिये शुण्ड ग्रंथि अथवा ग्लोमेरूलस उपस्थित होता है।
- तन्त्रिका तन्त्र आदिम प्रकार का होता है इसमें पृष्ठ तल पर पृष्ठ तन्त्रिका रज्जु तथा अधर तल पर एक अधर तन्त्रिका रज्जु उपस्थित होता है। सम्पूर्ण शरीर में एपीडर्मिस के नीचे तन्त्रिका जाल उपस्थित रहता है।
- जनन लैंगिक प्रकार का होता है। लिंग सामान्यतया पृथक होता है। जनद एक या अनेक होते हैं।
- निषेचन बाहरी एवं पर प्रकार का होता है। परिवर्धन अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष होता है लार्वा टॉर्नेरिया (tornaria) कहलाती है।

9.12.2 हेमी-कॉडेटा का वर्गीकरण (Classification of Hemi Chordata)

इस संघ को दो वर्गों में बांटा गया है-

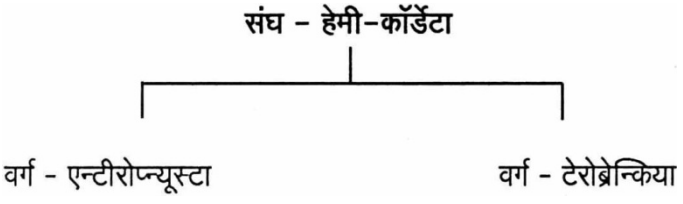

वर्ग - एन्टीरोज्यूस्टा (Enteropneusta)

लक्षण

- कृमि रूपी, एकल तथा बिलकारी होते हैं।
- इनको एकॉर्न कृमि कहते हैं।
- इनकी आहार नाल सीधी होती है।
- इनमें अनेक जनद अंग पाये जाते हैं।

उदाहरण : 1. बेलेनोग्लोसस, 2. सैकोग्लोसस

वर्ग - टेरोब्रेंकीय (Pterobranchia)

लक्षण

- ये एकल या निवही होते हैं।
- इनकी आहार नाल ' U ' आकृति की होती है।
- इनमें जनद तुलनात्मक रूप से कम पाये जाते हैं।
- इनको पंख गिल (feather gills) कहते हैं।

उदाहरण : 1 सिफैलोडिस्कस, 2. रेहब्दोप्लुरा

9.12.3 स्वभाव, वासस्थान एवं बाह्य लक्षण (Habits , Habitat and External Characters)

(ii) बैलेनोग्लोसस (Balaneglossus)

संघ - **हेमी - कॉर्डेटा** (Phylum - Hemichordata).

वर्ग - **एन्टिरोप्न्यूस्टा** (Class - Enteropneusta) :

श्रेणी - **बैलेनोग्लॉसस** (Genus - Balaneglossus) :

1. बिलों में रहने वाला समुद्री जन्तु है जो तट के निकट प्राय : पाया जाता है।
2. देह लम्बी नलाकार व अविखण्डित होती है।
3. विभिन्न जातियों में इसकी लम्बाई भिन्न होती है जो 2. 5 सेमी से 2. 5 मीटर तक लम्बी हो सकती है 1
4. लिंग पृथक् होते हैं।
5. देह तीन भागों में बँटी होती है
   (i) **अग्रतम शुण्ड** (proboscis)
   (ii) **मध्य का गलपट्ट** (collar) तथा
   (iii) **पश्च का लम्बा धड़** (trunk)।
6. शुण्ड मुग्दाकार माँसल रचना होती है जो मुख से आगे स्थित होती है।
7. गलपट्ट छोटा होता है जिसके अग्र भाग पर मुख स्थित होता है।
8. धड़ (trunk) देह का सबसे लम्बा भाग होता है तथा तीन भागों में बाँटा जा सकता है
   (i) अग्र का **ब्रेन्क्रियो - जिनाइटल भाग** (branchio-genital region),
   (ii) मध्य का **हिपैटिक भाग** (hepatic region), तथा
   (iii) पश्चका **उदरीय खण्ड** (abdominal region) '
9. **ब्रेन्कियोजिनाइटल भाग :** धड़ के इस भाग के पृष्ठ तल पर गिल - छिद्रों (gill - pores) की दोहरी कतार होती है। धड़ के इस भाग में जनन - उभारों (genital ridges) की लम्बी कतारें स्थित होती हैं। इन उभारों के नीचे शरीर में जनद स्थित होते हैं। बैलानोग्लॉसस की किन्हीं जातियों में ये उभार अत्यन्त विकसित होते हैं तथा पंखों के समान दिखाई देते है
10. **हिपैटिक भाग :** मध्य का यह भाग अपेक्षाकृत छोटा होता है तथा इस पर छोटी - छोटी थैली - स्वरूप हिपैटिक सीकी (hepatic cecae) की दोहरी कतार के उभार दिखाई देते है
11. **उदरीय भाग :** धड़ का यह पश्च भाग बाहर से विखण्डित दिखाई देता है किन्तु भीतर से शरीर का किसी प्रकार से विखण्डन नहीं होता है।
12. धड़ के अन्त पर गुद - छिद्र स्थित होता है।

बोध प्रश्न - 1

बहु वैकेल्पिक प्रश्न

1. संघ-प्रोटोजोओं के वर्गीकरण का आधार है-
   (a) गमनांग
   (b) केन्द्रक
   (c) प्रजनन के प्रकार
   (d) उपरोक्त सभी ( )
2. निवही प्रोटोजोआ है -
   (a) अमीबा
   (b) आर्सीला
   (c) प्लाज्मोडियम
   (d) प्रोटिरोस्पॉजिया ( )
3. पंच जगत् व्यवस्था में संघ-प्रोटोजोआ को वर्गीकृत किया गया है -
   (a) मोनेरा में
   (b) प्रोटिस्टा में
   (c) ऐनिमेलिया में
   (d) फन्जाई में ( )
4. निम्न एक अन्तपरजीवी प्रोटोजोअन्स है -
   (a) जिआर्डिया
   (b) वेर्टीसेला
   (c) पैरामिशियम
   (d) युग्लिना ( )
5. मनुष्यों में रोग फैलाने वाला प्रोटोजोअन्स है -
   (a) जिआर्डिया
   (b) एन्टअमीबा
   (c) प्लाज्मोडियम
   (d) उपरोक्त तीनों ( )
6. प्रोटोजोआ के अलवणीय जन्तुओं में जल सन्तुलन के लिये उत्तरदायी संरचनाएँ हैं -
   (a) खाद्य धानी
   (b) संकुचनशील रिक्तिका
   (c) फेगोसोम
   (d) पिनोसोम ( )
7. संकुचनशील धानियाँ निम्न प्रकार के माध्यम में रहने वाले प्रोटोजोआ के प्राणियों में पायी जाती है -
   (a) समपरासरी माध्यम
   (b) अल्पपरासरी माध्यम

(c) अति परस्परी माध्यम

(d) उपरोक्त सभी ( )

8. प्रोटोजोआ के किस समूह में द्रिआकारी केन्द्रक पाया जाता है?

(a) मेस्टीगोफोरा

(b) स्पोरोजो आ

(c) नीडोस्पोरा

(d) सीलियेटा ( )

9. प्रोटोजोआ के किस समूह के सभी सदस्य अन्त : परजीवी होते हैं?

(a) मेस्टीगोफोरा

(b) स्पोरोजोआ

(c) नीडोस्पोरा

(d) सीलियेटा ( )

10. संघ - पोरीफेरा की स्थापना की थी -

(a) जॉनस्टॉन ने

(b) राबर्ट प्रान्त ने

(c) जॉन रे ने

(d) गेगेनबोर ने ( )

11. संघ - पोरीफेरा के प्राणियों में वर्गीकरण का आधार है -

(a) प्रचलन

(b) पाचन

(c) कंकाल

(d) जनन ( )

12. ''वीनस की पुष्प - मंजुषा!' (Venus flower basket) कहा जाता है -

(a) यूस्पॉजिया

(b) यूप्लैक्टा

(c) स्पाजिला

(d) चैलाइन ( )

13. कोरल कहे जाने वाले जन्तु होते हैं -

(a) वर्ग - हाइड्रोजोआ के

(b) वर्ग - स्काईकोजोआ के

(c) वर्ग - एन्थोजोआ के

(d) उपरोक्त सभी ( )

14. वर्ग सेस्टोड़ा के जन्तु होते है -

(a) सभी बाह्य परजीवी

(b) सभी अन्त : परजीवी

(c) मुख्यतया बाह्य परजीवी एवं कुछ अन्तः परजीवी

(d) मुख्यतया अन्त : परजीवी एवं कुछ बाह्य परजीवी ( )

15. संघ - ऐनेलिडा की स्थापना की थी -
(a) लिनियस ने
(b) डार्विन ने
(c) रोमर ने
(d) लैमार्क ने ( )

16. प्राणि- जगत् का सबसे बड़ा संघ है -
(a) कॉर्डेटा
(b) मोलस्का
(c) आर्थोपोड़ा
(d) ऐनेलिडा ( )

17. 'रजत मीन' के नाम से पहिचाने जाने वाला प्राणी है -
(a) लोकस्ट
(b) लेपिस्मा
(c) ग्राइलस
(d) बैलेनस ( )

18. निम्न में से जीवित जीवाश्म कहे जाने वाला प्राणि है -
(a) बीटल
(b) ततैया
(c) लिमुलस
(d) केकड़ा ( )

19. प्राणि- जगत् का दूसरा सबसे बड़ा संघ है -
(a) आर्थोपोडा
(b) मोलस्का
(c) कॉर्डेटा
(d) इकाइनोडर्मेटा ( )

20. मोलस्का प्राणियों में कैल्शियम युक्त कवच (shell) का स्रावण किया जाता है -
(a) शीर्ष द्वारा
(b) मेंटल द्वारा
(c) पाद दारा
(d) रेड्यूला द्वारा ( )

21. यूनियो का लार्वा कहलाता है -
(a) वेलिजर
(b) ग्लोचिडियम
(c) ट्रोकोफोर
(d) टॉर्नेरिया ( )

22. मोती का निर्माण करने वाला मोलस्कन जन्तु है -
(a) पिन्क्टाड़ा वलोरिस

(b) हेलिक्स
(c) पैक्टेन
(d) सीपिया ( )

23. इकाइनोडर्मेटा नाम देने वाले वैज्ञानिक थे -
(a) जैक्ब क्लिन
(b) लिनियस
(c) ल्यूकर्ट
(d) लैमार्क ( )

24. जल संवहनी तन्त्र विशेषता होती है -
(a) स्पंजों की
(b) सीलेन्ट्रेट्स की
(c) इकाइनोडर्म की
(d) उपरोक्त सभी का ( )

25. निम्न में से जिव्हा कृमि कहा जाता है -
(a) एम्फ़िऑक्सस को
(b) पायरोसोमा को
(c) वोट्रिलस को
(d) बैलेनोग्लॉसस को ( )

लघुउत्तरीय प्रश्न

26. संघ -प्रोटोजोआ के मुख्य लक्षण लिखिये तथा इनके सदस्यों का गमनागो के आधार पर वर्गीकरण कीजिये।
27. संघ -ऐनेलिडा के वर्ग के स्तर तक विशिष्ट लक्षण एवं उचित उदाहरण सहित वर्गीकरण कीजिये।
28. कटि वर्ग के प्रमुख लक्षण व उदाहरण दीजिये।
29. ट्रोकोफोर लार्वा किस संघ के जन्तुओं के परिवर्धन में पाया जाता है?
30. बहुरूपता किसे कहते हैं? यह किस संघ में पायी जाती है?

9.13 सारांश (Summary)

- प्रोटोजोआ शब्द का प्रतिपादन **गोल्डफस** ने दिया था।
- वर्ग स्पोरोजोआ के सभी सदस्य अन्त: परजीवी होते हैं तथा इनमें गमन अंगक अनुपस्थित होते हैं।
- प्रोटोजोआ संघ के प्राणी एक कोशिकीय यूकेरियोछर होते हैं। जिनमें गमन अंगक रोमाभ, कशाभ या कूटपाद पाये जाते हैं।
- रॉबर्ट ग्रान्ट ने संघ पॉरीफेरा शब्द का प्रतिपादन किया था।
- स्पंजों में ऑस्टिया द्वारा जल प्रवेश करता है तथा ऑस्कुलम द्वारा जल बाहर निकलता है।

- स्पंजों में विशेष प्रकार की कपि कोशिकायें पायी जाती हैं। जो कशाभ युक्त होती है तथा इनको कोलर कोशिकायें कहते हैं।
- सीलेन्ट्रेटा शब्द का प्रतिपादन न्यूकार्ट ने किया था।
- सीलेन्ट्रेटा में अरीय सममिति, द्वि स्तरीय एव बहुकोशिकीय प्राणी होते हैं। इनमें दंश कोशिकायें तथा अन्तराली कोशिकायें पायी जाती है।
- फाइसेलिया को पुर्तगाली लड़ाकू योद्धा कहा जाता है।
- प्लेटीहेल्मिन्थीज संघ के प्राणी को सामान्यतया चपटे कृमि कहते हैं।
- इनमें अपूर्ण आहार नाल पायी जाती है तथा कुछ प्राणियों में पूर्णतया अनुपस्थित होती है। संघ ऐस्केल्मिन्थीज के जन्तुओं को सामान्यतया गोलकृमि कहते हैं।
- ऐस्केल्मिन्थीज शब्द का प्रतिपादन ग्रोयन ने दिया था। इनकृमियों में आभासीदेहगुहा पायी जाती है।
- ऐनेलिडा संघ के प्राणी वास्तविक देह-गुहीय होते हैं इनमें बंद प्रकारका एक परिवहन तन्त्र पाया जाता है।
- आर्थोपोडा शब्द का प्रतिपादन शेन सीबाल्ड ने किया था। यह संघ प्राणि-जगत का सबसे बड़ा संघ है। इन प्राणियों में संधियुक्त उपांग पायी जाती है तथा खुले प्रकार का परिवहन तन्त्र पाया जाता है।
- मोलस्का संघ के जन्तु मुलायम शरीर वाले होते हैं। मोलस्का शब्द जॉन स्टॉन ने दिया था। इनके शरीर पर लिफाफे नुमा आवरण, मेंटल पाया जाता है जो कवच का स्रावण करता है।
- सेफेलोपोडावर्ग में सबसे बड़े अकशेरूकी आते हैं। इनके नेत्र, कशेरूकियों के नेत्रों के समान होते हैं।
- संघ-इकाइनोडर्मेटा के प्राणी पूर्णतया लवणीय जल में पाये जाते हैं। इनका शरीर पंचतयी अरीय सममित होता है। इनमें एन्टीरोसील प्रकार की वास्तविक गुहा पायी जाती है।

9.14 शब्दावली (Glossary)

आभासी देहगुहा	Pseudocoelom
प्राणीसम भोजी	Holozoic
कोशिका मुख	Cytosone
नाल तन्त्र	Canal System
द्वि रूपता	Dimorphic
अदेहगुहीय	Acoelomata
समखण्ड	Somite
परभक्षी	Predaceous
चूषक	Sucker
स्वांगोच्छेदन	Outomy
जलेक्षिका	Osphrodium
जनस्लेहिनी तन्त्र	Water vascular system

9.15 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली, रंगा, लौरी, प्राणि विविधता एवं उद्विकास; रमेश बुक डिपो, जयपुर

9.16 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to self assessment questions) -

बहु वैकल्पिक प्रश्न

1. (d)	2. (d)	3. (b)	4. (a)	5. (d)
6. (b)	7. (b)	8. (d)	9. (b)	10. (b)
11. (c)	12. (b)	13. (c)	14. (b)	15. (d)
16. (c)	17. (b)	18. (c)	19. (b)	20. (b)
21. (b)	22. (a)	23. (a)	24. (c)	25. (d)

लघुउत्तरीय प्रश्न

26. 9.3.1 में देख।

27. 9.8.1 में देखें।

28. 9.9.2 में देखें।

29. 9.10.2 में देखें।

30. 9.5.1 तथा 9.9.1 में देखें।

9.17 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. फाइलम - पॉरीफेरा के विशिष्ट लक्षण एवं उचित उदाहरण सहित वर्गीकरण कीजिये।
2. फाइलम - मोलस्का के सामान्य ल क्षणों का वर्णन करते हुए संक्षिप्त में इसका गण स्तर तक वर्णन कीजिये।

इकाई 10: कॉर्डेटस प्रारूपों का विस्तृत वर्गीकरण, स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Detailed Classification, Habits , Habitat and External Character of Chordates type)

इकाई की रूपरेखा (Out - line of Unit)

10.0 उद्देश्य (Objectives)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

10.2 कॉर्डेटा वर्गीकरण (Chordata - Classification)

10.3 प्रोटोकॉर्डेटा अर्थात् एक्रेनिएटा (Protochordata or Acraniata)

10.3.1 उपसंघ-यूरोकॉर्डेटा (Subphylum - Urochordata)

(i) हर्डमानिया (Herdmania)

10.3.2 उपसंघ-सेफेलोकॉर्डेटा (Subphylum - Cephalochordata)

(i) ऐम्फिओक्स्स (Amphioxus)

10.4 क्रेनिएटा (Craniata)

10.4.1 उपसंघ-वर्टीब्रेटा (Subphylum - Vertebrata)

(i) प्रभाग ऐग्नेथा (Division - Agnatha)

वर्ग साइक्लोस्टोमेटा (Class - Cyclostamata - Petromzon)

(ii) प्रभाग नेथोस्टोमेटा (Division - Gnathostomata)

10.5 महावर्ग-पिसीज (Superclass - Pisces)

महावर्ग पिसीज का वर्गीकरण (Classification of superclass - pisces)

10.5.1 वर्ग-प्लेकोडर्माई (Class - Placedermi)

10.5.2 वर्ग-कॉण्ड्रिक्थीज (Class - Chondrichthyes)

(i) स्कॉलियोडोन - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Scoliodon - Habits , Habitat and external characters)

10.5.3 वर्ग - ऑस्टिक्थीज (Class- Osteichthyes)

(i) लेबिओ - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Labeo - Habits , Habitat and external characters)

10.5.4 गण-डिप्नाई (Order - Dipnoi)

(i) फुफ्फुसीय मीन - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Scoliodon - Habits , Habitat and external characters)

10.6 महावर्ग - टेट्रापोडा (Super class - Terapoda)

10.6.1 वर्ग-एम्फिबिया (Class - Amphibia)

वर्ग-एम्फिबिया का वर्गीकरण (Classification of Class - Amphibia)

(i) गण-जिम्नोफिओना अर्थात् एपोड़ा (Order - Gymnophiona or Apoda)

इक्थियोफिस - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Ichthyophis - Habits , Habitat and external characters)

(ii) गण-यूरोडेला अर्थात् कॉडेटा (Order - Urodela or Chudata)

सेलामेन्डर - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Salamender - Habits , Habitat and external characters)

(iii) गण-ऐन्यूरा अर्थात् सैलिएन्शिया (Order - Anura or Salientia)

मेंढक - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Frog - Habits , Habitat and external characters)

10.6.2 वर्ग-रेप्टीलिया (Class - Reptilia)

वर्ग-रेप्टीलिया का वर्गीकरण (Classification of Class - Reptilia)

(i) उपवर्ग - ऐनेप्सिड़ा (Subclass - Anapsida)

गण-काटिलोसारिया (Order - Cotylosauria)

गण-कीलोनिया (Order - Chelonia)

(ii) उपवर्ग-यूरेप्सीड़ा (Sub class - Eurapsida)

(iii) उपवर्ग-पैराप्सीड़ा (Sub Class - Parapsida)

(iv) उपवर्ग-साइनैप्सीड़ा (Sub Class - Synapsida)

(v) उपवर्ग-डाऐप्सीड़ा (Sub class - Diapsida)

गण - रिन्क्रोसिफेलिया (Order - Rhynchocephalia)

गण - स्क्वैमैटा (Order - Squamata)

उपगण - लेसर्टीलिया (Sub order - Lacertilia)

हेमीडक्टाइलस - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Hemidactylus - Habits , Habitat and external characters)

उपगण - आफिडिया (Sub order - Ophidia)

(i) नाजा - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Naja - Habits , Habitat and external characters)

(ii) अजगर - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Ajgar - Habits , Habitat and external characters)

गण - क्रोकोडिलिया (Order - Crocodile)

मगरमच्छ - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Crocodile - Habits , Habitat and external characters)

10.6.3 वर्ग - एवीज (Class - Aves)

वर्ग - एवीज का वर्गीकरणं (Classification of Class - Aves)

(i) उपवर्ग - आर्किओनिथस (Sub class - Archeornithes)

(ii) उपवर्ग - निआर्निथ (Sub class - Neornithes)

अधिगण - ओडोन्टोगनेथी (Super order - Odontognathe)

अधिगण - पेलियोग्रेथी (Super order - Paleognathe)
अधिगण - इम्येनी (Super order - Impennae)
अधिगण - नीओग्रैथी (Super order - Neognathae)
गण - कोलम्बीफॉर्मीज (Order - Columbiformes)
कबूतर - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Pigeon - Habits, Habitat and External Characters)
गोड़ावन - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Godawan - Habits, Habitat and External Characters)
10.6.4 वर्ग मैमेलिया (Class - Mammals)
वर्ग मैमेलिया का वर्गीकरण (Classification of Class - Mammals)
(i) उपवर्ग - प्रोटोथीरिया (Sub class - Prototheria)
(ii) उपवर्ग - थीरिया (Sub class - Theria)
अधूवर्ग - मेटाथीरिया (Infra class - Metatheria)
अधःवर्ग - यूथेरिया (Infra class - Eutheria)
गण - लेगोमॉर्फा (Order - Lagomorphia)
खरगोश - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Rabits - Habits, Habitat and External Characters)
गण - आर्टियोडक्टाइला (Order - Artiodactyla)
ऊँट -स्वभाव, वासस्थान एवं बाह्य लक्षण (Camel - Habits, Habitat and External Characters)
गजेला - स्वभाव, वासस्थान एवं बाह्य लक्षण (Gazella - Habits, Habitat and External Characters)
यूथीरिया के अन्य गण
10.7 सारांश (Symmary)
10.8 शब्दावली (Glossary)
10.9 संदर्भ ग्रन्थ (Further Readings)
10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers of self assessment questions)
10.11 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise questions)

10.0 उद्देश्य (Objectives)

पिछली इकाई में आप नॉन - कॉर्डेटस प्रारूपों का विस्तृत वर्गीकरण, स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षणों के बारे में पद चुके हैं। इस इकाई का उद्देश्य है कि आप कॉर्डेटस के विभिन्न वर्गों के सामान्य लक्षण, उनका वर्गीकरण तथा उनके प्रारूपों के स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षणों के बारे में जान सके।

इस इकाई में विभिन्न प्रारूपों के बाह्य लक्षणों के साथ उनके चित्र भी दिये गये है। जिससे आप को उन प्रारूपों की आकृति का ज्ञान भी हो सके।

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

जन्तु जगत् को दो बड़े समूहों में बांटा जाता है- नॉन-कॉर्डेटा एवं कॉर्डेटा। कॉर्डेटा को जन्तु जगत् का अंतिम संघ भी कहा जाता है। कॉर्डेटा शब्द 1880 में **बालफोर** (Balfour) ने दिया था। कॉर्डेटा दो यूनानी शब्दों से बना है, इसमें कॉर्ड (Chord) शब्द का मतलब है मोटी रस्सी तथा एटा (ata) शब्द का मतलब है, रखना। कॉर्डेटा संघ के जन्तुओं में एक मोटी रस्सी के समान नोटो कॉर्ड (notochord) जीवन की किसी अवस्था में अवश्य पायी जाती है। जन्तु-जगत् के वे जन्तु जिनमें नोटोकॉर्ड जीवन की किसी अवस्था में नहीं पायी जाती है, उन्हें **नॉन-कॉर्डेटा** (non chordata) में रखते हैं।

संघ-कॉर्डेटा के सदस्य विभिन्न प्रकार के आवासों में पाये जाते हैं। जैसे- स्थलीय, जलीय, वृक्षाश्रयी, वायवीय, आदि। 90-95 % जन्तु नॉन-कॉर्डेटा समूह के विभिन्न संघों में आते हैं तथा केवल 3-5 % जन्तु कॉर्डेटा संघ में आते हैं। कॉर्डेटा संघ में पिसीज समूह सबरने बड़ा तथा एम्फिबिया वर्ग सबसे छोटा समूह है।

10.2 कॉर्डेटा-वर्गीकरण (Chordata - Classification)

निसन्देह जन्तु समूहों में संघ कॉर्डेटा सदरने श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस समूह में न केवल मानव जाति वरन् मानव जाति से सम्बन्धित सभी जैव-प्रकार सम्मिलितकिये जाते हैं। इस संघ की विशिष्ट उद्विकासिक महत्ता भी है क्योंकि केवल यही एक ऐसा संघ है जिसके अन्तर्गत अत्यन्त आदि प्रकार के कॉर्डेटस जैसे सदस्य तथा अत्यन्त विकसित जटिल एव संगठित मानव जाति नियोजित किये जाते हैं।

कॉर्डेट गुट का विशिष्ट पूर्वजीय इतिहास अर्थात् उद्विकासिक इतिहास का तुलनात्मक ज्ञान ठीक से उपलब्ध नहीं है किन्तु इसका दूर का रिश्ता टिरोब्रेन्क हैमीकॉर्डेटा (Pterobranch hemichordates) से मिलता है क्योंकि दोनों समूहों का भ्रूणीय विकास समान होता है तथा दोनों समूहों के सदस्यों में जोड़ीदार ग्रसनीय क्लोम-दरारें (pharyngeal gill slits) उपस्थित होती हैं। साथ ही एक खोखली मध्य-पृष्ठीय तंत्रिका-रज्जु की उपस्थिति एक अन्य लक्षणात्मक समानता मानी जाती है। कॉर्डेट में दो अन्य विशिष्ट लक्षण उपस्थित हैं अर्थात् छड़ रूपी नोटोकॉर्ड (notochord) की उपस्थिति तथा **आन्तरांगी समखण्डन** (metameric segmentation)। ये दोनों लक्षण कॉर्डेट समूह में स्वतंत्र रूप से उद्गमित हुए हैं।

कॉर्डेटा संघ के प्रमुख लक्षण संक्षिप्त में निम्नलिखित हैं -

1. एक छड़-रूपी मध्य-पृष्ठीय आधारी संरचना, **नोटोकॉर्ड** (notochord), की आरम्भिक जीवन अथवा पूर्ण जीवन-काल में उपस्थिति।
2. एक खोखली मध्य-पृष्ठीय तत्रिका-रज्जु (nervecord) की उपस्थिति।
3. जोड़ीदार **ग्रसनीय क्लोम दरारों** (pharyngeal gill slits) की आजीवन अथवा आरम्भिक जीवनकाल में उपस्थिति।
4. इन जन्तुओं में भ्रूणीय विकास प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रकार का होता है।
5. एक गुद-पश्च पुच्छ (post anal tail) प्राय: उपस्थित होती है।

संघ कॉर्डेटा में लगभग 50,000 जीवित जातियाँ सम्मिलित की जाती हैं जिन्हें प्राय: तीन उपसंघों (subphyla): यूरोकॉर्डेटा (Urochordata) अर्थात् टयूनिकेटा (Tunicata); सिफेलोकॉर्डेटा

(Cephalochordata); तथा वर्टीब्रेटा (Vertebrate) में रखा जाता है। इन तीन उपसंघों को सामान्यतया दो समूहों (groups) के अन्तर्गत रखा जाता है - एक्रेनिएटा (Acranita) तथा क्रेनिएटा (Craniata)।

10.3 प्रोटोकॉर्डेटा अर्थात् एक्रेनिएटा (Protochordata or Acraniata)

इस समूह के अन्तर्गत कपाल (cranium), जबड़े (jaws), कशेरुकायें (vertebrae) तथा संयुक्त उपाग (paired appendages) रहित जन्तु रखे जाते हैं।

10.3.1 उपसंघ - यूरोकॉर्डेटा (Sub - Phylum - Urochordata)

ये प्राय : स्थानबद्ध एवं निवही (colonial) जन्तु होते हैं, इनका शरीर एक पारदर्शक या पारभाषक खोल अर्थात् आवरण (test or tunic) से ढका रहता है। वयस्क में अनेकानेक ग्रसनीय क्लोम - छिद्र उपस्थित होते हैं किन्तु नोटोकॉर्ड का प्राय : अभाव होता है तथा तंत्रिका रज्जु अविकसित होती है। लार्वा अनस्था मेंढक के टेडपोल - सदृश्य होता है जो स्वतंत्रचारी तथा क्लोम दरारों, मध्यपृष्ठीय नोटोकॉर्ड एवं तंत्रिका रज्जु युक्त होता है। नोटोकॉर्ड एव तंत्रिका रज्जु पुच्छ भाग में सीमित होती हैं। इस उपसंघ में लगभग 2000 जातियाँ सम्मिलित की जाती हैं जिन्हें निम्नलिखित तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है:

1. **वर्ग एसीडियेसिया** (Class Ascidiacea). इन्हें सामान्यतया समुद्री - पिचकारी (sea - squirts) की संज्ञा दी जाती है। इनके वयस्क एकल अथवा निवही, स्थानबद्ध तथा पुच्छ, तंत्रिका रज्जु अथवा नोटोकॉर्ड रहित होते हैं। मस्तिष्क का निरूपण एक तंत्रिका - गुच्छ (ganglion) करता है; अनेक ग्रसनीय क्लोम दरारें उपस्थित होती हैं; स्थायी खोल (test) सुविकसित होता है, तथा लार्वा अवस्था यदि उपस्थित होता है तो वह एक स्वतंत्र - चारी, अभोजी (nonfeeding) पुच्छ युक्त टेडपोलनुमा (tadpole - like) होता है जिसकी पुच्छ भाग में नोटोकॉर्ड एवं तंत्रिका - रज्जु उपस्थित होते हैं। उदाहरण - **एसीडिया** (Ascidia), **हर्डमेनिया** (Herdmania), **बॉट्र** लिस (Botryllus)।

2. **वर्ग - थैलेसिया** (Class - Thaliacea). इन्हें सामान्यतया **श्रृखलित टयूनिकेट** (Chained tunicates) कहते हैं। ढोल सदृश्य वयस्क स्वतंत्रचारी किन्तु पुच्छ, तंत्रिका - रज्जु तथा नोटोकॉर्ड रहित होता है। शरीर अनेक वृत्ताकार पेशीय छल्लों, अनेक क्लोम दरारों एवं स्थायी सुविकसित खोल (test) युक्त होती है; लार्वा अवस्था यदि उपस्थित होता है तो वह स्वतंत्रचारी, अपोषी पुच्छयुक्त **टेडपोलनुमा** होता है जिसमें नोटोकॉर्ड एवं तंत्रिका - रज्जु पुच्छ भाग में सीमित होती हैं। उदाहरण - **सैल्पा** (Salpa), **डोलियोलम** (Doliolum)।

3. **वर्ग लार्वेसिया** (Class Larvacea) : इन्हें **एपेन्डीक्यूलेरियन** (appendicularians) भी कहा जाता है। वयस्क स्थायी लार्वा - सदृश्य पुच्छ युक्त होते हैं जिसमें मध्य पृष्ठीय नोटोकॉर्ड एवं तंत्रिका - रज्जु सीमित रहती है; केवल एक जोड़ी ग्रसनीय क्लोम - दरारें उपस्थित होती हैं, तथा खोल (test) अस्थायी प्रकार का होता है। उदाहरण - **एपेन्डीक्यूलेरिया** (Appendicularia), **ऑइकोप्लूरा** (Oikopleura)।

(i) हर्डमानिया (Herdmania)

संघ (Phylum) : कॉर्डेटा (Chordata)

उपसंघ (Subphylum) : एक्रेनिएटा (Acranita)

वर्ग (Class) : यूरोकॉर्डेटा (टयूनिकेटा)

गण (Order) : एसीडिएसिया (Ascidiacea)

श्रेणी (Genus) : हर्डमानिया (Herdmania)

1. छेड़ने पर जन्तु क्लोम तथा एट्रियल छिद्रो से जल की तीव्र पिचकारी फैंकता है तथा इसीलिए इसे " समुद्री पिचकारी " की संज्ञा दी जाती है।
2. विश्वव्यापी , समुद्री स्थानबद्ध जन्तु जो समुद्र के पैंदे में अपने चौड़े मांसल पाद (foot) द्वारा किसी आधार - वस्तु से संलग्न पाये जाते हैं।

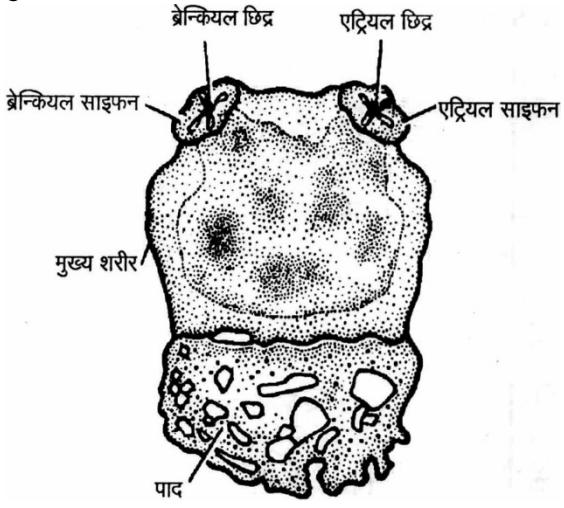

चित्र 10.1 : हर्डमानिया

3. यह जन्तु **प्रतिगामी - कायान्तरण** (retrogressive metamorphosis) का एक उचित उदाहरण है क्योंकि मुक्तजीवी जलीय लार्वा में वयस्क की अपेक्षा अधिक उन्नत एव विकसित कॉर्डेटा के ल क्षण मिलते हैं।
4. **पश्वों** से चपटा अण्डाकार शरीर लम्बाई में लगभग 10 से. मी. होता है।
5. शरीर एक चीमड़ अल्प - पारदर्शक मोटे एवं लचीले कवच (test or tunic) द्वारा ढका होता है। कवच टयूनीसिन (tunicin) नामक सेज्यूलोस - सदृश्य पदार्थ का बना होता है।
6. शरीर के ऊपरी स्वतन्त्र भाग पर **ब्रेन्कियल** (branchial) तथा **एट्रियल साइफन** (atrial siphon) नामक दो उभार होते हैं, जिनमें क्रमश : शकयल (मुखीय) तथा एट्रियल छिद्र उपस्थित होते हैं।
7. हर्डमानिया उभयलिंगी (hermaphrodite) प्राणि है। इसमें बाह्य निषेचन होता है जो समुद्री जल में होता है।

10.3.2 उपसघ-सेफेलोकॉर्डेटा (Subphylum - Cephalochordata)

ये छोटे, इकहरे, नलिकाकार, आन्तरागीय विखण्डित (metametrically segmented), मछली सदृश्य समुद्री जीव, जिनमें मध्यपृष्ठीय नोटोकॉर्ड एवं खोखली तंत्रिका - रज्जु पूरे शरीर की लम्बाई में फैली होती हैं; अनेक जोड़ीदार पार्श्वीय ग्रसनीय क्लोम दरारें एक बाहरी एट्रियम

(atrium) नामक गुहा में स्थित होती है। इसमें दो जीवित श्रेणियाँ (genera) सम्मिलित हैं **ब्रेन्क्रियोस्टोमा** (Branchiostoma) तथा **एसिमेट्रॉन** (Asymmetron)।

(i) **एक्रऑक्सस** (Amphioxux)

संघ - **कार्डेटा** (Phylum - Chordata)

उपसंघ - **एक्रेनिएटा** (Subphylum - Acrainata)

वर्ग - **सिफेलोकॉर्डेटा** (Class - Cephalochordata)

श्रेणी - **ब्रेन्क्रियोस्टोमा** (Genus -Branchiostoma)

विश्वव्याप्त समुद्री जन्तु जो तट के निकट समुद्री-रेत में धँसा पाया जाता है। मछली -रूपी शरीर लगभग 2 से 6 से. मी. लम्बा होता है। शरीर पार्श्वो से दबा होता है। अग्र अन्त पर एक प्रोथ अर्थात् रॉस्ट्रम (rostrum) होता है जिसके अधर पर **ओरल - हुड** (oral hood) नामक रचना होती है। ओरल - हुड के किनारों पर 20 या अधिक मुखीय -सिराइ अर्थात् **मुखीय - स्पर्शक** (oral - tentacles) लगे होते हैं। ओरल - हुड एक गुहिका, जिसे मुख -गुहा (buccal cavity) कहते हैं, को घेरे होता है। देह के मध्य -पृष्ठ पर एक पृष्ठ पखना (dorsal fin) स्थित होता है जो पश्च अन्त पर एक पुच्छ -पखना (caudal fin) में बदल जाता है। अधर -तल पर पुच्छ -पखना पश्च भाग में एक मध्य अधर -पखने (ventral fin) में बदल जाता है जो **एट्रियोपोर** (antripore) नामक छिद्र पर समाप्त होता है। ब्रेन्क्रियोस्टोमा में लिंग पृथक् होते हैं परन्तु लैंगिक द्विरूपता (sexual dimorphism) अर्थात् नर व मादा में पारस्परिक दैहिक विभेदन नहीं पाया जाता है। ब्रेन्क्रियोस्टोमा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जन्तु है तथा आदर्श रूप में कॉर्डेट संघ के सभी लक्षण दर्शाता है, किन्तु अत्यन्त प्राचीन होने के कारण इसमें उपसंघ बर्टीब्रेटा के आदर्श लक्षण नहीं होते हैं।

10.4 क्रेनिएटा (Carniata)

10.4.1 उपसंघ - वर्टीब्रेटा (Sub-phylum - Vertebrata)

इस समूह में शेष सभी कॉर्डेट प्राणी सम्मिलित किये जाते हैं जिनकी लक्षणात्मक विशेषताएँ हैं. सुस्पष्ट कपाल (करोटि) (cranium (skull)) , आतरांगी चाप (visceral arches) तथा कशेरुक - दण्ड (vertebral column), जो उपास्थि (cartilage) अथवा अस्थि (bone) के बने होते हैं; नोटोकॉर्ड कपाल के आधार से पुच्छ के अंत तक प्रसारित रहती है; मध्यपृष्ठीय तंत्रिका - रन्तु का अग्र अंत एक सुविकसित अपेक्षाकृत बड़े मस्तिष्क (brain) में विभेदित होता है; शीर्ष सुस्पष्ट होता है जिस पर जोड़ीदार संवेदांग (घ्राण, दृक एवं श्रवण) उपस्थित होते हैं।

(i) प्रभाग - ऐग्नेथा (Division - Agnatha)

जबड़ो एवं जोडीदार उपांगों का अभाव हो ता है; इसमें दो वर्ग (classes) **प्लेकोडर्माइ** (Placodermi) तथा **साइक्लोस्टोमेटा** (Cyclostomata) आते हैं। प्लेकोडर्माइ विलुप्त (extinct) है एवं इसकी कोई जीवित जाति नहीं मिलती है।

वर्ग - साइक्लोरटोमेटा (Class - Cyclostomata)

(i) हनुओ (jaws) का होता है तथा मुख चूषक प्रकार (suctorial) का होता है।

(ii) केवल एक नासाछिद्र (nostril) उपस्थित।

(iii) संयुक्त पखनों (paired fins) का अभाव।

(ii) **प्रभाग - ग्नैथोस्टोमेटा** (Division - Gnathostomata)

शेष सभी कशेराकियों (vertebrates) में आदर्श रूप से जबड़े तथा जोड़ीदार उपांग उपस्थित होते हैं। इन्हें दो प्रमुख महावर्गो (super classes) अर्थात् सीरीज (series) में उपविभाजित किया जाता है; **पिसीज़** (Pisces) तथा **टेट्रोपोडा** (Tetrapoda)।

10.5 महावर्ग - पिसीज (Super class - Pisces)

वर्ग - पिसीज का वर्गीकरण (Classification of super class - Pisces)

जलीय, तर्कु - आकार (spindle - shaped) दोनों पार्श्व से चपटा शरीर; क्लोम द्वारा श्वसन् त्वचा पर डर्मी शल्क dermal scales)। इस महावर्ग में तीन प्रमुख वर्ग (classes) रखे जाते हैं प्लेकोडर्माइ (Placodermi) जो एक विलुप्त (extinct) वर्ग है तथा **कॉन्ड्रिक्थीज** (Chondrichthyes) तथा **ऑस्टिकथीज** (Osteichthyes)।

10.5.1 वर्ग - प्लेकोडर्माई (Class - Placodermi)

इस वर्ग के सभी सदस्य सिलूरियन काल में पाये जाते थे जो बाद में पूर्णतया लुप्त हो चुके हैं।

10.5.2 वर्ग - कॉण्ड्रिक्थीज (Class - Chondrichthyes)

1. त्वचा " चिम्मड़ ' ' (leathery) होती है तथा प्लेकॉएड शल्कों (placoid scales) से ढकी होती है।
2. दोनों प्रकार के पखने (fins) - मध्यस्थ असंयुक्त पखने तथा जोड़ीदार अर्थात् अंस (pectoral) एवं श्रोणि (pelvic) पखने उपस्थित होते हैं जिनमें आधारी ककांलीय पखने - रश्मिया (fin rays) उपस्थित होती हैं। नरों में श्रोणि पखने मैथुनांग (intromittant organs) अ र्थात् क्लेस्पर (claspers) में विभेदित होते हैं।
3. अंत : कंकाल पूर्ण रूप से उपास्थिल (cartilaginous) होता है, अत: वर्गीय नामांकन **काण्ड्रि क्थीज** (011011 है (chondrichthyes) (कॉन्ड्रॉस = उपास्थि + इक्थीस = मछली); कशेरुकाएँ संख्या में अधिक, सम्पूर्ण एवं पृथक होती हैं; नोटोकॉर्ड भी उपस्थित होती है।
4. मुख अ धरीय होता है जिसमें अनेक पंक्तियों में इनेमल मढ़े दंत उपस्थित होते हैं; नासाछिद्र मुखगुहा से सम्बन्धित नहीं होते हैं; आंत्र स्क्रोल - वाल्व (scroll valve) युक्त होती है।
5. परिसंचरण तंत्र 2 - को शीय हृदय (1 आलिन्द एवं 1 निलय), महाधमनी - चापों (aortic arches) की जोडि याँ युक्त होता है। केन्द्रकयुक्त अण्डाकार लाल रक्त कणिकाएँ उपस्थित होती हैं।
6. श्वसन तंत्र में 5 से 7 पार्श्वीय क्लोमों की जोड़ियाँ पृथक गिल-दरारों में उपस्थित होती है
7. शीतरक्तीय अर्थात् पोइकीलोथर्मस (poikilothermous) प्राणी, जिनका दैहिक तापमान वातावरण के साथ परिवर्तित होता रहता है।
8. लिंग पृथक होते हैं तथा जनद (gonads) जोड़ीदार होते हैं; निषेचन आन्तरिक होता है अण्ड बड़े एवं पीतक युक्त होते हैं; ये अण्डप्रजक (oviparous) अथवा अण्ड-जैव प्रजक(ovo-vivaparous) होते हैं; भ्रूणीय विकास प्रत्यक्ष (direct) होता है।

9. इस वर्ग में शार्क, रे एवं काइमेरा (sharks , rays and chimaera) नामक मछलियाँ सम्मिलित की जाती हैं जो कशेरुकियो की सबसे निम्न जीवित प्रकार मानी जाती हैं। क्योंकि यह समूह अत्यन्त प्राचीन है इसलिए यह विशेष जैविक महत्व का समझा जाता है।
10. इस वर्ग में लगभग 250 जीवित जातियाँ ज्ञात हैं।
11. वर्ग कॉन्ड्रीक्थीज़ को तीन विलुप्त गुणों : क्लैडोसिलेचाई (Clasdoselachii), प्लूरोकैन्थोडी (Pleurocanthodi) एवं ब्रेडोडॉन्टी (Bradodonti) तथा दो जीवित गणों- **सिलेचाइ** (Selachi) एवं **होलोसिफेलाइ** (Holocephali) में वर्गीकृत किया जाता है।

(i) स्कालियोडोन - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Scoliodon- Habits , Habitat and External Characters)

संघ (Phylum)	: कार्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum)	: वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division)	: नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Superclasses)	: पिसीस (Pisces)
वर्ग (Class)	: कॉन्ड्रिक्थीज (Chondrichthyes)
उपवर्ग (Subclass)	: इलास्मोब्रेन्क्राई (सिलेचाई) (Elasmobranchi (Selachi)
गण (Order)	: प्लूरोट्रिमेटा (Pleurotremata)
श्रेणी (Genus)	: स्कोलियोडॉन (Scoliodon)

1. समुद्री मछली जो हिन्द महासागर में मिलती है।
2. परभक्षी है तथा झुण्डों (groups or schools) में रहकर दूसरे समुद्री जीवों का शिकार करती है। इनमें सूंघने की क्षमता कुत्ते के समान तेज होती है, अत: इसीलिए इसे कुत्ता मछली (dog- fish) भी कहते हैं।
3. शरीर लगभग 50 सेमी. लम्बा होता है व भूरे (steel grey) रंग का होता है।
4. शरीर तेजी से तैरने हेतु तर्कु-आकार (spindle-shaped) होता है।
5. शरीर (body) शीर्ष, धड़ एवं पुच्छ में विभक्त होता है।
6. शीर्ष अग्र दिशा में एक नुकीले प्रोथ (snout) के रूप में होता है। शोर्ष के पार्श्वों पर एक- एक जोड़ी नेत्र व नासा छिद्र (nostril) व अधर तल पर एक अर्धचन्द्राकार मुख होता है।
7. नेत्रों के पीछे पार्श्वों में 5 जोड़ी क्लोम दरारें (gill-slits) उपस्थित होती हैं।

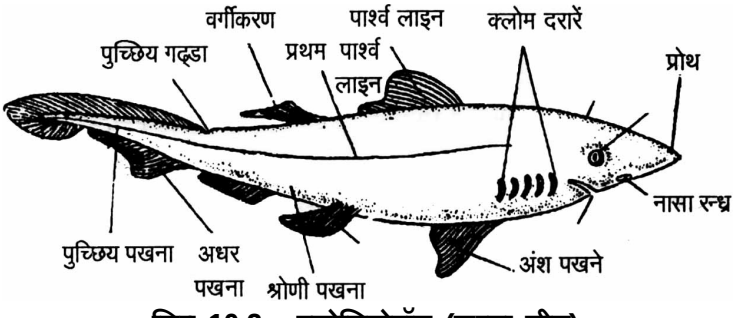

चित्र 10.2 : स्फोलियोडॉन (कुत्ता मीन)

8. शरीर पर मध्यस्थित अयुग्मित (unpaired) व पार्श्व-स्थित युग्मित-पखने (fins) होते हैं। इसमें अयुग्मित पखने दो पृष्ठ-पखने (dorsal fins), एक अधर-पखने (ventral fins) व एक पुच्छ-पखने (caudal fin) होते हैं।
9. संयुक्त-पखने अग्र अंस पखने (pectoral fin) व पिछला श्रोणि पखने (pelvic fin) होते हैं।
10. श्रोणि पखनों के बीच में अवस्कर-छिद्र (cloacal aperture) होता है।
11. नर स्कोलियोडॉन में श्रोणि पखनों से लगे एक जोड़ी आलिंगक (claspers) अथार्त मेथुनी- अंग (intromittant organs) होते हैं।

10.5.3 वर्ग- ऑस्टिक्थीज (Class - Osteichthyes)

(i) लेबिओ - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Labeo - Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum) : कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum) : वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division) : ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class) : पिसीस (Pisces)
वर्ग (Class) : ऑस्टिक्थीज (Osteichthyes)
उपवर्ग (Subclass) : एक्टीनोप्टेरिजिआई (Actinopterygii)
गण (Order) : टिलिओस्टाई (Teleostei)
श्रेणी (Genus) : लेबियो (labeo)

1. अलवणित जल की मछली जो भारतीय झीलों एवं नदियों में वास करती है।
2. पार्श्वो से चपटी देह पृष्ठ-अधर दिशा में पतवार-रूपी होती है चाँदी-समान चमकती देह नीली, पीली एवं गुलाबी आभायुक्त होती है व लगभग 20 सेमी. लम्बी होती है।
3. बड़े शल्क-रहित शीर्ष परमोटे होठों सेघिरा अग्रस्थ मुख उपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त पार्श्व बड़े नेत्रों, पृष्ठ-पार्श्व अग्रस्थ नासाछिद्र तथा छोटे **मेक्सिलरी स्पर्शकों** (maxillary) की जोड़ियाँ, उपस्थित होती हैं।
4. धड़ बड़े परिमाण के पारदर्शक साइक्लॉएड-शल्कों द्वारा ढ़की होती हैं।

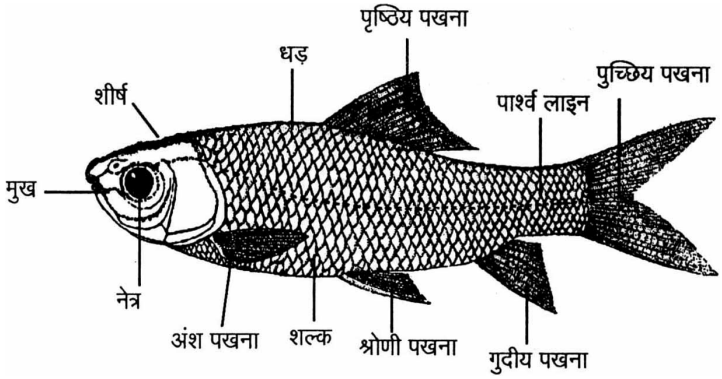

चित्र 10. 3 : लेबियो (रोहु)

5. शीर्ष के पीछे पार्श्वीय अस्थिल क्लोमछद (operculum) 4 जोड़ी क्लोमों को ढ़के रहता है।

6. संयुक्त पार्श्वक अंस (pectoral) तथा श्रोणि (pelvic) पखने तथा असंयुक्त मध्यस्थित एक - एक पृष्ठ, गुद (अधर) तथा पुच्छ - पखने उपस्थित होते हैं।
7. पुच्छ होमोसर्कल (homocercal) होती है जिसके दोनों पिण्ड समान होते हैं।
8. कार्प एक अत्यन्त महत्वपूर्ण खाद्य - मीन है तथा पर - प्रजनन एवं कृत्रिम प्रजनन विधियो द्वारा इसकी अनेक विशिष्ट उपजातियाँ बनाई गई हैं।

10.5.4 महागण - डिप्नाई (Super order - Dipnoi)

महागण डिप्नोई(फुफ्फुसीय - मछलियां) [Super order - Dipnoi (Lung - fishes)]: प्रीमैक्सीला एवं मैक्सीला अस्थियाँ अनुपस्थित होती हैं; वायु - आशय (air blader) फुफ़्फ़ुस - समान होता है; के वल तीन जीवित जातियाँ ज्ञात हैं - ऑस्ट्रेलिया की **नियोसिरेटोडस** (Neoceratodus); दक्षिण अमेरिका की **लेपिडोसाइरन** (Lepidosiren); तथा अफ्रीका की प्रोटॉप्टेरस (Protoerus)।

(i) फुफ्फुसीय मीन - स्वभाव. वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Labeo - Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum) : कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum) : वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division) : ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class) : पिसीस (Pisces)
वर्ग (Class) : ऑस्टिक्थीज (Osteichthyes)
उपवर्ग (Subclass) : कोएनिक्यीज (choanichythes)
गण (Order) : डिप्नोई (Dipnoi)
श्रेणी (Genus) : प्रोटॉप्टेरस (Protopterus)

1. अल्वाणित जल की मछली जो पश्चिम अफ्रीका की नदियों एवं झीलों में वास करती है।
2. नलाकार देह लघभग 2.5 सेमी. लम्बी होती है।

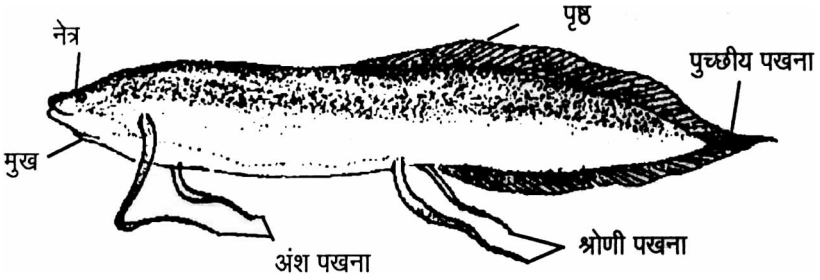

चित्र 10.4 : प्रोटॉप्टेरस (फुफ्फुस-मीन)

3. शीर्ष पर एक दंतल-प्लेट (dental plate) युक्त अग्रस्थ मुख, एक जोड़ी पार्श्व छोटे नेत्र एवं बाह्य नासाछिद्र उपस्थित होते हैं। अंतनासाछिद्र मुख में खुलते हैं।
4. संयुक्त अंस (pectoral) तथाf श्रोणि पखने (pelvic fins) पिण्डकयि (lobed), पतले एवं लम्बे होते हैं।
5. असंयुक्त्त पखने में से प्रथम पृष्ठ तथा गुद (अधर) पखने अनुपस्थित होते हैं। द्वितीय पृष्ठ-पखने पुच्छ-पखने से समेकित होता है।

6. पुच्छ **डाईफसिर्कल** (diphycercal) प्रकार की होती है जिसमें तीन पिण्ड होते हैं। मध्य का पिण्ड बाहर को निकला रहता है।
7. शीर्ष के पश्च में जोड़ीदार पार्श्व क्लोम-दरारें उपस्थित होती हैं।
8. इस मछली में एक जोड़ी फुफ्फुस (lungs), श्वासनली (trachea) तथा ग्लाटिस (glottis) उपस्थित होता हैं। फुफ्फुसो में रक्त का लेन-देन फुफ्फुसीय शिरा एवं धमनी द्वारा होता है। इस मछली में श्वसन प्रमुख रूप से वायवीय प्रकार का होता है।
9. गर्मियों में जब इनके वास-स्थान का जल सूख जाता है तब ये (mud tubes) में **ग्रीष्म निष्क्रियता** (aestivation) के अन्तर्गत 8 महीने तक जीवित रह जाती हैं।
10. इस समूह की मछलियों को उभयचरों (Amphibians) का पूर्वज समझा जाता है।

10.6 महावर्ग - टेट्रापोडा (Super class - Tetrapoda)

दो जोड़ी पाद (limbs) उपस्थित होते हैं; त्वचा, शृंगृत (cornified) होती है; वायुवीय श्वसन, फुफ्फुसीय प्रकार से होता है; इस समूह में 4 वर्ग रखे जाते हैं - **एम्फिबिया** (Amphibia), **रेप्टीलिया** (Reptilia), **एवीज़** (Aves), तथा **मैमेलिया** (Mammalia)।

10.6.1 वर्ग - एम्फिबिया (Class-Amphibia)

1. उभयचर जन्तु, जिनकी शल्करहित किन्तु अत्यन्त ग्रंथिल त्वचा गीली अथवा नम (moist) होती है।
2. गमन के लिए आदर्श रूप से दो जोड़ी पाद (limbs) उपस्थित होते हैं; प्रत्येक पाद पर 4 - 5 नखर रहित अंगुलियाँ उपस्थित होती हैं; किन्हीं में अंगुलियाँ एवं पाद अविकसित अथवा अनुपस्थित होते हैं।
3. एक जोड़ी नासाछिद्र (nostrils) मुख गुहा से सम्बन्धित रहते हैं; नेत्रों पर गतिशील पलकें (moveable eye lids) उपस्थित होती हैं; मुख गुहा में महीन दंत उपस्थित होते है जिनसे बहीवर्तनशील होती है।
4. अस्थिल अंत : कंकाल उपस्थित होता है; करोटि पर 2 ऑक्सीपीटल अस्थिकंद (occipital condyles) उपस्थित होते हैं; पसलियाँ (ribs) यदि उपस्थित होती हैं तो वे उरोस्थि अर्थात् स्टर्नम (sternum) से संयोजित नहीं होती हैं।
5. रक्त परिसंचरण तंत्र 3 - कोशीय हृदय (2 अलिन्द एवं 1 निलय) युक्त होता है; लाल रक्त कणिकाएँ अण्डाकार एवं केन्द्रकयुक्त होती हैं।
6. श्वसन क्लोम, फुफ्फुस तथा मुखीय - अस्तर (buccal lining) द्वारा होता है।
7. शीतरक्तयि अर्थात् पोइकीलोथर्मस (poikilothermous); दैहिक तापमान वातावरण पर निर्भर करता है।
8. निषेचन बाह्य अथवा आन्तरिक प्रकार का होता है; प्राय : अण्डप्रजक (oviparous) होते हैं। एत; जलीय लार्वा अवस्था टेडपोल (tadpole) उपस्थित होती है जो कायान्तरण के पश्चात् वयस्क में परिवर्तित होती है।
9. वर्ग एम्फ़िबिया की लगभग 2500 जीवित जातियाँ ज्ञात हैं।

10. जैसा कि वर्ग का नाम दर्शाता है, इस समूह की अधिकाश जातियाँ उभयचर अर्थात् अपना जीवन अलवणित जल (fresh water) एवं स्थल (land) में बिताती हैं।

वर्ग - एम्फिबिया का वर्गीकरण (Classification of class - Amphibia)

एम्फ़िबीया वर्ग का आ धुनिक वर्गीकरण जी. किंग्सले नोबल ने 1924 में प्रस्तुत किया था। पूर्व में सभी विलुप्त समूहों का उपवर्ग (Sub class) **स्टीगोसेफैलिया** (Stegocephalia) तथा जीवित समूहों को उपवर्ग लिस्स एम्फिबिया में वर्गीकृत किया गया है -

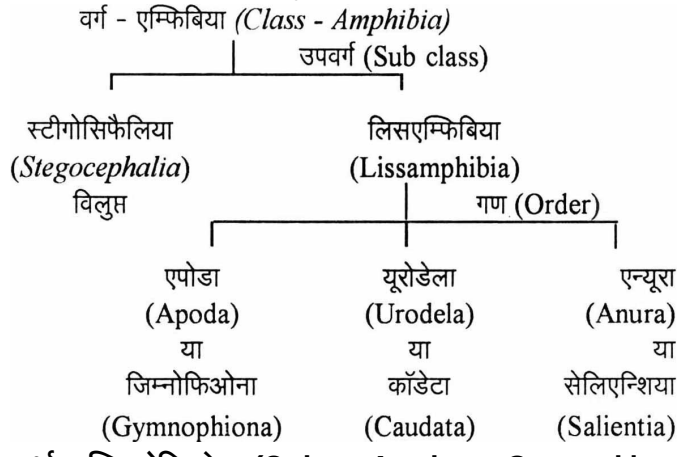

(i) गण - एपोडा अर्थात् जिम्नोफिओना (Order - Apoda or Gymnophiona)

शरीर भूमिगत जीवन के लिए अत्यन्त विभेदित अर्थात् अनुकूलित होती है; कृमिरूपी नलाकार देह मेखला एवं पाद रहित होती है; चिकनी एवं ग्रंथिल त्वचा, अनुप्रस्थ खाँच (transverse furrows) युक्त होती है; किन्हीं सदस्यों की त्वचा के नीचे कुछ शल्क धंसे उपस्थित होते हैं; नासाछिद्र एवं नेत्रों के बीच एक छोटा मध्यस्थ स्पर्शक (tentacles) उपस्थित होता है पलक-विहीन नेत्र, त्वचा अथवा मैक्सीलरी अस्थियों के नीचे धंसी रहती है; पुच्छ अत्यन्त छोटी होती है तथा गुदा छिद्र देह के पश्च-अन्त के निकट उपस्थित होता है; नर में एक बहिवर्तित मैथुनांग (शिश्न) उपस्थित होता है; इस गण की लगभग 5.5 जीवित जातियाँ ज्ञात हैं। उदाहरण - **इक्थायोफिस** (Inchthyophis), **गिगिनोफिस** (Gegenophis) , **जिम्नोफिस** (Gymnophis) आदि।

इक्थियोफिस - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Labeo - Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum)	: कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum)	: वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division)	: ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class)	: टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class)	: एम्फिबिया (Amphibia)
गण (Order)	: एपोड़ा = अर्थात जिम्नोफिओना (Apoda or Gymnophino)
श्रेणी (Genus)	: इक्थियोफिस (Ichthyophis)

1. भूमिगत, कृमि-रूपी जन्तु जो नम अथवा गीली भूमि में बिल बनाकर रहते हैं। भारत में **इक्थायोफिस** (Ichthyophis) तथा **जिम्नोफिस** (Gymnophis) नामक श्रेणियाँ सामान्य रूप से पश्चिमी-घाट के क्षेत्र में मिलती हैं।
2. लम्बा नलाकार पाद रहित शरीर, लगभग 20-30 सेमी. लम्बा होता है।
3. त्वचा नम एवं चिकनी होती है तशा इसका तल मुद्राकार छल्लों में बंटा होता है। त्वचा के बाहर शल्क दिखाई नहीं देते है क्योंकि ये चर्म अर्थात् डर्मिस में स्थित होते हैं।
4. अपेक्षाकृत छोटे तथा पृष्ठ-अधर तल में दबे सिर पर एक मुख तथा नासाछिद्रों की जोड़ी होती है। नेत्र कार्यहीन होते हैं तथा इन्हें त्वचा ढके रहती है।

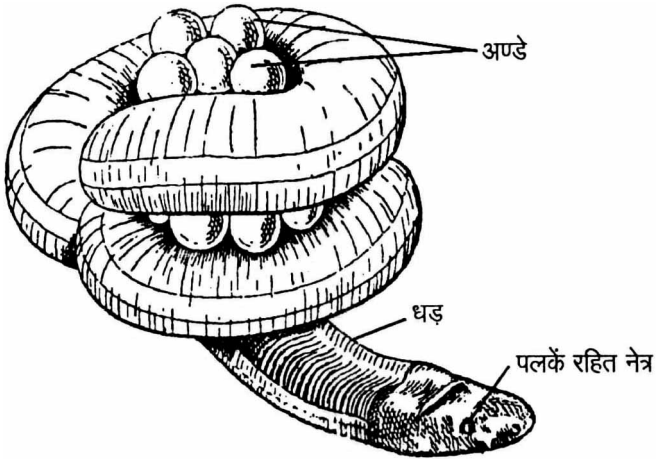

चित्र 10.5 : इाल्बशाछ (अन्धा-कृमि)

5. नेत्रों तथा नासाछिद्रों के बीच के स्थान पर एक जोड़ी संवेदनशील स्पर्शक होते हैं जो गड्ढो में स्थित होते हैं तथा आवश्यकता होने पर बाहर निकाले जाते हैं।
6. पश्च अंत से कुछ पहले अधर तल पर एक गुदा-छिद्र होता है। अत: जन्तु में एक अपेक्षाकृत छोटी-सी पुच्छ भी होती है।
7. नर में हुक्युक्त मैथुन-अंग होता है तथा निषेचन आन्तरिक प्रकार का होता है।
8. **इक्थियोफिस** की मादा **पैतृक रक्षण** (Parental care) दर्शाती है। मादा निषेचित अण्डों को, इनके लार्वा बनने तक इन्हें घेर कर सेती है।
9. कशेरुकाएँ बहुत **उभयगर्ती** (amphicoelus) होती हैं।

(ii) **गण-यूरोडेला अर्थात् कॉर्डेटा** (Order - Urodela of Caudata)

इस गण में "छिपकली सदृश्य" सैलामेण्डर (salmanders) सम्मिलित किये जाते हैं जिनका शरीर आदर्श रूप से स्पष्ट शीर्ष, ग्रीवा, धड़ एवं पुच्छ में बंटा होता है; दो जोड़ी पाद प्राय: एक ही परिमाण के उपस्थित होते हैं; लार्वा जलीय होता है तथा इसके दोनों हनुओं (jaws) पर दंत उपस्थित होते हैं। सेलामेण्डरो की लगभग 240 जीवित जातियाँ जात हैं जिनमें से कुछ स्थायी चिरभ्रूणीय (neotenous) होती हैं।

सेलामेन्डर - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Salamender - Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum) : कॉर्डेटा (Chordata)

उपसंघ (Subphylum) : वर्टीब्रेटा (Vertebrata)

प्रभाग (Division) : ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class) : टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class) : एम्फिबिया (Amphibia)
गण (Order) : यूरोडेला (Urodela)
कुल : एम्बिस्टोमिडी (Ambystomidae)
प्रारूप : ऐम्बिस्टोमा (Ambystoma)
श्रेणी (Genus) : ऐम्बिस्टोमा (Ambystoma)

1. थलचर, अर्ध-जलीय सैलामैण्डर जो उत्तरी अमरीका के अलवणित जल के झरनों एवं नदियों के निकट वास करता है।
2. देह छिपकली सदृश्य होती है तथा स्पष्ट शीर्ष, ग्रीवा, धड़ तथा एक अपेक्षाकृत लम्बी पार्श्वो से थोड़ी चपटी पुच्छ में विभक्त होती है।

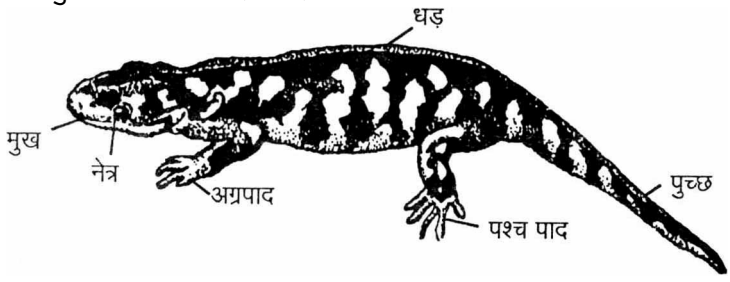

चित्र 10.6 : एम्बाइस्टोमा

3. प्राणी की त्वचा चिकनी, नम तथा पीले रंग के धब्बों युक्त काले रंग की होती है। इसलिए इसे बाघ - सैलामैण्डर ' (tiger salamander) की संज्ञा दी जाती है।
4. शीर्ष पर अग्रस्थ मुख तथा नासाछिद्रों एवं गतिमान पलकयुक्त - पूर्ण नेत्रों की जोडियाँ उपस्थित होती हैं।
5. अग्र एवं पश्चपाद पूर्ण विकसित एवं कार्यशील होते हैं।
6. वयस्कों में बाह्य - क्लोम (external gills) एवं पुच्छ - पखने (caudal fin) का अभाव होता हैं
7. एम्बाइस्टोम अपने जलीय लार्वा, जिसे एक्सॉलॉटल (Axolotl) कहते हैं, के लिए विख्यात है। एक्सॉलाटल लार्वा नियोटेनी अर्थात् पीडोजनेसिस (neoteny or paedogenesis) के तथ्य को दर्शाता है। यदि लार्वा के वास स्थान के जल में आयोडीन (iodine) का अभाव होता है तब यह वयस्क में रूपान्तरण किये बिना ही लार्वा अवस्था में ही लैंगिक - परिपक्व (sexually mature) होकर प्रजनन करने लगता है। किन्तु यदि जल में आयोडीन की मात्रा पर्याप्त होती है तब यह नियमित रूप से वयस्क में रूपान्तरित होकर फिर प्रजनन करता है।
8. इसका एक्सॉलॉटल लार्वा चिरभ्रूणता के लिए विख्यात है, जिसमें जनन ग्रंथियों का विकास हो जाता है और वह कायान्तीरत परिपक्व प्रौढ़ की भाँति जनन करता है।

(iii) गण - ऐन्यूरा अर्थात् सैलिएन्शिया (Order - Anura of Salientia)

इसके अन्तर्गत मेंढ क एवं भेक रखे जाते हैं; देह त्रिकोणाकार होती है जिसमें शीर्ष सीधे ही धड़ से मिला होता है तथा ग्रीवा एवं पुच्छ का अभाव होता है; अग्र पाद छोटे होते हैं किन्तु अपेक्षाकृत अधिक लम्बे पश्चपाद शक्तिशाली एवं माँसल होते हैं तथा तैरने एवं छलांग अथवा कूदने के काम

आते हैं; अंगुलियों के बीच जालक (web) उपस्थित होता हैं; कशेरुकाओं की संख्या सीमित अर्थात् केवल 10 होती है तथा अन्तिम कशेरुका **यूरोस्टाइल** (urostyle) होती है; बाह्य प्रकार का निषेचन होता है; जलीय टेडपोल लार्वा मछली - सदृश्य होता है जिसका शरीर बड़े अण्डाकार शीर्ष, धड़ तथा लम्बी पुच्छ - पखने युक्त पार्श्वों से दबी लम्बी पुच्छ में - विभक्त होता है। कायान्तरण द्वारा टेडपोल वयस्क में परिवर्तित होता है। इस गण की लगभग 2200 जातियाँ ज्ञात हैं।

मेंढक - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Frog - Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum) : कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum) : वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division) : ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class) : टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class) : एम्फिबिया (Amphibia)
गण (Order) : एन्यूरा (सोलिन्शिया) [Anura (salientia)]
श्रेणी (Genus) : राना (Rana)

1. अर्ध- जलचर प्राणी जो विश्वव्यापी है। भारत में बुल - फ्रॉग (bull-frog) जो लगभग 20 सेमी लम्बा होता है।
2. देह गीली व चिकनी होती है। इसका रंग गहरा हरा होता है जिस पर काले धब्बे होते हैं। एक मध्य - पृष्ठीय (mid-dorsal) पीली रेखा होती है।

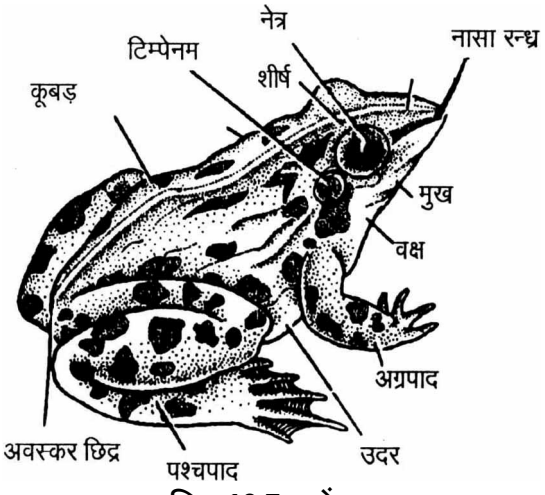

चित्र 10.7 : मेंढक

3. शरीर शीर्ष व धड़ में विभक्त होता है। ग्रीवा एवं पुच्छ नहीं होती है। त्रिकोणाकार शीर्ष चौड़े धड़ में मिला रहता है।
4. शीर्ष में अन्तिम सिरे पर चौड़ा मुख होता है जो ऊपरी व निचले हनुओं से घिरा होता है। दन्त केवल ऊपरी हनु पर होते हैं। शीर्ष पर एक जोड़ी नासाछिद्र (nostrils), एक जोड़ी पृष्ठीय पलकयुक्त (eye-lids) बड़े नेत्र, तथा नेत्रों के पीछे एक जोड़ी टिम्पैनिक झिल्लियाँ (tympanic membranes) होती हैं।

5. धड़ पर दो जोड़ी टांगे होती हैं। पिछली टाँगें लम्बी होती हैं एवं इनकी पाँच अंगुलियों के मध्य में त्वचा-जाल (web) विकसित होता है जो तैरने के काम आता है। अगली टाँगों की चार अंगुलियों पर जाल का अभाव होता है।
6. इस जन्तु का जन्तु विज्ञान कक्षाओं मे विच्छेदन (dissection) के लिए उपयोग किया जाता हैं

10.6.2 वर्ग-रेप्टीलिया (class - Reptila)

शब्द रैप्टीलिया (Reptila) का उद्‌गम इनमें गमन की विधि पर आधारित है (लेटिन Reptum = creep) अर्थात् रँगने वाले जन्तु।

1. 1 शरीर शुष्क श्रृरगीकृत (cornified) त्वचा से ढकी होती है जो प्राय: शल्क (scales), स्कयूट (scutes) अथवा प्लेट (plates) युक्त होती है; त्वचीय ग्रंथिया बहुत कम होती हैं।
2. आदर्श रूप से दो जोड़ी पाद उपस्थित होते हैं जिन पर श्रगी पैने नखरयुक्त पाँच-पाँच अंगुलियाँ उपस्थित होती हैं। किन्हीं में पाद अल्पविकसित अथवा नहीं होते हैं।
3. अंत:क्काल पूर्णतया अस्थिलीय (bony) होता है; करोटि पर केवल एक ऑक्सीपीटल अस्थिकंद (occipital condyl) उपस्थित होता है।
4. परिसंचरण में क्षय उपस्थित होता है जो अपूर्णतया चार वेश्मों में विभाजित होता है (2 अलिन्द तथा एक अपूर्णतया विभाजित निलय), लाल रक्त कणिकाएँ अण्डाकार, केन्द्रकयुक्त एवं द्रिओत्तल (biconvex) होती हैं।
5. श्वसन पूर्णतया फुफ्फुसीय होता है अर्थात वायुवीय (aerial) होता है।
6. शीतरक्तयि अर्थात् पॉइकीलोथर्मस (poikilothermous) प्राणी जिनका दैहिक-तापमान वातावरण पर निर्भर करता है।
7. निषेचन आन्तरिक होता है जो मैथुनांगों द्‌वारा सम्पन्न होता है। अण्डे बडे, अधिक पीतक युक्त तथा चिम्मड़ अथवा कड़े कैल्शियमी (calcareous) कवच से ढके होते हैं; अण्डप्रजक अथवा जैव-अण्डप्रजक (oviparous or ovo-vviparous) जन्तु।
8. भ्रूणीय-कलाएँ (Embryonic membranes) (एम्नियॉन (amnion), कोरियॉन (chorion), पीतक-आशय (yolk sac) एवं एलन्टाइस (allontois) विकास के दौरान उपस्थित होती हैं; कायान्तरण का अभाव होता है।
9. रेप्टाइल अर्थात सरीसृप समूह में लगभग 5900 जीवित जातियाँ सम्मिलित की जाती हैं।
10. कशेरुकियों में सरीसृपों (reptiles) का ही केवल यही समूह था जिसने सर्वप्रथम पूर्णतया स्वयं को सूखे स्थलीय वातावरणीय जीवन के लिए अनुकूलित किया।
11. वर्ग रेप्टीलिया में वर्तमान में उपलब्ध छिपकलियाँ (lizards), सर्प (snakes), मगर (crocodiles), कछुए (tortoises) तथा विशिष्ट न्यूजीलैंडवासी श्रेणी **स्फीनोंडॉन** (Sphenodon) सम्मिलित होते हैं। सरीसृप **मीसोजोइक काल** (Mesozoic Era) में अत्यन्त विकसित हुए तथा उस काल को **सरीसृपों का स्वर्ण युग** (Golden age of reptiles) कहा जाता है। इस आदि काल में कम से कम 14 विशाल गण उपस्थित थे जिनमें से अब केवल 4 शेष रह गये हैं। ये हैं - गण स्क्वैमेटा (Squamata), कीलोनिया (Chelonia), क्रोकोडीलिया (Crocodilia) तथा रिन्क्रोसिफेलिया (Rhyncocephalia)।

वर्ग-रेप्टीलिया का वर्गीकरण (Classification of class - Reptilia)

(i) उपवर्ग - ऐनेप्सिड़ा (Sub class - Anapsida)

ये आदिम प्रकार के सरीसृप होते हैं जिनकी करोटी ठोस होती है। टेम्पोरल छिद्र अनुपस्थित होते है।

गण-कॉटिलोसॉरिया (Order - Cotylosauria)

इस गण के सभी सदस्य पूर्णतया विलुप्त हो चुके हैं। इसके जन्तु वृन्त सरीसृप (Stem reptiles) कहलाते हैं। उदाहरण - सीमूरिया (Seymourea) : इसे उभयचरों तथा सरीसृपों के बीच की योजक कड़ी मानते हैं।

गण-कीलोनिया (Order - Chelonia)

इस गण में समुद्री टर्टल (turtles) तथा अलवणीय जलवासी एवं स्थलीय कछुए (tortoise) आते हैं जिनकी चौड़ी अण्डाकार देह एक अनम्य (rigid) कंकाली पृष्ठीय उभयोत्तल ढाल-रूपी कवच अर्थात कैरापेस (carapace) एवं चपटे अधरीय प्लास्ट्रॉन (plastron) से ढकी होती है। कैरापेस एवं प्लास्ट्रॉन अपनी परिधि पर परस्पर संयोजित होते हैं तथा अपेक्षाकृत बड़े बहुभुजीय स्वयूट अथवा चिम्मड (leathery) त्वचा से मढे होते हैं; दंतों का अभाव होता है किन्तु हनु श्रगी प्लेट (horny plates) युक्त होते हैं वक्षीय कशेरुकाएँ एवं पसलियाँ कवच से समेकित होती हैं; अवस्कर द्वार एक अनुलम्ब खाँच सदृश्य होता है; केवल एक मध्यस्थ मैथुनांग होता है; अण्डप्रजक (oviparous) : ये समुद्र, अलवणित जल अथवा स्थल के वासी होते हैं। उदाहरण - टेस्ट्रयूड़ो (Testudo = land Tortoise), **द्रायोनिक्स**(Trionys) तथा **लिसीमिस** (Lissemys) अर्थात् अलवणित जल के कछुए, तथा समुद्री कछुए **कीलोन**(Chelone)।

(ii) उपवर्ग-यूरेप्सीड़ा

इस उपवर्ग के सदस्य भी पूर्णतया विलुप्त हो चुके हैं। इनकी करोटी में एक पृठ पार्श्व पर टेम्पोरेल छिद्र उपस्थित था जो नीचे से पोस्ट आर्बिटल तथा स्कवायोसल अस्थियों से घिरा रहता था।

(iii) उपवर्ग-पैराप्सीड़ा

इस उपवर्ग के सदस्य भी पूर्णतया विलुप्त हो चुके हैं इनका पृष्ट पार्श्व पर टेम्पोरेल छिद्र नीचे से सुप्रा टेम्पोरल तथा पोस्ट फ्रन्टल अस्थियों से घिरा रहता था।

(iv) उपवर्ग-साइनैप्सीड़ा

इनकी करोटी के पार्श्व सतह पर टेम्पोरेल छिद्र था जो ऊपर की ओर से पोस्ट आर्बिटल तथा स्कवामोसल अस्थियों से घिरा रहता था। ये सभी भी लुप्त हो चुके हैं।

(v) उपवर्ग-डाऐप्सीड़ा

इनकी करोटी के प्रत्येक पार्श्व सतह पर दो टेम्पोरेल छिद्र होते हैं जो पोस्ट आर्बिटल तथा स्कवामोसल अस्थियों से अलग-अलग रहते हैं।

गण - रिन्कोसिफेलिया (Order - Rhynchocephalia)

इस गण में केवल एक जीवित जाति अर्थात न्यूजीलैंड वासी **स्फीनोडॉन** जन्तु आता है। छिपकली सदृश्य देह कणिकयि शल्कों से ढकी होती है तथा एक मध्य-पृष्ठीय कंटिकाओं की कतार भी उपस्थित होती है। दोनों ओर की मेण्डिब्ल अस्थियाँ मध्य में एक स्नायु (ligament) से परस्पर

संयोजित होती है; कशेरुकाएँ एम्फ़िसील (amphicoelous) प्रकार की होती हैं; उदरीय पसलियाँ उपस्थित होती हैं; अवस्कर छिद्र अनुप्रस्थ होता है; नर में मैथुनांगों का अभाव होता है।

गण - स्कवैमैटा (Order - Squamata)

इस गण में छिपकलियाँ (Lizards) एवं सर्प (snakes) सम्मिलित किये जाते हैं। शरीर श्रृगीकृत शल्कों से ढका होता है; कशेरुकाएँ प्रोसीलस (procoelous) प्रकार की होती है नरों में एक जोड़ी बहिवर्तनशील मैथुनाँग (हैमीपैनीस = hemipenis) उपस्थित होते हैं; अवस्कर छिद्र अनुप्रस्थ (transverse) होता है। इस गण को दो स्पष्ट उपगणों लेसरटीलिया = सारिया (Lacertilia = Sauria) तथा सर्पेन्टीज़ = ऑफीडिया (Serpentes = Ophidia) में उपविभाजित किया जाता है।

उपगण - लेसर्टीलिया (Sub- order-Lacertilia)

इनके शरीर पर आदर्श रूप से दो जोड़ी पाद उपस्थित होते है; कुछ सदस्यों में पाद अविकसित अथवा अनुपस्थित होते हैं मेंडिबल परस्पर समेकित होते है; पल्के गतिशील होती हैं; सामान्यतया सुविकसित अंस मेखला (pectoral girdle) एवं स्टरनम (sternum) उपस्थितहोतेहँ मूत्राशय उपस्थित होता है; प्राय : अण्डप्रजक होते हैं किन्तु कुछ जैव - अण्डप्रजक (Ovoviviparous) भी होते हैं; देह प्राय : 30 से. मी. से अधिक लम्बी नहीं होती है। उदाहरण - सामान्य घरेलू छिपकली = **हैमीडेक्टाइलस** (wall lizard = Hemidactyles); " श्रृगी भेक " = फ़िनोसोमा ("horned toad" = Phrynosoma) , **केलोटिस** (garden lizard = calotes), उड़न छिपकली = **ड्रेको** (flying lizard = Draco); **कमोलियन** (Chamaeleon); गोह = **वैरेनस** (monitor = Varanus); **यूरोमेस्टिकस** (Uromastix), **मबुइया** (Mobuya) , गिला मॉन्सटर = **हीलोडर्मा** (Gila monster = Heloderma) आदि। हीलोडर्मा ही एक विषैली छिपकली है।

हेमीडक्टाइलस - स्वभाव, वासस्थान एवं बाह्य लक्षण (Hemidactylus - Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum) : कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum) : वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
महावर्ग (Super class) : टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class) : रेपटीलिया (Reptilia)
गण (Order) : स्क्वामेटा (Squamata)
उपगण (Suborder) : लेसरटीलीया (Lacertilia)
श्रेणी (Genus) : हेमिडेक्टाइल्स (Hemidactylus)

1. यह एक सामान्य थलचर व रात्रिचर प्राणी है जो घरों में प्राय: रात्रि के समय कीड़े खाने हेतु रोशनी के पास दिखाई देता है।
2. शरीर पृष्ठ-अधर दिशा से चपटा होता है। छिपकली प्राय: हल्के पीले व हरे रंग की होती है तथा लगभग 15 सेमी लम्बी होती है।
3. त्वचा कोमल होती है व बहुत छोटे नरम शल्कों (scales) से ढकी होती है।
4. देह शीर्ष, ग्रीवा, धड़ व एक लम्बी व चपटी पुच्छ में विभक्त होती है।
5. टाँगों पर पाँच अंगुलियाँ होती हैं जिन पर नखर होते हैं। अंगुलियों के अधर तल पर गद्दीदार (pad-like) खुरदरे लैमिले (lamellae) होते हैं जिनकी सहायता से यह बड़ी आसानी से चिकनी दीवारों व छतों पर चढ़ जाती है।

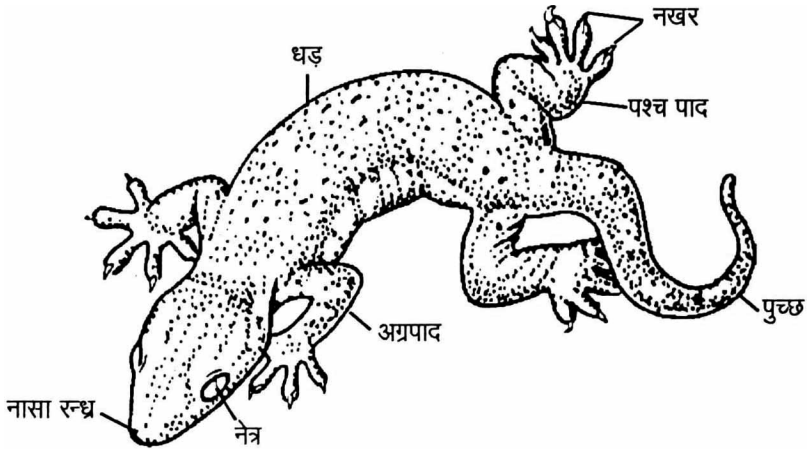

चित्र 10.8: छिपकली (हेमीडेक्टाइलस)

6. छेड़ने पर प्राय: पुच्छ शेष शरीर से अलग हो जाती है। टूटी दुम अति तीव्र गति से हिलती है व शत्रु का ध्यान आकर्षित करती है, इस बीच छिपकली भाग जाती है। बाद में छिपकली पर नयी दुम आ जाती है परन्तु इस नयी पुच्छ में कशेरुकाओं का अभाव होता है।
7. भित्ति-गोधिका सीधी खड़ी दीवारों, छत के अन्त:तल तथा खिड़कियों के शीशों के समान चिकने धरातलों पर भी चलने के लिए अनुकूलित होती हैं। इसका चलन विस्तारित अंगुलास्थियों से प्रभावित होता है। अंगुलास्थियों में पटलिकाओं (lamellae) की दोहरी श्रेणी होती है जो निर्वात सिद्धान्त (vaccum principle) के अन्तर्गत कार्य करती है। अंगुलास्थियो को दीवार पर धीरे से दबाकर ढीली करने से दीवार और उनके बीच निर्वात बन जाता है, जिसके फलस्वरूप जन्तु दीवार पर चिपका रहता है और खड़े, चिकने तथा अधोतल पर भी चल सकता है।

उपगण - ऑफिडिया (Suborder - Ophidia)

सर्पों में पादों, कर्ण छिद्रों, स्टरनम एव मूत्राशय का अभाव होता है; मैण्डीब्ल अग्र मध्यस्थ अंत पर एक स्नायु (Ligament) से परस्पर संयोजित रहते हैं; नेत्र पलक-रहित होते हैं तथा पारदर्शक शल्कों से ढके होतै हैं; बहिर्वतनशील जिह्वा द्विपालित होती है; कुछ सदस्य विष-ग्रन्थि युक्त होते हैं। सर्पों की लगभग 2500 जीवित जातियाँ ज्ञात हैं। उदाहरण - भारतीय अजगर = **पाइथन मॉलूरस** (Indian phython = phython molurus); दो मुही = **ऐरिक्स** (sand box = Eryx), नाग = **नैजा** (cobra = Naja) करैत = **बंगेरस** (Krait = Bungarus), वाइपर = **वाइपीरा** (viper = Vipera) समुद्री सर्प = **हाईड्रोफिस** (sea - snake = Hydrophis), आदि।

(i) नाजा - रचभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Naja : Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum)	: कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum)	: वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division)	: ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class)	: टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class)	: रेपटीलिया (Reptilia)

गण (Order) : स्क्वेमेटा (Squamata)

श्रेणी (Genus) : नाजा (Naja)

1. नाजा नाजा (Naja naja) अर्थात् कोबरा सारे भारत में मिलता है। इसकी अन्य जाति अर्थात् किंग-कोबरा (King cobra = Naja hannah) जो 4-5 मीटर लम्बी होती है, हिमालय पर्वतों के तराई क्षेत्र में वास करती है।
2. शरीर का रंग गहरे भूरे (dark brown) से काला होता है तथा लम्बाई 2 मीटर तक होती है। किन्हीं की ग्रीवा के पृष्ठ तल पर विशिष्ट निशान जिसे 'नेत्रक' (ocellus) कहते हैं, उपस्थित होता है।

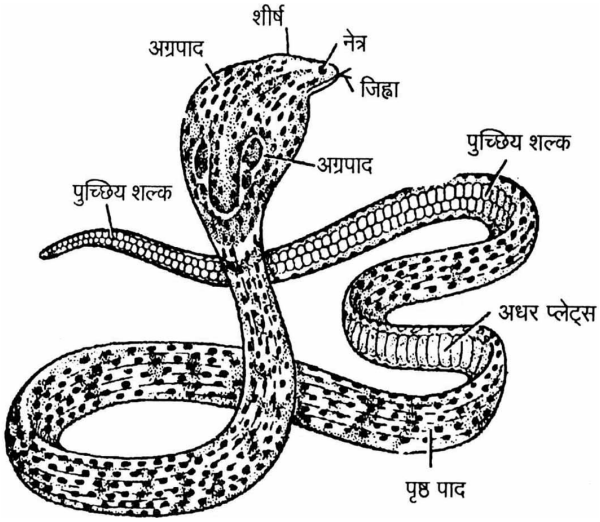

चित्र 10.9: नाजा

3. शरीर पर शल्कों का आवरण होता है। पृष्ठ तल के शल्क अपेक्षाकृत छोटे एवं चिकने होते हैं। अधर तल पर शल्क अनुप्रस्थ पट्टिकाओं (tranverse plates) के रूप में हाते हैं तथा एक अनुलम्ब पंक्ति में व्यवस्थित होते हैं।
4. शीर्ष पर शल्कों की व्यवस्था द्वारा अन्य सर्पों से इसकी पहचान की जाती है। शीर्ष के शिखर पर शल्क अपेक्षाकृत छोटे किन्तु अग्रस्थ छोर पर बड़े ढ़ाल-रूपी होते हैं। वे शल्क जो ऊपरी होठ को रेखित करते हैं, लेबियल-शल्क (labial scales) कहलाते हैं। यदि अपेक्षाकृत बड़ा तीसरा लेबियल-शल्क नेत्र को छूता है तब वह सर्प नाग ही होता है।
5. छोटे शीर्ष पर नासाछिद्रो एवं पलकविहीन गोलाकार **पुतली** (pupils) युक्त बड़े नेत्रों की जोड़ियाँ उपस्थित होती हैं। अग्रस्थ मुख चौड़ा होता है तथा ऊपरी हनु पर पैने मुड़े हुए विषदन्तों की जोड़ी होती है। प्रत्येक विषदन्त से एक नलिका द्वारा अपनी ओर से विष- ग्रंथि सम्बन्धित होती है।
6. ग्रीवा की पसलियाँ पार्श्वों में फैलकर त्वचा का एक चौड़ा फन (hood) बनाती हैं।
7. यह एक अति विषैला सर्प है तथा छेड़ने पर धरती से लगभग 30-40 सेमी. ऊँचा ख्मेर, फन फैलाकर नथुनों से हिसहिसाता (hissing) हुआ शत्रु पर आक्रमण कर उसे डसता है। इसका विष मनुष्य के लिए घातक होता है।

(ii) अजगर- स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Ajgar : Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum) : कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum) : वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division) : ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class) : टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class) : रेपटीलिया (Reptilia)
गण (Order) : स्क्वेमेटा (Squamata)
उपगण (Suborder) : औफ़िडिया (Ophidia)
श्रेणी (Genus) : पाइथन (Phython)

1. वृक्षवासी भारतीय **पाइथन** (P.molorus) घने जंगलों में पाया जाता है।
2. लम्बी एवं भारी देह लम्बाई में 7 - 8 मीटर तक हो जती है। देह लाल एवं काले धब्बों युक्त भूरे रंग की होती है; निचला हिस्सा पीले से रंग का होता है।
3. देह के पृष्ठ भाग पर छोटे शल्क होते हैं किन्तु अधर-दिशा पर पट्टिका - रूपी (plate like) शल्क उपस्थित होते हैं। शीर्ष पर बड़े परिणाम के ढाल- रूपी शल्क स्थित होते हैं।
4. आकार में शीर्ष एक कुन्द त्रिकोण के समान होता है। शीर्ष पर अग्रस्थ मुख तथा नासाछिद्रो एवं अनुलम्ब पुतली (pupils) युक्त नेत्रों की जोड़ि याँ उपस्थित होती हैं।

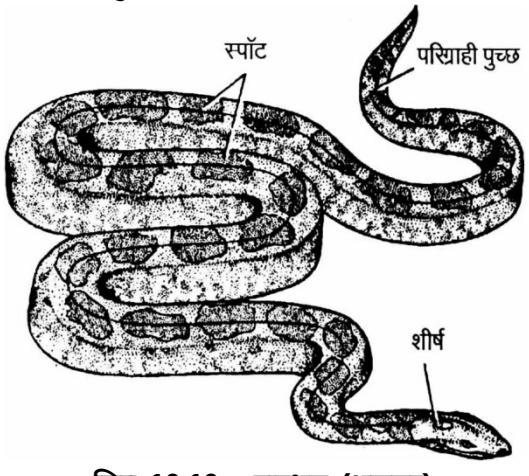

चित्र 10.10 : पाइथन (अजगर)

5. पुच्छ परिग्राही (prehensile) होती है।
6. यह एक विषहीन सर्प है जो अपने शिकार को चारों ओर से कस कर लपेट कर उसकी अस्थियाँ तोड़कर तथा श्वसन घोटकर मारता है। इसका प्रमुख भोजन उष्ण-रक्तयि कशेरूकी, जैसे खरगोश, हिरन के शिशु आदि होता है।

गण - क्रोकोडिलिया (order - Crocodile)

इस गण मे जल - वासी मगर (crocodile), एलीगेटर (alligator), घड़ियाल (gavialis) सम्मिलित होते हैं। छिपकली सदृश्य देह भीमकाय, भारी एवं लम्बी होती है; जबड़े शक्तिशाली होते हैं तथा इन पर बड़े नुकीले थीकोडॉन्ट (thecodont) दंत उपस्थित होते हैं। चारों पादों की अंगुलियों के मध्य जालक (web) उपस्थित होता है; पुच्छ लम्बी, शक्तिशाली, भारी एवं पार्श्वो से चपटी होती

है; अत्यन्त मोटी त्वचा बड़े मृगी आयताकार शल्कों से ढकी होती है जिनके ठीक नीचे अवलम्बी डर्मी अस्थियाँ उपस्थित होती है, हृदय में पूर्ण 4 - वेश्म होते हैं; मूत्राशय अनुपात्यत होता है; ये अण्डप्रजक होते हैं जो विश्वभर के समुद्र, नदियों, झीलों आदि में वास करते हैं। इनकी लगभग 23 जातियाँ ज्ञात हैं; उदाहरण - झीली मगरमच्छ = **क्रोकोडाइलस पेलुस्ट्रिस** (lake crocodile = Crocodylus palustris), नदियों का वासी क्रोकोडाइलस पोरोसस (Crocodylus porosus), घड़ियाल = **गेवियेलिस गेनेटिकस** (gharial = Gavialis gangeticus)।

(iii) मगरमच्छ - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Crocodile : Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum) : कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum) : वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division) : ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class) : टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class) : रेपटीलिया (Reptilia)
गण (Order) : क्रोकोडिलिया (Crocodilia)
श्रेणी (Genus) : क्रोकोडाइल्स (Crocodilus)

1. उभयचर प्राचीन सरीसृप जिसकी विभिन्न जातियाँ दक्षिण-पूर्वी एशिया, अफ्रीका ऑस्टेलिया तथा मध्य एवं दक्षिण अमरीका में पायी जाती हैं। भारत में दो जातियाँ मिलती हैं -जो लम्बाई में लगभग 4 - 5 मीटर तक होता है तथा प्रमुख नदियों एव समुद्र के निकट नदीमुखों (estuaries) के जल में वास करता है।
2. गहरे रंग का भारी शरीर, मोटी एवं कठोर पदिटकाओं के बने आवरण से ढका होता है।
3. देह, शीर्ष, ग्रीवा, धड़ एवं पार्श्वों से दबी शक्तिशाली व लम्बी पुच्छ में बँटी होती है।
4. त्रिकोणाकार शीर्ष अग्र-अंत पर रांकरा होकर एक प्रोथ अर्थात् तुण्ड (snout) के रूप में होता है। नासाछिद्र इसी तुण्ड के शिखर पर उपस्थित होते हैं, नासाछिद्रों में कपाट होते हैं। जो जल के अन्दर जाते ही बन्द कर लिये जाते हैं।

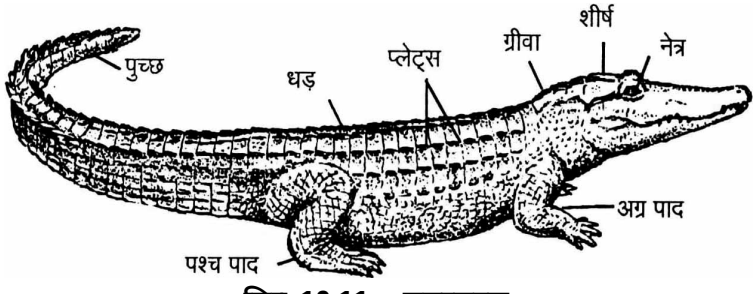

चित्र 10.11 : मगरमच्छ

5. जबड़ों (हनुओं) पर असमान पैने एवं नुकीले दंत उपस्थित होते हैं। निचले हनु के पहली जोड़ी दंत ऊपरी हनु में स्थित गर्तिकाओ (pits) में फिट होते हैं। इसी प्रकार निचले हनु के चौथी जोड़ी दंत ऊपरी हनु के बाह्य-क्षेत्र में स्थित खाँचों (grooves) में फिट होते हैं। यह व्यवस्था **क्रोकोडाइलस** का विशिष्ट लक्षण है।
6. धड़ पर दो जोड़ी पाद होते हैं जिन पर 5 पैने नाखुन-सहित अंगुलियाँ होती हैं।
7. पार्श्वों से चपटी शक्तिशाली पुच्छ तैरने तथा मारने-पछाड़ने का कार्य करती है।

8. कर्ण छिद्र छोटे और त्वचा के एक छोटे पल्ले द्वारा सुरक्षित है।
9. नर में केवल एक शिश्न (penis) होता है।
10. हृदय अलग- अलग निलयों के साथ 4 कोष्ठीय है।
11. यह परभक्षी है जो बड़े मवेशी आदि तक को, जो जल के निकट पानी पीने आते हैं, आक्रमण कर खा जाता है। कुछ मगर मानव-भक्षी भी हो जाते हैं।
12. इसकी खाल अत्यन्त कीमती होती है। वर्तमान में भारत में इसको मारना कानूनी अपराध हैं।

10.6.3 वर्ग - एवीज (Class - Aves)

1. इस वर्ग में **पक्षी** सम्मिलित किये जाते हैं जिनकी देह **परों** (feathers) से ढकी होती है।
2. दो जोड़ी पाद उपस्थित होते हैं; अग्र पाद उड़ान के लिए बड़े **पखों** (wings) में विभेदित होते हैं तथा पश्च पाद चलने, तैरने एवं चक्कस (perching) के लिए अनुकूलित होते हैं; आदर्श रूप से पश्च पाद पर 4 अंगुलियाँ होती हैं जिन पर त्वचा (शल्कों) का आवरण होता है।
3. पूर्णतया अस्थिल अंतःकंकाल हल्का तथा वायवीय (pneumatic) होता है; मुख एक प्रोथ सदृश्य **चोंच** (beak) के रूप में होता है, दंत अनुपस्थित होते हैं, करोटि में एक ऑक्सीपीटल अस्थिकन्द (occipital condyle) उपस्थित होता है; स्टर्नम बड़ा होता हैं तथा प्रारूपिक दशा में एक मध्यस्थ पतवार सदृश्य **कील** (keel) में विभेदित होता है; पुच्छ कशेरुकाएँ संख्या में बहुतकम एवं परस्पर समेकित होकर **पाइगोस्टाइल** (pygostyle) निर्मित करती हैं।
4. पीरसंचरण तंत्र में 4 वेश्मीय हृदय (2 अलिन्द एवं 2 निलय), एवं एक (दाहिना), महाधमनी चाप (aortic aroch) प्रमुख हैं; लाल रक्त कणिकाएँ अण्डाकार, केन्द्रकयुक्त तथा द्विओत्तल (biconvex) होती हैं।
5. श्वसन तन्त्र में एक जोड़ी फुफ्फुस आते हैं जिनसे वायुकोशों का एक संस्थान सम्बन्धित होता है; ट्रेकिया (trachea) के आधार परएक ध्वनि-तंत्र (sound box) अर्थात सिरिक्स (syrinx) उपस्थित होता है।
6. मादा पक्षियों में प्राय: प्रजनन-तन्त्र का केवल बायाँ भाग उपस्थित होता है।
7. मूत्राशय का अभाव होता है; उत्सर्जी अन्तःपदार्थ अर्ध-ठोस होता है।
8. समतापी अर्थात् होमोइओथर्मस (homoiothermous) प्राणी जिनका दैहिक तापमान निश्चित होता है तथा वातावरण पर निर्भर नहीं करता है।
9. अंतःनिषेचन होता है; बड़े अण्डे पीतक युक्त होते हैं तथा कठोर केल्शियम युक्त कवच से ढके होते हैं; विकासशील अण्ड में भ्रूणीय-कलाएँ (एम्नियॉन, कोरियॉन, योक सैक तथा एलनटॉइस) उपस्थित रहती है; अण्डों को सेने का कार्य एवं अण्ड से बाहर आने पर शिशु की देखभाल जनक पक्षी एक घोंसले (nest) में करते हैं।
10. पक्षी परों एवं उड़ान के लिए उपस्थित पंखों की उपस्थिति के कारण विशिष्ट होते है।

वर्ग एवीज का वगर्किरण (Classification of class - Aves)

पक्षियो की लगभग 9000 जातियाँ ज्ञात है जो दो प्रमुख उपवारगो मे विभाजित की जाती है -की जाती हैं - विलुप्त आर्किऑनिथस (Archaeormithes) - तथा जीवित नियोआर्नीथीस (Neornithes)। वेटमोर के अनुसार इस वर्ग में 34 गण हैं इनमें 27 गण जीवित पक्षियों के तथा 7 गण जीवाश्म पक्षियों के हैं।

(i) उपवर्ग - आर्किओनिथरा

इन पक्षियों को ' छिपकलीय-पक्षियो ' (Lizard-birds) की संज्ञा दी जाती है। यह विलुप्त उपवर्ग है। ये जुरेसिक काल में पाये जाते थे। इनका जीवाश्म, जर्मनी के बबेरिया गाँव से प्राप्त हुआ था। अग्र पाद की तीन अंगुलियाँ एवं मेटाकार्पल अस्थियाँ पृथक होती हैं तथा प्रत्येक पर एक अन्तस्थ नखर (claw) उपस्थित होता है। एक लम्बी 20 पृथक कशेरुकाओं युक्त पुच्छ उपस्थित होती है; प्रत्येक पु:च्छ कशेराका से एक जोड़ी पार्श्वीय रेट्रीस-पर (restrices) निकले होते हैं; पाइगोस्टाइल का अभाव होता है; दोनो जबड़ों पर खाँचों में स्थित दंत उपस्थित होते हैं। उदाहरण - **आर्किऑप्टेरिक्स लिथोग्राफिका** (Archaepteryx Lithgraphica)

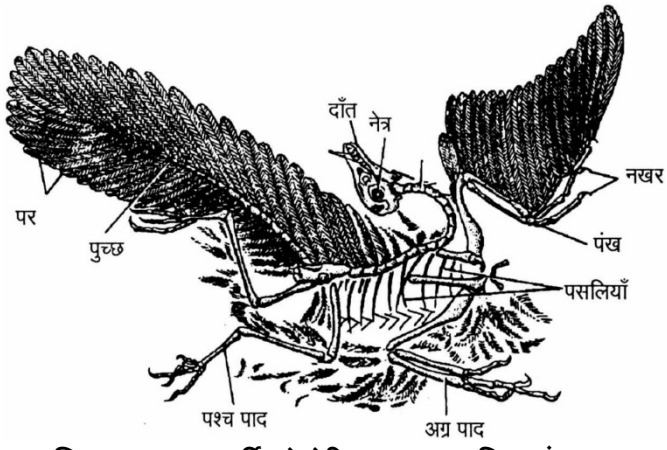

चित्र 10.12 : आर्किओप्टेरिक्स : सम्भावित संरचना

(ii) उपवर्ग - निऑर्निथस

इस उपवर्ग में वास्तविक पक्षी सम्मिलित होते हैं जिनकी मेटाकार्पल अस्थियाँ समेकित होती हैं; पश्च पाद की दूसरी अंगुली सबसे लम्बी होती है; पुच्छ कशेरुकाएँ 13 अथवा कम तथा परस्पर सम्पीडित (compressed) होती हैं; जबड़े चोंच (beak) में विभेदित होते हैं एवं आधुनिक पक्षियों में दंतों का पूर्ण अभाव होता है; स्टर्नम चपटा एवं कलि-युक्त होता है।

अधिगण - ओडोन्टोगनेथी

इस समूह सभी पक्षी लुप्त हो चुके हैं। इनके जबड़ों में भी दाँत पाये जाते थे।

अधिगण - पेलियोग्नेथी

इस अधिागण में "दौड़ने वाले लेकिन न उड़ने वाले" (running flightless) पक्षी आते हैं; पंख अविकसित होते हैं; दैहिक परों का आवरण अर्थात् प्लूमेज (plumage) पूणीय डाउन परों (down feathers) का बना होता है जिनमें बार्ब (barbs) पा बार्ब्यूल (barbules) का अभाव होता है , पुच्छ कशेरुकाएँ पृथक होती हैं अर्थात् पाइगोस्टाइल का अभाव होता है। इस अधिागण को निम्नलिखित जीवित गणों में विभाजित किया जाता है -

1. **गण - स्ट्रथियोनीफॉर्मीस (Order - Struthioniformes) :** बड़े -परिमाण के स्थलीय न उड़ने वाले पक्षी; स्टर्नम कलि रहित होता है; पाइगोस्टाइल अनुपस्थित होता है; पश्च पाद पर केवल 2 अंगुलियों उपस्थित होती हैं; शीर्ष तथी ग्रीवा प्राय: लगभग पर-र्राहेत होते हैं; प्यूबिक सिम्फाइसिस श्रोणि मेखला में उपस्थित होती है (यह पक्षियों में एक अनन्य लक्षण है)। गण में

सबसे विशाल जीवित पक्षी अफ़ीकी शुतुरमुर्ग अर्थात् आस्ट्रिब **(स्ट्रुथियो कमेलरा)** (Ostrich = Struthio Camelus) रखा जाता है जो लगभग 292 मीटर ऊँचा एवं 150kg भार होता है।

2. **गण केसॉरीफॉर्मसि (Order - Casauriformes):** बड़े परिमाण की स्थलीय न उड़ने वाले चिड़ियाँ; स्टर्नम कलि रहित होता है; प्रत्येक पश्च पाद पर 3 अंगुलियाँ उपस्थित होती हैं; पख अविकसित होते हैं; शीर्ष, ग्रीवा एवं शेष शरीर पूर्ण रूप से परों के घने आवरण से ढके होते हैं। इस गण में न्यू भूमिका एवं सम्बन्ध टापुओं की केसोवेरी (केसॉरियस) (cassowary (Casuarius)1 एवं ऑस्ट्रेलिया की इमू **[ड्रोमीसियस = ड्रोमियस** [emu (Dromiceius = Dromaeus)] आते हैं; लगभग 1 1/4 मीटर ऊँचे होते हैं।

3. **गण - एप्टेरीजीफॉर्मीस (Order - Apterygiformes):** तुलनात्मक छोटे परिमाण के स्थलीय उड़ानरहित पक्षी; पख अवशेषी होते हैं; स्टर्नम में कलि नहीं होता है; प्रत्येक पश्च पाद पर चार अंगुलियाँ उपस्थित होती हैं; शरीर रोम-सदृश्य घने परों के आवरण से ढका होता है। गण में न्यूज़ीलैंड की रात्रिचर कीवी **(एप्टेरिक्स)** (kiwi(Apteryx)) रखी जाती है जो लगभग 50 cm ऊँची होती है।

4. **गण राइफॉर्मीस** (Order Rheiformes). मध्यम परिमाण की स्थलीय न उड़ने वाली चिड़ियाँ; पख अवशेषी होते हैं; स्टर्नम कलि रहित नहीं होता है; प्रत्येक पश्चपाद पर 3 अग्र-स्थित अंगुलियाँ उपस्थित होती हैं; शीर्ष एवं ग्रीवा पर अपेक्षाकृत बहुत कम 'पर' होते हैं। इस गण में दक्षिणी अमेरिका की रिया (Rhea) आती हैं जिसकी ऊंचाई लगभग 194 मीटर होती है।

5. **गण टिनेमीफॉर्मीस** (Order Tinamiformes) : मध्यम परिमाण के पक्षी; पंख विकसित होते हैं; स्टर्नम कलि युक्त (keeled) होता है; एक अपेक्षाकृत अविकसित पाइगोस्टाइल उपस्थित होता है; पक्षी उड़ान भर सकता है किन्तु सामान्यतया दौड़ता है। गण में मैक्सीको एवं दक्षिणी अमेरिका की टिनेमस (Tinamous) आते है।

अधिगण - इम्पेनी

इस समूह में आधुनिक जलीय न उड़ने वाले पक्षी आते हैं जिनके पंख चप्पु नुमा होते हैं। ये दक्षिणी ध्रुव में पाये जाते हैं। इस अधिगण में एक गण- स्फिनसीफोर्निस आता है।

1. **गण - स्फिनिसीफोर्निस(पपतप्प - (Order - Sphenesciformes)** : उड़ानरहित, चप्पूसमान पख तैरने के लिए अनुकूलित; जालक युक्त 4 अंगुलियाँ पश्च पादों पर; छोटे शल्क-सदृश्य 'पर'। इस गण में जलीय पेन्गुइन (penguins) आती है जो दक्षिणी गोलार्ध के बफीले ध्रुवीय सागरवासी हैं। इनकी लगभग 20 वर्तमान श्रेणियाँ ज्ञात हैं। उदाहरण - शहनशाह पेन्तुइन **एप्टीनोडाइटस फॉर्सटरी** (Emporer penguin = Aptenodytes forsteri) जो एन्टार्टिक महासागर के तटीय क्षेत्र में पायी जाती है।

अधिगण - निओग्नेथी

यह अधिगण "आधुनिक" पक्षियों' ' द्वारा रचित होता है। ये प्रारूपिक तौर पर उड़ानशील, सुविकसित पख (wings) युक्त, दंत रहित, कीलाभ स्टनर्म, केवल 5 - 6 पुच्छ कशेराकाएँ वाले पाइगोस्टाइल युक्त एवं परों में हुक रूपी बार्ब एवं बार्ब्यूल युक्त प्राणी होते हैं। इस अधिगण को 22 गणों में विभाजित किया जाता है। उदाहरण - मयूर (pavo cristatus) भारत का राष्ट्रीय पक्षी, गोडावण (Choriotis nigriceps) राजस्थान का प्रांतीय पक्षी, कबूतर (Columba), तोता (Psittaculla) आदि।

कबूतर - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Pigeons : Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum) : कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum) : वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division) : ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class) : टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class) : एवीस (Aves)
उपवर्ग (Subclass) : नियोऑरनिथिस (Neognathae)
गण (Order) : कालम्बिफोर्मीस (Columbiformes)
श्रेणी (Genus) : कलुम्बा (Columba)

1. विश्वव्यापी अति सामान्य कबूतर की जाति कॉलूम्बा लिविया है। इससे उनके पालतू सुन्दर किस्में विकसित किया गया है।
2. स्वभाव में यूथी (Gregarious) होते हैं तथा बड़े-बडे झुण्डों में रहते हैं।

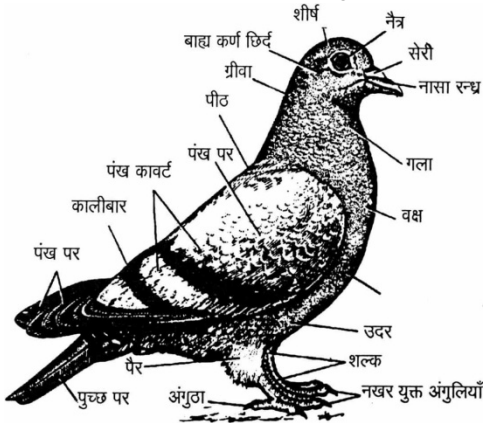

चित्र 10.14 : कबूतर

3. शीर्ष पर छोटी इकहरी चोंच होती है जिसके आधार पर सियर (cere) नामक कोमल त्वचा का ढक (flap) लगा होता है
4. देह के पिच्छ अर्थात् पक्षति (plumage) सलेटी - धूसर (slate - grey) रंग के होते है; ग्रीवा एवं ऊपरी वक्ष क्षेत्र में पिच्छ चमकदार हरे एवं बैंगनी होते हैं। पखों पर दो गहरे रंग की पट्टिया (bars) उपस्थित होती हैं।
5. टांगे पतली होती हैं तथा पादों पर नखर-युक्त 4 अंगुलियाँ होती हैं जो चलने एवं पेड़ों पर बैठने (perching) के लिए अनुकूल होती हैं।
6. पंख अर्थात् पक्ष (wings) अतिविकसित एवं प्रभावशाली होते हैं जिसके फलस्वरूप कबूतर तेज गति की लम्बी उड़ाने भर सकता है।
7. कबूतर मुख्यत: अनाज के दाने आदि खाता है।

गोड़ावन - स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण (Godawan : Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum) : कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum) : वर्टीब्रेटा (Vertebrata)

प्रभाग (Division) : ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class) : टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class) : एविस (Aves)
उपवर्ग (Subclass) : निओर्निथिस (Neornithis)
अधिगण (Superorder) : नेओग्नेथी (Neognathae)
गण (Order) : ग्रूइफोर्मीस (Gruiformes)
श्रेणी (Genus) : कोरियोटिस (Choriotis)

1. गोडावण (the great Indian bustard) राजस्थान राज्य का प्रदेश-पक्षी (state bird) है। इसकी जाति कोरियोटिस नाइग्रीसेप (C. nigriceps) है।

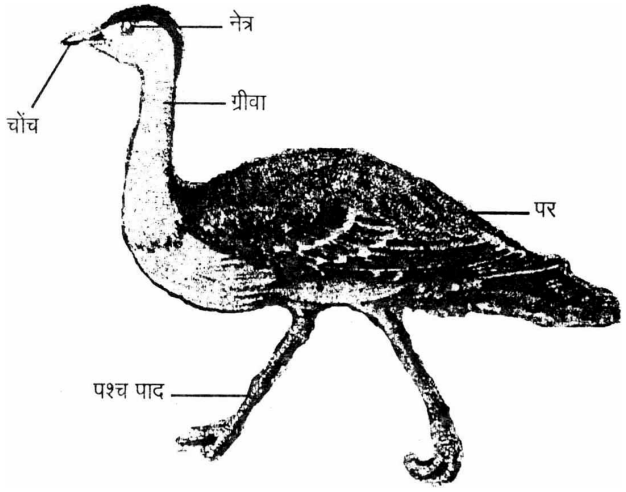

चित्र 10.15 : गोडावण (भारतीय बरटर्ड)

2. धरती पर विचरने वाला यह दुर्लभ पक्षी मुख्यत: राजस्थान वे मरुस्थलीय क्षेत्रों में वास करता है।
3. इसका परिमाण बड़ा होता है। यह ऊँचाई में लगभग 60-90 सेमी तथा भार में 15 किलो होता है। शीर्ष, लम्बी ग्रीवा एवं भारी धड़ पिच्छों से ढ़का होता है। पीठ के पिच्छ काले रंग युक्त गहरे मटीले रंग के होते हैं। निचला हिस्सा सफेद होता है जिस पर अनुप्रस्थ काली धारी होती हैं। ग्रीवा सफेद होती है किन्तु शीर्ष का शिखरीय क्षेत्र काला होता है। टाँगों पर पिच्छों का अभाव होता है।
4. इसमें उड़ान भरने की क्षमता होती है। यह दौड़कर उड़ान भरता है।
5. स्वभाव से यह प्राय: **एकल** (solitary) होता है।
6. इसका प्रमुख भोजन घास-फूसकेदाने तथा छोटे जन्तु (जैसेकटि, कनखजूरा, छिपकली आदि) होता है।
7. इसका शिकार कर मानव ने लगभग इसे विलुप्त कर दिया है। वर्तमान में यह एक संस्थित पक्षी है तथा इसका संहार कानूनी अपराध है।

10.6.4 वर्ग - मैमेलिया (Class - Mammalia)

1. शरीर रोम अर्थात् बालों (hair) के आवरण से ढका होता है; विभिन्न प्रकार की ग्रंथिया भी त्वचा में उपस्थित होती हैं।
2. करोटि पर दो ऑक्सीपीटल अस्थिकंद (occipital condyles) उपस्थित होते हैं; गर्व-कशेरुकाएँ (cervical vertebrae) संख्या में 7 होती हैं।
3. दंत गर्तिकाओ में उपस्थित होते हैं (थीकोडॉन्ट = thecodont), तथा विभिन्न आकार एवं परिमाण के होते हैं (हिदरोडॉन्ट = heterodont); नेत्रों पर गतिशील पलकें उपस्थित होती हैं; कर्ण पर बाह्य कर्ण अर्थात् गतिशील कर्ण पल्लव (pinnae) उपस्थित होते हैं।
4. दो जोड़ी पाद होते हैं एवं प्रत्येक पाद पर 5 प्रारूपिक अंगुलियाँ उपस्थित होती हैं; अंगुलियों के अन्तो पर नखर (claws), नाखून (nails) अथवा खुर (hoofs) उपस्थित होते हैं।
5. हृदय में 4- वेश्म होते हैं (दो अलिन्द एवं दो निलय); केवल बायाँ महाधमनी चाप (left aortic arch) उपस्थित होता है; लाल रक्त कणिकाएँ गोलाकार एवं केन्द्रक रहित होती हैं।
6. श्वसन केवल फुफ्फुस द्वारा होता है; ध्वनि-अंग अर्थात् लेरिंक्स (larynx) उपस्थित होता है; एक मांसल पर्दे सदृश्य डायफ़ाम (diaphragm) धड़ के वक्षीय क्षेत्र (फुफ्फुसएवं हृदय) को शेष उदर गुहा से पृथक करता है।
7. मूत्राशय उपस्थित होता है।
8. ऊष्णरक्तीय अर्थात समतापी (homoiothermous) जन्तु जिनका दैहिक तापमान निश्चित एवं वातावरण के अनुसार परिवर्तित नहीं होता है।
9. नरों में केवल एक मैथुनांग (शिश्न) होता है; वृषण सामान्यतया उदर गुहा से बाहर पृथक वृषणकोष में स्थित युक्त होते हैं; निषेचन आन्तरिक प्रकार का होता है; अण्ड अत्यन्त सूक्ष्म, कवच रहित एवं लघु पीतक होते हैं; भ्रूणीय विकास मादा के गर्भाशय (uterus) मे होता है; भ्रूणीय कलाएँ उपस्थित होती हैं। भ्रूणीय विकास के अन्तर्गत ऑवल (placenta) प्रासपों का विस्तृत नामक रचना विकसित हो कर विकासशील मूण एवं मादा के गर्भाशय से सम्बन्धित रखती है ,तथा साथ ही इसी के द्वारा भ्रूण एवं मादा के उपापचयी लेन-देन होता है; मैमल (प्रोटोथीरिया को छोड़कर) जैवप्रजक (vivaparous) होते हैं। जन्म के पश्चात् नवजात शिशुओं को मादा स्तनग्रंथियों द्वारा स्रावित तरल दूध से पोषण कराती है।
10. जन्तुओं मेमल अर्थात स्त्नीयों को सबसे अधिक उद्विकसित माना जाता है। इनकी लगभग 4400 जीवित जातियाँ ज्ञात है जिनके सदस्य विश्व भरके प्राय: सभी वासस्थानों में अति सफलतापूर्वक वास करते हैं।
11. स्तनियों को सामान्यतया दो प्रमुख उपवर्गों प्रोटोथीरिया (Prototheria) एवं थीरिया (Theria) में उपविभाजित किया जाता है। थीरिया को पुन: अधःवर्ग (infra class) मेटाथीरिया (Metatheria) एवं यूथीरिया (Eutheria) में बाँटा जाता है।

वर्ग - मैमेलिया का वर्गीकरण (Classification of class Mammalia)

(i) उपवर्ग - प्रोटोथीरिया (Sub Class - Prototheria)

गण मोनोट्रिमेटा (order Monoternata) इन्हें सामान्यतया अण्डप्रजक स्तनि अथवा मोनोट्रीम (egg Laying mammals or monotremes) की संज्ञा दी जाती है; कर्ण पल्लवों (ear pinnae)

का अभाव होता है; दंतकेवल शिशुओं में उपस्थित होते हैं; वयस्क में बत्तख जैसी मृगी चपटी चोंच होती है; अवस्कर (cloaca) उपस्थित होता है; वृषण उदरीय (abdominal) होते हैं। अण्डवाहिनियाँ स्पष्ट होती हैं किन्तु मादा प्रजनन-मार्ग का गर्भाशय (uterus) अथवा योनि (vagina) मे विभेदन नहीं होता है; अण्डप्रजक (oviparous) अण्डे बड़े पीतक युक्त तथा सफेद लचीले कवच से ढके होते हैं। स्तन ग्रंथियों में स्तनाग्र अर्थात चुचुकों (nipples) का अभाव होता है। इस गण की केवल दो जीवित श्रेणियाँ लात हैं जो ऑस्ट्रेलियन क्षेत्र में वास करती हैं। उदाहरण - पूर्वी ऑस्ट्रेलिया एवं तस्मानिया का जलीय **डक-बिल प्लेटीपस** (duck - billed platypus = Ornithorhynchu natinus) तथा ऑस्ट्रेलिया का स्थलवासी झाऊचूहा सदृश्य कंटीला **चींटीखोर**(spiny ant -eater = tachyglossus)।

(ii) उपवर्ग - थीरिया (Sub class - Theria)

इस समूह में मासूर्पियल (marsupial) तथा प्लेसेन्टल स्तनि सम्मिलित किये जाते हैं। कर्ण पर कर्ण-पल्लव उपस्थित होते हैं; दंत स्थायी एवं विभेदित होते हैं; अवस्कर अनुपस्थित होता है; वृषण सामान्यतया उदर से बाहर पृथक वृषण-कोषों में स्थित होते हैं, शिश्न सामान्य मूत्रो-जनन मार्ग अर्थात् यूरिथ्रा (urethra) का कार्य करता है मादा का प्रजनन-मार्ग स्पष्ट ऊपरी अण्ड वाहिनी अर्थात् फेलोपियन नलिका (oviduct or fallopian tube), गर्भाशय) एवं योनि (vagina) में विभेदित होता है; मादाएँ शिशुओं को जन्म देती हैं अर्थात् जैवप्रजक (viviparous) होती हैं; स्तन ग्रंथिया स्तनाग्र (nipple) युक्त होती हैं।

अधवर्ग - मेटाथीरिया (Intra class - Metatheria)

इस समूह में प्रारम्भिक प्रकार के स्तनपायी आते हैं, इनके शिशु अपीरपछ अवस्था में पैदा होते हैं। इनका शेष परिवर्धन मादा के उदर पर स्थित मार्सूपियम में पूर्ण होता है। दाँत जीवन में एक बार निकलते हैं। गर्भाशय एवं योनि दोनों युश्मित रचनायें होती हैं। इस में सिर्फ एक गण मार्सूपियेलिया (Order - Marsupialia) आता है। उदाहरणा - मेक्रोपस (Macropus) अर्थात कंगारू ओपोसम(Opossum) आदि।

अध:वर्ग - यूथीरिया (Infra - Eutheria)

इस समूह के जन्तुओं में शिशुधानी तथा एपीलूनिक अस्थि अनुपस्थित होतीं है। गर्भाशय एवं योनि केवल एक-एक उपस्थित होती है।

खरगोश - स्वभाव, वास रचान एवं बाह्य लक्षण (Rabbit :Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum)	: कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum)	: वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division)	: ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class)	: टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class)	: मैमेलिया (Mammalia)
उपवर्ग (Subclass)	: थीरिया(Theria)
अधिवर्ग (infraclass)	: यूथीरिया (Eutheria)
गण (Order)	: लेगोमारफा(Lagomorpha)
श्रेणी (Genus)	: ओरिक्टोलेगस(Oryctolagus)

1. खरगोश भारत के सभी स्थानों ने पाया जाता है।
2. खरगोश यूथचारी होता है जो शाखित शशक वाडा में परिवार सहित रहता है।
3. शरीर लगभग 30-40 सेमी लम्बी होती है तथा कोमल सच्चे भूरे बालों के आवरण से ढकी होती है।
4. बड़ा शीर्ष अग्र भाग में तुण्ड (snout) के रूप में होता है।
5. अग्रस्थ चौड़ा मुख होठों से घिरा होता है। ऊपरी होठ मध्य से खाँच युक्त होता है एवं फलस्वरूप इन्साइज़र दन्त दिखाई पड़ते हैं। इसे "हेअर-लिप' ' (hare - lip) कहते हैं।
6. कर्ण-पल्लव लम्बे होते हैं।
7. पंचागुलिपाद (pentadactyl limbs) होते हैं। अग्रपाद छोटे होते हैं किन्तु पश्चपाद लम्बे एवं मजबूत होते हैं तथा तेज दौड़ने एवं छलाँग लगाने में बहुत सहायक होते हैं।
8. एक छोटी गुच्छेदार (bushy) पुच्छ होती है।
9. ये रात्रिचर होते हैं तथा रात में शाकाहारी भोजन की तलाश में निकलते हैं।

ऊँट : रचभाव, वासस्थान एवं बाह्य लक्षण

(Camel : Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum)	: कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum)	: वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division)	: ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class)	: टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class)	: मैमेलिया (Mammalia)
उपवर्ग (Subclass)	: थीरिया(Theria)
अधिवर्ग (infraclass)	: यूथीरिया (Eutheria)
गण (Order)	: आर्टियोडैक्टाइला (Artiodactyla)
श्रेणी (Genus)	: केमेलस (Camelus)

1. एक-कोहान युक्त अरबी ऊँट (one humped Arabian camel) सदियों से भारत, पाकिस्तान एवं अरब प्रदेशों में परिवहन का साधन रहा है।
2. शरीर पर छोटा शीर्ष, लम्बी ग्रीवा, कोहान युक्त ऊपर उठा हुआ धड़ तथा लम्बी टाँगे उपस्थित होती है। पूरा शरीर रेतीले रंग के बालों के आवरण से ढका होता है।

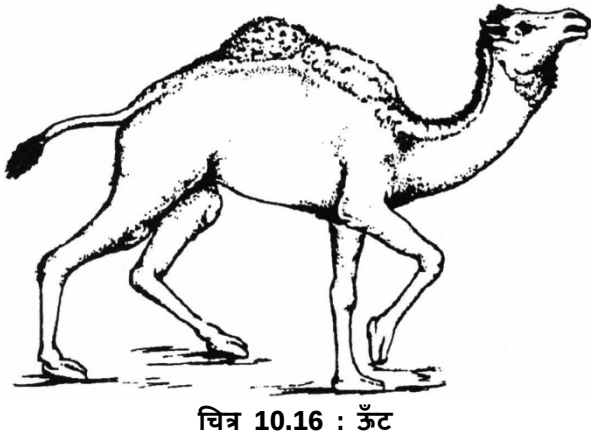

चित्र 10.16 : ऊँट

3. पादों पर केवल iii एवं iv अंगुलियाँ होती है। किन्तु खुर (hoof) के बजाय इन पर छोटे चपटे नखर एवं बड़ी गद्दियाँ स्थित होती है जिनकी सहायता से यह मरूस्थल की रेत में सुलभता से गमन कर सकता है।
4. यह जलकेबिना अनेक दिनों तक जीवित रहता है क्योंकि इसके आमाशय में विशिष्ट आशय होते हैं जो जल को संगृहित रखते हैं।
5. इसकी ऊन से कालीन एवं गर्म वस्त्रों का निर्माण होता है।

गजेला : स्वभाव, वास स्थान एवं बाह्य लक्षण

(Gazella: Habits ,Habitat , and External Characters)

संघ (Phylum)	: कॉर्डेटा (Chordata)
उपसंघ (Subphylum)	: वर्टीब्रेटा (Vertebrata)
प्रभाग (Division)	: ग्नेथोस्टोमेटा (Gnathostomata)
महावर्ग (Super class)	: टेट्रापोडा (Tetrapoda)
वर्ग (Class)	: मैमेलिया (Mammalia)
उपवर्ग (Subclass)	: थीरिया(Theria)
अधिवर्ग (infraclass)	: यूथीरिया (Eutheria)
गण (Order)	: आर्टियोडैक्टाइला (Artiodactyla)
श्रेणी (Genus)	: गजेला (Gazella)

यह राजस्थान का राज्य पशु है तथा जैसलमेर एवं बाड़मेर के मरुस्थलीय क्षेत्र में पाया जाता है। यह विलुप्त होने के खतरे से घिरा प्राणी है। इस जीव का देश के दूसरे राष्ट्रीय पार्कों में दर्शन दुर्लभ हैं। इसे सामान्यतया चिंकारा कहते हैं।

यह खुरयुक्त शाकाहारी स्तनि है। पादों की iii एवं iv अंगुलियों पर देह का भार आता है, अत : इन्हें सम - अंगुली युक्त खुरदारी (eventoed ungulates) कहते हैं। इसका शरीर चेस्टनट रंग का होता है तथा निचला भाग सफेद रंग का होता है। ये झुण्ड में रहते हैं।

यूथीरिया के गण (order of Eutheria)

1. **गण-इन्सेक्टीवोरा (Order - Insectivora)** : छोटे परिमाण के लम्बी अन (snout) युक्त स्तनि: पाँव पर 5 नखर युक्त अंगुलियाँ उपस्थित; भीतरी अंगुली विरोधनीय (opposable) नहीं होती है; दंत पैने एवं नुकीले होते हैं; दतविन्यास पूर्ण अर्थात् 44 दंत युक्त होता है; गण में छछूंदर (shrews = Suncus) एवं झाऊचूहे (hedgehogs = Hemiechinus) सम्मिलित होते हैं।
2. **गण डर्मोप्टेरा (order Dermoptera)** : अग्रपाद एवं पुच्छ त्वचा के पार्श्वीय महीन पतवार सदृश्य पटेजियम (patagium) से सम्मिलित होती हैं। पटेजियम की सहायता से वृक्षवासी सदस्य एक पेड़ से अन्य परविसर्पण (glide) करते हैं। इस गण में दीक्षणी-पूर्वी एशिया की केवल एक जीवित श्रेणी उड़न-लिमुर (flying lemur = Galeoppithecus) आती है।
3. **गण काइराप्टेरा (Order Chiroptera) :** अग्रपादस्थियाँ तथा दूसरी एव पाँचवीं अंगुलास्थियाँ अत्यन्त लम्बी होकर त्वचा की महीन कलाओं अर्थात् पखों (wings) का अवलम्बन करती हैं; पश्च पाद पर पैने एवं घुमावदार नखर आधार-वस्तु से लटकने हेतु उपस्थित होते हैं; पैने दंत

उपस्थित होते हैं; रात्रिचर; गुट में चमगादड़ें (bats) सम्मिलित की जाती हैं जो स्तनि वर्ग में केवल वास्तविक उड़ान दर्शाती हैं।

(i) **उपगण मैगाकाइरॉप्टेरा (Suborder Megachiroptera) :** इसमें बडे परिमाण की वृक्ष वासी, रात्रिचर, फलाहारी उड़न-लोमड़ी (flying fox or fruit bat) रखी जाती है, जो दिन के समय वृक्षों पर उल्टी लटकी विश्राम करती हैं। उदाहरण - भारतीय उड़न लोमड़ी (Indian flying fox = pteropus giganteus)।

(ii) **उपगण माइक्रोकाइरॉप्टेरा (Suborder Microchiroptera) :** इस उपगण में अपेक्षाकृत छोटे परिमाण की कटि-भक्षी (insectivorous), रात्रिचर चमगादडें रखी जातीहै; मुखीय क्षेत्र (कर्ण पल्लवों एवं नासा क्षेत्रों)की त्वचा अत्यन्त महीन एवं वलित होकर उड़ान के दौरान ध्वनि-ज्ञान (echo-location) कराती हैं; दिन के समय ये प्राय: अंधेरी गुफाओं अथवा मकानों, खण्डहरों की भित्तियों के खाँचों आदि में विश्राम करती हैं। इनकी अनेक जातियाँ ज्ञात हैं। उदाहरण - सामान्य युक्त चमगादड़ (rat -tailed bat = Rhinobpoma) आदि।

4. **गण प्राइमेट्स (Order Primates) :** पाद अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं जिन पर तुलनात्मक विभेदित एवं विकसित " हाथ ' ' (hand) एवं " पैर ' ' (feet) उपस्थित होते हैं। 5 अंगुलियाँ होती हैं जिनके अन्त पर पैने नखर के बजाय चपटे नाखून (nails) उपस्थित होते हैं; पादों की भीतरी अंगुली विलेधनीय (opposable) होती है; नेत्र अग्रसथ होते हैं, अत : स्टीरियोस्कोपिक दृष्टि (stereoscopic vision) होती है। तंत्रिका - तंत्र कार्यात्मक रूप से अत्यन्त विकसित होता है। अर्थात् सदस्यों में बुद्धि (intelligence) होती है। इस गण में लिमुर (lemur), वानर (monkeys) कपि (apes) तथा स्वयं मानव जाति (human kind) सम्मिलित की जाती हैं। उदाहरण - गिब्बन (Gibbon), ओरेंगउटान (Orange), गोरिल्ला (Gorilla) एवं चिम्पैन्त्रनी (Chimpanzee), होमोसेपियन्स सेपियन्स (Homo sapiens sapiens) अंर्थात् मानव।
5. **गण इडेन्टेट (Order Edentata) :** दंतों में केवल इनेमल रहित मोलर उपस्थित अथवा पूर्णतया अनुपस्थित; " नव - विश्व " अर्थात् मध्य एवं दक्षिणी अमेरिका में सीमित। स्लॉथ (sloth = Bradypus), चींटीखोर (ant - eater = Myrmecophagus) एवं आर्मडिलो (armadillo = Dasypus)।
6. **गण फॉलीडोटा (Order Pholidota) :** टे - बड़ी, चपटी, कठोर, अतिछादित (over lapping), शल्कों अर्थात् प्लेटों से ढकइ। होती है; दंत अनुपस्थित; इकहरी, लम्बी , चिपचिपी जीभ उपस्थित होती है जो पकड़ ने का सुलभ कार्य करती है, उदाहरण- भारतीय शल्की चींटीखोर अर्थात् पेगोलि (scaly anteater or pangolin = Manis)।
7. **गण लेगोमार्फा (Order Lagomorpha) :** छोटे अथवा मध्यम परिमाण के शाकाहारी स्तनि जिनके खुरपी - रूपी इन्सइजर दंत निरंतर वृद्धि कारक होते हैं। ऊपरी जबड़े पर इन्साइज़र दंतों की 2 जोडि याँ एक दूसरे के पीछे उपस्थित होती हैं, निचले जबड़े पर एक जोड़ी इन्साइज़र दंत उपस्थित होते हैं; केनाइन दंत (canines) नहीं होते हैं तथा इन्साइज़र एव प्रीमोलर दंतों के मध्य जबडो पर डाइस्टेमा (diastema) नामक रिक्त स्थान होता है। उदाहरण - **खरगोश** (rabbit = Oryctolagus), **खरहा** (hare = Lepus)।

8. **गण रोडेन्शिया (Order Rodentia) :** छोटे परिमाण के मूलत : शाकाहारी (कु छ सर्वाहारी) निरन्तर वृद्धिकारी इन्साइज़र दंत युक्त स्तनि। दोनों ऊपरी एवं निचले हनुओं पर केवल एक - एक जोड़ी इन्साइज़र दंत उपस्थित होते हैं। केनाइन प्रीमोनर दंत अनुपस्थित होते हैं तथा इन्साइज़र एवं मोनर दंतों के बीच खाली स्थान, डाइस्टेमा (diastema), स्थित होता है। अत्यन्त मुनकूलित विश्व व्यापी स्तनि; उदाहरण - **चूहा** (rat = Rattus), **चुहिया** (mouse = Mus), **गिलहरी** (squirrel = Funabulus); **सेही:** (porcupine = Hystrix)।
9. **गण सिटेशिया (Order Cetacea):** पूर्णतया जलीय समुद्री मछली - सदृश्य अत्यन्त विभेदित स्तनि। सामान्यत : विशालकाय र्द्व - आकार देह, नुकीला शीर्ष सीधे ही धड से मिला होता है (स्पष्ट ग्रीवा अनुपस्थित); अग्रपाद चप्पू - सदृश्य (paddle - like); पश्चपाद अनुपस्थित; लम्बी पुच्छ का अन्त द्विभाजित चपटे अनुपस्थ भागों अर्थात् फ्लुक (fluks) के रूप में होता है। त्वचा चिकनी होती है तथा रोमों का प्राय : अभाव होता है। गण में चिरपरिचित व्हेल (whales)। आती हैं। विश्व का सबसे बड़ा प्राणी नीली व्हेल (blue whale = Balaenoptera) होती है जिसकी लम्बाई लगभग 35 मीटर तक होती है); डाल्फिन अर्थात् सूँस (dolphins = Delphinus) '
10. **गण कार्निवोरा (Order Carnivora):** छोटे से अपेक्षाकृत बड़े परिमाण के मूलत माँसभक्षी (carnivorous) स्तनि। सभी दंत अत्यन्त पैने एवं नुकीले होते हैं; पाद 5 अंगुलियाँ युक्त होते हैं जिन पर पैने एवं नुकीले नखर लगे होते हैं। गुट को दो जीवित उपवर्गों में विभाजित किया जाता है-
    (i) **उपगण फिसीपीडिया (Suborder Fissipedia) :** स्थलीय प्राणी जिनकी अंगुलियाँ परस्पर पृथक होती हैं। सौमान्यतया परभक्षी मांसाहारी जन्तु। उदाहरण - **कुत्ता** (dog = Canis), **बिल्ली** (cat = Feils), **बाघ** (tiger = Panthera tigris), **नेवला** (mongoose = Herpestes), **भालू** (bear = ursus); जरक (Hyaena), आदि।

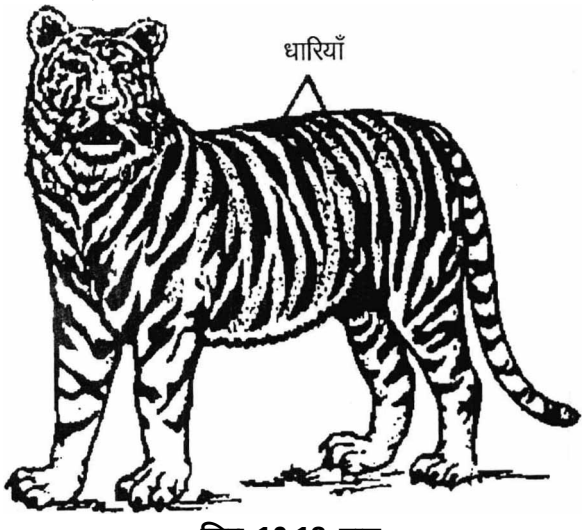

चित्र 10.18 बाघ

    (ii) **उपगण पीनिपीडिया** (Suborder Pinnipedia) : जलीय अथवा समुद्र - तटीय स्तनि जिनकी देह तर्कु - आकार मछली सदृश्य होती है; दोनों जोड़ी पाद तैरने हेतु चप्पू सदृश्य

होते हैं; पुच्छ छोटी होती है; यूथी (gregarious)। उदाहरण - **समुद्री सिंह** (sea lion = Eumetopias) **वालरस** (walrus = Odobenus) तथा **सील** (seal = phoca)।

11. **गण दयूबीलेडेन्टेटा (Order Tubulidentata) :** स्थूलकाय सूअर - सदृश्य शरीर; लम्बी अन (snout) एवं बड़े कर्ण पल्लव युक्त; इन्साइज़र दंत लम्बे, इकहरे एव बहिर्व र्तन शील, केनाइन दंत अनुपस्थित; देह पर रोमों का लगभग अभाव; रात्रिचर; कटि भक्षी, प्रमुख भोजन चीटियाँ एव दीमक होता है। उदाहरण - **अफ्रीकी आर्ड वार्क** (aardvark = Orycteropus)।
12. **गण प्रॉबोसीडिया (Order Proboscidea) :** भीमकाय शाकाहारी स्तनि। बड़ा शीर्ष, चौड़े चपटे पंखे सदृश्य कर्ण पल्लव युक्त; नाक एवं ऊपरी होठ एक लम्बी अत्यन्त लचीली मांसल प्रोथ अर्थात् शुण्ड (proboscis) बनाते हैं; ऊपरी इन्साइज़र दंत प्राय: लम्बे, घुमावदार बाहर की ओर उन्मुख "हाथी-दंत" (tusks) के रूप में होते हैं; पाद स्तम्भ- सदृश्य हैं जिन पर मुग्दराकार पाँव होते हैं। पाँच अंगुलियाँ उपस्थित होती हैं तथा प्रत्येक पर एक नख - रूपी खुर (hoof)ई उपस्थित होता है; स्वभाव यूथ (gregarious) होता है। इस गण में हाथी (elephants) आते हैं जो वर्तमान में एशिया (Elephas maximus) तथा अफ्रीका (Loxodonta africana) में मिलते हैं।
13. **गण हाइरेकॉएडिया (Order Hyracoidea):** छोटे परिमाण के स्तनि जिनके अग्रपाद पर 4 तथा पश्चपाद पर 3 अंगुलियाँ होती हैं; कर्ण पल्लव एव पुच्छ छोटी होती है; केनाइन दत अनुपस्थित होते हैं। केवल एक श्रेणी (Procavia (Hyrax)) 1 पायी जाती है जो अफ्रीका में मिलती है तथा सामान्यतया कोनी (coney) कहलाती है।
14. **गण साइरेनिया (Order Sirenia):** बड़े परिमाण के मछली सदृश्य शाकाहारी पूर्णतया जलीय प्राय : समुद्री स्तनि। अग्रपाद चप्पू- सदृश्य तथा पश्चपादों का अभाव होता है; पुच्छ एक चपटे पार्श्वीय खाँच - रहित चप्पू सदृश्य पलूक (fluke) के रूप में होती है। इस गण में समुद्री गाय (sea cow) अर्थात् मनाटी (manatees) आती हैं। उदाहरण - हिन्द महासागर के तटीय क्षेत्र की डुगॉना (dugong = Halicore dugong)।
15. **गण पेरीसोडेक्टाइला (Order Perissodactyla) :** बड़े परिमाण के शाकाहारी स्तनि जिनके पाद लम्बे सीधे, इकहरे, अर्थात्(पैर बाँस - सदृश्य (stilt -like) होते हैं; पाँवों पर अंगुलियों की संख्या विषम (odd) होती है। ये एक अत्यन्त मोटे मृगी खुर (hoof - unguis) से रेखित होती हैं। पाद का अक्ष सदैव मध्य अर्थात् तीसरी (odd-toed ungulates) रखे जाते हैं। उदाहरण - **घोड़** (horse = Equus caballus), **गधा** (donkey = E.asinus), **ज़ेबरा** (zebra = E.Zebra), **टेपिर** (tapir = Tapirus), गैंडा अर्थात् **राइनों** (Rhinoceros), आदि।
16. **गण आर्टियोडेक्टाइला (Order Artiodactyla) :** मध्यम रो बड़े परिमाण के शाकाहारी स्तनि जिनके पाद लम्बे, सीधे, इकहरे पैरबाँसा - सदृश्य होते हैं। प्रत्येक पाद पर आदर्श रूप से केवल दो (दूसरी एवं तीसरी) अंगुलियाँ कार्यशील होती हैं तथा जो एक अत्यन्त मोटे शृगी खुर (hoof or unguis) से घिरी होती हैं; पाद का अक्ष दूसरी एव तीसरी अंगुलियों के बीच से गुजरता है; अनेक सदस्यों में शीर्ष पर शृंग (horns) होते हैं; आमाशय में चार कक्ष होते हैं तथा ये जुगाली (ruminate) करते हैं। अत : इन्हें समपदज खुरधारी अथवा रूमीनेन्ट (even toed ungulates or ruminants) कहा जाता है। उदाहरण - **सूअर** (pig = Sus), **हिप्पो** (hippo = Hippopotamus), **ऊँट** (camel = Camelus), **हिरन** (deer = Cervus), **जिराफ**

(giraffe = Giraffa), **भेड़** (sheep = Ovis), **गाय** (cow = Bos), **बकरी** (goat = Capra), **भैस** (buffalo = Bubalus), आदि।

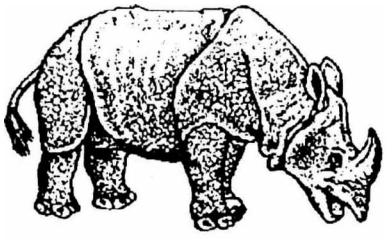

चित्र 10.19. राइनो

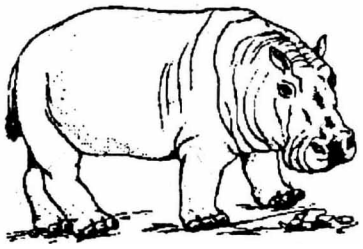

चित्र 10.20 हिप्पो

पहले समय में गण पेरिसोडैक्टाइला एव आर्टियोडेक्टाइल के सदस्यों को एक ही गण हर्बावोरा (Order Herbivora) में रखा जाता था, जो गण कार्निवोरा (Order Carnivora) का विपरीत था।

बोध प्रश्न (Self - assessment Questions)

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. प्राणि-जगत् का सबसे अन्तिम संघ है -।
   (अ) इकाइनोडमेटा
   (ब) यूरोकॉर्डेटा
   (C) कॉडेटा
   (D) मैमेलिया ( )
2. प्राणि-जगत् के कितने प्रतिशत प्राणी कॉर्डेटा में आते हैं -
   (अ) 3 - 5%
   (ब) 5 - 8%
   (स) 15 - 352
   (द) 90 - 9502 ( )
3. कॉर्डेटा में सबसे कम जीवित सदस्य किस वर्ग में आते हैं?
   (अ) मछली वर्ग में
   (ब) उभयचर में
   (स) सरीसृप में
   (द) मैमेलिया में ( )
4. मछली वर्ग एवं उभयचर में कपालिय तन्त्रिकाओं की संख्या होती है -
   (अ) 7 जोड़ी
   (ब) 8 जोड़ी
   (स) 10 जोड़ी
   (द) 12 जोड़ी ( )
5. ट्यूनिसिन का टेस्ट (खोल) पाया जाता है -
   (अ) हेमीकॉर्डेटा
   (ब) यूरोकॉर्डेटा
   (स) सिफेलोकॉर्डेटा

(द) उपरोक्त सभी में ( )

6. प्लेकॉइड शल्क पाये जाते हैं -
(अ) मछलियों में
(ब) कॉन्ड्रिक्थीज में
(स) ऑस्टिक्थीज में
(द) डिटाई में ( )

7. क्लेसपर्स पाये जाते हैं -
(अ) स्कालियोडोन में
(ब) हिप्पोपोटेमस में
(स) लेबियो में
(द) उपरोक्त सभी में ( )

8. सबसे बड़ी जीवित शार्क है -
(अ) काइमेरा
(ब) राइनोडोन
(स) राइनोबेटस
(द) स्फीनरा ( )

9. उर्ध्वाधर तैरने वाली मछली है -
(अ) हिप्पोकेम्पस
(ब) टेट्राडॉन
(स) अयोडॉन
(द) इकेनीस ( )

10. चिरभ्रूणीयता (neotany) का उदाहरण है -
(अ) टेडपोल लार्वा
(ब) एक्सोटल लार्वा
(स) फ़ाई
(द) एमोसीट लार्वा ( )

11. सबसे बड़ा मेंढक है -
(अ) राना टिग्रीना
(ब) राना गोलियथ
(स) बम्बिनेटर
(द) बुफो ( )

12. सरीसृप का अध्ययन कहलाता है -
(अ) हरपेटोलॉजी
(ब) वरपेन्टोलॉजी
(स) सॉरोलॉजी
(द)ऑफियोलॉजी ( )

13. गण-किलोनिया किस उप वर्ग के अन्तर्गत रखा गया है-

(अ) एनेप्सीड़ा
(ब) अएप्सीडा
(स) पेरेप्सिडा
(द) साइनेप्सिडा ( )

14. डाइकोन्डाइलिक करोटि किसका लक्षण है -
(अ) एम्फ़िबिया व सरीसृप
(ब) सरीसृप व एवीज
(स) एम्फ़िबिया व स्तनी
(द) एवीज व स्तनी ( )

15. स्तनियों तथा सरीसृपों के बीच की योजक रही है-
(अ) आर्कियोप्टेरिक्स
(ब) फुफ्फुस मीन
(स) प्लेटीपस
(द) इक्थियोपीस ( )

16. बॉया फेफड़ा कम विकसित होता है -
(अ) मछलियों में
(ब) छिपकलियों में
(स) सर्पो में
(द) पक्षी में ( )

17. सबसे बड़ा सर्प है -
(अ) टिफलोप्स
(ब) एरिक्स
(स) पाइथन
(द) नाजा ( )

18. निम्न में से सबसे लम्बा जीवन कॉल होता है -
(अ) मनुष्य का
(ब) कछुए का
(स) छिपकली का
(द) अजगर का ( )

19. गर्तदन्ती (theocodont) दाँत पाये जाते हैं -
(अ) क्रोकोडिलिया व उभयचर में
(ब) क्रोकोडिलिया व स्तनियों में
(स) पक्षियों में
(द) केवल क्रोकोडिलिया में ( )

20. पाद विहिन छिपकली हे -
(अ) ड्रेको
(ब) ऑफिसोसॉरस

(स) एम्बिलीरिकेस

(द) मॉलाच ( )

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

21. एम्फ़िऑक्सस, ...समूह का सदस्य है।
22. स्तनधारियों में .... जोड़ी कपालीय तंत्रिकाएँ पायी जाती है।
23. पेट्रोमाइजोन का लार्वा.....कहलता है।
24. राजस्थान राज्य का 'प्रांतीय पशु.....है।
25. स्तनधारियों की ग्रीवा मे.....कशोरूकाएँ पायी जाती है।

10.7 सारांश (Summary)

- कॉर्डेटा शब्द सर्वप्रथम 1880 में बालफौर ने दिया था।
- कॉर्डेटा का शाब्दिक अर्थ है ' नोटोकॉर्ड रखने वाले जन्तु'।
- कॉर्डेटा में सबसे अधिक जातियाँ पिसीज समूह में तथा सबसे कम जातियाँ एष्फीबिया में आती है।
- इन प्राणियों में गुदा पश्च पुच्छ (Post and tail) पायी जाती है।
- कॉर्डेटस में उपस्थित पिसीज एस्फाबिया एवं रेप्टीलिया समूह के प्राणी असमतापी तथा एवीज एवं मैमेलिया के जन्तु समतापी होते हैं।
- प्रोटोकॉर्डेटा में आदि कॉर्डेटस जन्तु आते है तथा इनमें अन्तःकंकाल का पूर्ण अभाव होता है।
- अधिकतर वयस्क यूरो कॉर्डेटस स्थानबद्ध होते हैं तथा इनके शरीर के चारों ओर दयूनीसीन का बना हुआ मुलायम थैले के समान आवरण होता है।
- सिफेलोकॉर्डेटस में नोटोकॉर्ड प्राणी के शरीर की पूर्ण लम्बाई में पायी जाती है तथा कॉर्डेटा के मूल भूत लक्षण जीवन भर पाये जाते हैं। इसलिये इन्हें प्रारूपिक कॉर्डेटस (typical chordates) कहते है।
- मछलियों का अध्ययन इक्थिओलॉजी (Ichthylogy) कहलाता है। इनकी उत्पत्ति ऑर्डोविसियन काल में हुई थी।
- राइनोडोन सबरने बड़ी जीवित मछली है।
- डिज़ाई समूह की मछलियाँ पिसीज एवं एष्फीबिया के मध्य की संयोजक कड़ी कहलाती है।
- एम्फ़िबियन्स प्रथम कॉर्डेटस हैं जो जल से निकलकर भूमि पर आये।
- बुफ़ों के शरीर पर विष ग्रंथिया पायी जाती हैं।
- रेप्टाइलन प्रथम ऐसे कॉर्डेटस है जो जमीन पर रहने में पूर्ण रूप से सक्षम होते हैं।
- रेप्टाइलन जन्तुओं का **मीसोजोइक युग** में आधिपत्य था इसलिये इस युग को **रेप्टाइल्स** का रचर्ण युग माना जाता है।
- रेप्टाइलस के अध्ययन को **हरपेटोलोजी** कहते हैं।
- हीलोडर्मा एक मात्र जहरीली छिपकली होती है।
- पक्षियों के अध्ययन **ऑर्निथोलॉजी** कहलाता है।
- एवीज वर्ग, कशेरुकियों का दूसरा सबसे बड़ा वर्ग है।

- पक्षियों में ध्वनि उत्पादक अंग सिरिक्स होता है।
- पक्षियों के जबड़े दन्त विहिन होते हैं।
- आर्कियोप्टेरिक्स को रेप्टाइलस एवं पक्षियों के मध्य की योजक कड़ी माना जाता है।
- पेवो क्रिस्टेटस (Pavo Cristatus) अर्थात् मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी है।
- कोरियोटिस नाइग्रीसेप (Chrotis nigiriceps) अर्थात गोडावन राजस्थान का प्रान्तीय पक्षी
- स्तनधारियों का अध्ययन **मैमोलॉजी** कहलाता है।
- इनके शरीर पर बालों का आवरण पाया जाता है। जिसे लोम चर्म (pleage) कहते हैं।
- इनमें कर्ण पल्लव, कॉर्पस केलोसम, स्तन ग्रंथियाँ, डायफ्राम तथा वृषण उदर के बाहर पाये जाते हैं।
- स्तनधारियों की ग्रीवा में 7 ग्रीवा कशेरुकाएँ पायी जाती है तथा लाल रक्ताणु केन्द्रक विहिन होते हैं।
- पेन्धेरा ट्राइगिस (Panthera tigris) अर्थात् बाघ का भारत का राष्ट्रीय जन्तु माना जाता
- गजेला गजेला (Gezella gazella) अर्थात् चिन्कारा, राजस्थान का प्रान्तीय जन्तु है।
- भारतीय नीली केल, सबसे बड़ा स्तनधारी जन्तु है।

10.8 शब्दावली (Glossary)

पश्चगुदीय पुन्छ	Post and tail
ग्रसकयि क्लोम दरारे	Pharyngeal gill slits
यकृत निवाहिका उपतन्त्र	Hepatic portal sub-system
खोल `	Test
युग्मित उपांग	Paired appendages
शिरीय हृदय	Venous heart
पार्श्व रेखा तन्त्र	Lateral line system
शल्क	Scale
अवस्कर	Cloaca
फुफ्फुस मीन	Lung fish
मस्तिष्क पिटारी	Cranium
नासा छिद्र	Nostrils
करोटि द्विकन्दकीय	Skull - Dicondyalic
धमनी तन्त्र	Arterial system
अण्ड यजक	Oviparous
मध्य पीतकी	Mesolecithal
पूर्ण भंजी एवं असमान विदलन	Holoblastic and unequal cleavage
चिरभ्रूणता	Neoteny
अस्थिल प्रशल्क	Bony scutes

गर्तदन्ती	Thecodont
समतापी	Homoiothermal
विषमणर्ती	Heterocoelus
भ्रूण कलायें	Faetal membranes
लोन चर्म	Pelage
द्रिबार दन्ती	Diphyodont
उभयावतल	Binocave

10.9 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली, रंगा एवं लौरी. प्राणी विविधता तथा उद्विकास; रमेश बुक डिपो, जयपुर
2. Prof. R.L. Kotpal : Vertebrates , Rastogi Publications , Merrut.

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to self assessment questions)

बहु वैकल्पिक प्रश्न

1. (स)	2. (अ)	3. (ब)	4. (स)	5. (ब)
6. (ब)	7. (अ)	8. (ब)	9. (अ)	10. (ब)
11. (ब)	12. (अ)	13. (अ)	14. (स)	15. (स)
16. (स)	17. (स)	18. (ब)	19. (ब)	20. (ब)

रिक्त स्थानों की पूर्ति

21. सेफेलोकॉर्डेटा
22. 12 जोड़ी
23. एमोसीट
24. गजेला गजेला (चिन्कारा)
25. 7 कशरुकाएँ

10.11 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. कॉर्डेटा नामकिस वैज्ञानिक द्वारा रखा गया?
2. यूरोकॉर्डेटा का एक उदाहरण लिखिए।
3. यादे वयस्क जन्तु में लार्वा के लक्षण पाये जायें तो उसे कहते हैं।
4. पेट्रोमाइजोन किसरको का सदस्य है?
5. मछलियों का अध्ययन जीव विज्ञान की किस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है?
6. विश्व की एक मात्र जहरीली छिपकली कौन सी है।
7. सिरिक्स किस वर्ग के प्राणियों का ध्वनि उत्पादक अंग है?
8. अण्डे देने वाले स्तनधारियों के नाम लिखिये।
9. किस वर्ग के वर्टीब्रेट के अण्डाशय में ग्राफियन पुटिका व कॉर्पस लुटियम पाया जाता है?

10. कंगारू के उदर पर पायेजाने वाले थैलेनुमा रचनाको क्या कहते हैं?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

11. मछली वर्ग के प्रमुख लक्षण लिखिए।
12. यूरोकॉर्डेटा व सिफेलोकॉर्डेटा में अन्तर लिखिए।
13. पक्षी वर्ग के प्रमुख लक्षण लिखिए।

इकाई 11: जीवन की उत्पत्ति व उद्‌विकासीय धारणाओं का इतिहास (Origin of Life and History of Evolutionary Thought)

इकाई की रूपरेखा (Outline of Unit)

11.0 उद्देश्य (Objectives)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

11.2 जीवन की उत्पत्ति (Origin of life)

11.3 उद्‌विकासीय धारणाओं के सिद्धान्त (Theory of Evolutionary Thoughts)

11.4 लैमार्कवाद या उपार्जित लक्षणों की आनुवांशिकता का सिद्धान्त (Lamarkism of theory of Imberotance of Acquired Characters)

11.5 नव - लैमार्कवाद (Neo -Lamarkism)

11.6 डार्विनवाद (Darwinism)

11.7 नव - डार्विनवाद (Neo Darwinism)

11.8 सारांश (Summary)

11.9 शब्दावली (Glossary)

11.10 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to self assessment Questions)

11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

11.0 उद्देश्य (Objectives)

- इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप निम्न बिन्दु जानने योग्य हो जायेंगे -
- जीवन की उत्पत्ति कैसे हुई होगी। इसको समझने के लिये समय - समय पर कौन सी अवधारणा प्रस्तुत की गई।
- उद्‌विकास को समझाने के लिये समय - समय पर क्या सिद्धान्त प्रस्तावित किये गये तथा उद्‌विकास की प्रक्रिया को कौन से कारक निरन्तर गति देते रहे।
- लैमार्क का उपार्जित लक्षणों की आनुवांशिकता का सिद्धान्त क्या था। उनके सिद्धान्त की पुष्टि के लिये अन्य वैज्ञानिकों ने क्या तर्क दिये।
- डार्विन का प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त क्या था। उनके इस सिद्धान्त की समय - समय पर आलोचनाओं के चलते उसमें क्या आवश्यक सुधार कर वैज्ञानिकों ने सिद्धान्त की पुष्टि की।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

जीवन क्या है तथा पृथ्वी पर सर्वप्रथम जीव किस रूप में आया इसको जानने की इच्छा लम्बे समय से वैज्ञानिकों में बनी थी। इसको समझने के लिये समय-समय पर अनेक मत प्रस्तावित किय गये। सरलतम जीव में किस प्रकार अपने आप को रूपान्तरित कर जटिलतम संरचना प्राप्त की। इसे उद्‌विकास कहा गया। कॉर्बनिक उद्‌विकास का सिद्धान्त समझाता है कि आधुनिक जटिल जन्तु एवं पादप का रूप आदिम जीव से है। अनेक वर्षो में शनैः शनैः परिवर्तित हुए प्राप्त हुआ

होगा। अत: ब्रह्माण्ड पर जीवों का उद्विकास एक लम्बी जटिल प्रक्रिया है। यह जटिल प्रक्रिया आज भी जारी है। इसको समझाने के लिये वैज्ञानिकों ने समय-समय पर अनेक मत प्रस्तावित किये जिसका अध्ययन इस इकाई मे प्रस्तुत किया गया है।

11.2 जीव की उत्पत्ति (Origin of life)

जीव उत्पत्ति : जब से मानव में वृद्धि का विकास हुआ तब ही से स्वय और अन्य जीवधारियों के वर्तमान स्वरूप के प्रति उसकी जिज्ञासा निरन्तर बढ़ती रही है। मानव सहित अनेकों हस्पर रंग-बिरंगे और विचित्र जीवधारी कैसे उत्पन्न हुए और उनका इतना वैभवशाली विकास किन कारणों से हुआ? सह प्रश्न पुरातन काल से अनेकों दार्शनिकों, विचारकों और मनीषियों के मन को आंदोलित करते रहे हैं। समय-समय पर इन्हीं विचारकों ने अनेकों अवधारणाओं के बल परजीव उत्पत्ति और लम्बा इतिहास है। संक्षेप में विभिन्न विचारधाराओं को निम्नलिखित चार मुख्य सिद्धान्तों में व्यक्त किया जा सकता है-

1. **विशिष्ट सृष्टि सिद्धान्त (Special Creation Theory) :** विज्ञान के अभाव में पुरातन विचारक मात्र अपनी कल्पना शक्ति के बल पर सिद्धान्त रचते थे। इस सिद्धान्त का मुख्य आधार धार्मिक चिन्तन है जिसमें विश्वास की शक्तिशाली भूमिका रही है। विभिन्न धर्मो में अलग- अलग विधि से जीवन का उद्गम और विकास बताया गया है। परन्तु सभी धर्मो में एक समानता यह है कि पृथ्वी में सभी जीवधारियों को किसी दैवीय शक्ति ने अकस्मात बनाया है। हिन्दू धर्म में भगवान के तीन रूप ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु सृष्टि के पालनहार और महेश अर्थात् भगवान शंकर प्रलयकारी बताये गये हैं जो समय-समय पर सभी जीवधारियों के पाप-पुण्य के आधार पर जन्म-जन्मान्तर विभिन्न योनियों (जातियों या स्पीशीज) में डालते रहते हैं। इसी प्रकार ईसाई धर्म के अनुसार भगवान या गाड ने छह दिनों के अन्दर समस्त सृष्टि की रचना करके आदम और ईद को सर्वप्रथम पुराष और नारी के रूप में बना दिया था। कालान्तर में इन्हीं की संतानों से वर्तमान मानव समाज दनु गया। विश्वभर में अनेकों अन्य धर्मो में लगभग इसी प्रकार की धारणाओं का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार की धार्मिक विचारधाराओं को **फादर सुरेज** (1548 - 1617) और **मिल्टन** (1608 - 1874) जैसे पुरातनपंथी लोगों ने मान्यता प्रदान की। परन्तु बापटिस्ट लामार्क एवं चार्ल्स डारविन आदि वैज्ञानिक विचारकों ने गहन अध्ययन करके यह पाया कि कोई भी जीवधारी उपरोक्त धारणाओं के अनुसार अकस्मात उत्पन्न नहीं हुआ है। इस प्रकार हाल्डेन ने भी इन दैवीय शक्ति वाली विचारधाराओं को कपोल-कल्पित बताया क्योंकि इनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

2. **स्वाभाविक स्वत: उत्पत्ति सिद्धान्त :** मध्यकालीन युग में अनेकों विचारकों ने स्वाभाविक स्वत: उत्पत्ति सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार अजैविकपदार्थ स्वत: ही अकस्मात जैविक रूप धारण कर लेते हैं। **अनाक्सीमॉडर** (811 - 547 ईसा पूर्व) नामक ग्रीक दार्शनिक का विचार था कि वनस्पति और जन्तु स्वत: ही अजैविक पदार्थो से उत्पन्न हो जाते हैं। **अरस्तु** (384 - 322 ईसा पूर्व) जैसे महान दार्शनिक ने बताया कि कृमी, कटि, मछली, मेंढक और चूहे आदि जन्तु उपयुक्त गीली मिट्टी और कीचड़ से खुदब -खुद (स्वत:) विकसित हो जाते हैं। इन्हीं विचारकों का मत था कि मानव की उत्पत्ति भी कृमी वर्ग के जन्तुओं से स्वत: हो गई थी। स्वाभाविक उत्पत्ति के संदर्भ में अनेकों रोचक विचार प्रकट किये गये थे जैसे बत्तख स्वत: समुद्री

सीप उत्पन्न होती हैं और ये सीप स्वयं एक बत्तखों के पेड पर पटकी रहती हैं, इजिप्ट या मिल' देश मे मगरमच्छों का स्वत: उत्पादन नील नदी की मिट्टी से माना जाता था, भारतवर्ष के पिछड़े क्षेत्रों में अभी भी यह धारणा है कि गोबर औंर कन्दों से बिच्छू उत्पन्न हो जाते हैं। लामार्क जैसे विकासवादी दार्शनिक ने भी यह बताया था कि गुच्छी नामक फफूँद (कवक) स्वत: उत्पन्न होती है।

परन्तु उपरोक्त कपोल-कल्पित धारणाओं पर आधारित स्वाभाविक स्वत: उत्पत्ति के सिद्धान्त को सर्वप्रथम **फ्रान्सिस को रेडी** (1 6 26 - 1698) नामक चिकित्सक ने अपने प्रयोगों से गलत प्रमाणित करके धराशायी कर दिया था। तत्पश्चात् **बुफो** (1707 - 1799), **नीद्धम** (1713 - 1781) **स्पालान्जनी** (1729 - 1799) एवं **पारश्चर** (1822 - 1895) आदि वैज्ञानिकों ने इन तथ्यहीन धारणाओं को निर्मूल प्रमाणित करके विकास वादी विचारधारा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

3. **जीवन की निरुतरता का सिद्धान्त :** इस सिद्धान्त की आधारभूत मान्यता है कि जीवन सदैव था, है, और सदैव रहेगा। पृथ्वी पर न तो जीवन की कोई उत्पत्ति है और न अन्त। जीवन मात्र अपने रूप बदलता है परन्तु कभी समाप्त नहीं होता है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत निम्न मुख्य अवधारणाओं का वर्णन किया जा सकता है।

ब्रह्माण्ड एवं उल्कापात अवधारणा : इस धारणा के मुख्य वक्ता रिचटर (1865) के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति के समय कुछ दैवीय रचना जीवन के बीजाणु के रूप में ब्रह्माण्ड से आ गये और कालान्तर में इन बीजाणुओं से विभिन्न जीव-जन्तु उत्पन्न हो गये। इसी से मिलता-जुलता एक अन्य विचार कि उल्कापात से जीवन के बीजाणु पृथ्वी पर आ गिरे थे, **हलमोज** (1864) ने भी दिया था।

प्रेयर (1880) के विचार में पृथ्वी पर जीवन उस समय भी विद्यमान था जब पृथ्वी पिघले हुए गोले के रूप में विकसित होती हुई ठण्डी हो रही थी। **बौन्दी** (1952) और **होयल** (1950) औरगोल्ड आदि ने बताया कि समस्त ब्रह्माण्ड जैसा आज है ऐसा ही सदैव था। इस विचार को सुधारते हुए **अम्बर जूमियन** (1953) ने कहा कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड के किसी न किसी भाग में पृथ्वी के वर्तमान जीवन का स्वरूप सदैव विद्यमान रहा है।

4. **आधुनिक अवधारणाओं का जैव विकास या उद्विकास का सिद्धान्त :** सर्वमान्य आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार जीव की उत्पत्ति की उपरोक्त सभी धारणाएँ मात्र कल्पना शक्ति की अवैज्ञानिक उडान हैं जिनके आधार पर जीवधारियों के वर्तमान स्वरूप और उत्पत्ति को स्पष्ट करना असंभव है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि जीवन की उत्पत्ति और विकास एक अति धीमी प्राकृतिक रसायनिक प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप अरबों-खरबों वर्ष के दीर्घ समय में आधुनिक जीवधारियों का विकसित रूप संभव हुआ है।

सर्वप्रथम 1936 में एक रूसी जीव वैज्ञानिक ए. आई. ओपेरिन ने जीव उत्पत्ति की प्राकृतिक रासायनिक प्रक्रिया को एक सर्वमान्य आधुनिक सिद्धान्त के रूप में अपनी पुस्तक " ओरीजन आफ लाईफ' ' (Origin of life) में प्रकाशित किया था। उनके इस सिद्धान्त का मूल आधार प्राकृतिक घटनाओं के परिणामस्वरूप विभिन्न रासायनिक तत्वों की अनुक्रिया होना है जो कलान्तर में सरल कार्बनिक पदार्थो को जन्म देने में सफल हो गई। इन्हीं सरल कार्बनिक पदार्थो की उत्पत्ति वास्तव में जीवन की उत्पत्ति की घटना थी जो आगे चलकर शनै: शनै: अधिक

जटिल कार्बनिक पदार्थो के निर्माण से जटिल जीवधारियों का विकास करने में समर्थ हुई। ओपेरिन के रासायनिक जीव उत्पत्ति सिद्धान्त का संक्षिप्त विवरण निम्नवत समझा जा सकता है।

i. **पृथ्वी का प्रन्नवीलत उद्‌गम :** ओपेरिन ने सर जेम्स जीन्स की इस अवधारणा को मान्यता दी कि पृथ्वी का उद्‌गम आग के गोले के रूप में सूर्य की कक्षा से अलग होने के कारण हुआ था। अत: प्रारम्भ में पृथ्वी भी एक आग के गोले के रूप में अति उच तापमान (6000 - 60000 से.) का गैसीय पिण्ड था और वास्तव में यही प्रारम्भिक उध तापमान जीवन की उत्पत्ति का मुख्य आधार बना।

ii. **पृथ्वी की अग्रणी अवस्था में मूल तत्वों की उपस्थिति:** इस सिद्धान्त के अनुसार जीवन का मूल तत्व " कार्बन' ' उच तापमान के कारण तीन रूप में उपस्थित था- डाइकार्बन (C_2), साईनोजन (CN) और मीथेन (CH_4)। परन्तु स्वतंत्र रूप में ऑक्सीजन उब ताप पर नहीं पाई जाती थी यद्‌यपि एलुमिनियम, बोरोन, हाइड्रोजन, टाइटेनियम और जिर्कोनियम आदि तत्वों के ऑक्साइडस पर्याप्त मात्रा में पाये जाते थे।

iii. **अग्रणी तत्वों की अनुक्रिया या अमोनिया की उत्पत्ति:**उध तापमान पर विभिन्न धातुओं के नाइट्राइडस (MeN) और उध तापीय भाप (जल वाष्प) की अनुक्रिया से अमोनिया (NH_3) की उत्पत्ति हुई होगी

$$MeN + 3H_2O \rightarrow Me(OH)_3 + NH_3$$

(उपरोक्त सूत्र में Me धातु को दर्शाता है।)

इसके अतिरिक्त उधताप के प्रभाव में हाइड्रोजन और नाइट्रोजन की सीधी अनुक्रिया से अमोनिया की उत्पत्ति

संभव थी :

$$3H_2 + N_2 \rightarrow 2NH_3$$

(उच्च ताप पर)

अथवा उधतापीय भाप से विभिन्न साइनाइड्स की अनुक्रिया से निम्न प्रकार अमोनिया बनी थी-

$$CaCN_2 + 3H_2O \rightarrow CaCO_3 + 2NH_3$$

iv. **कार्बनिक पदार्थो की उत्पत्ति (हाइड्रोकार्बन और उनके उत्पादन) :** ओपेरिन के अनुसार सर्वप्रथम कार्बन पदार्थ अपचयन प्रक्रिया (Reduction) से हाइड्रोकार्बन के रूप में प्रकट हुए थे। ऑक्सीकृत या उपचयित कार्बन-डाइऑक्त्साइड आगे चलकर उत्पन्न हुई थी। ओपेरिन ने अपनी परिकल्पना में प्रारम्भिक अवस्था में पृथ्वी पर स्वतन्त्र ऑक्सीजन की शून्यता बताई है। जैसे-जैसे पृथ्वी ठण्डी होती गई तब लगभग 10000 से. के तापमान पर अन्य संतृप्त और असंतृप्त हाइड्रोकार्बन पदार्थ निर्मित होते गये। इसी समय विभिन्न धातुओं (Me) के कार्बाइड्स और उध तापीय भाप की अनुक्रिया से हाइड्रोकार्बन्स की उत्पत्ति भी हुई थी।

$$CH + CH \rightarrow HC = CH$$ ऐसिटाइलीन

$$CH_2 + CH_2 = CH_4 + C$$

(मीथेन)

$$CH_2 + CH_2 = C_2H_4$$ (इथाएलिन)

$$CaC_2 + H_2O = C_2H_2 + CaO$$

(ऐसीटायलिन)

इस प्रकार पृथ्वी का प्रारम्भिक वायुमण्डल विभिन्न अपचयित (Reduced) पदार्थों वाला था जिसमें अमोनिया ,हाइड्रोजन एवम आँय अनेकों तत्वो का मीक्षण उपस्थित था।

v. **जटिल कार्बनिक पदार्थो का संश्लेषण का गरम तनु रस की उत्पत्ति :** इस परिकल्पना के अनुसारउपरोक्त हाइड्रो-कार्बन्स आपस में निरन्तर अनुक्रियाएँ करते रहे और ऑक्सीकरण (उपचयन), अपचयन पॉलीमराईजेशन या संघनन आदि रसायनिक क्रियाओं के माध्यम से एक जटिल कार्बनिक पदार्थों का तनु द्रव्य बनाने में सफल रहे। इसी जटिल कार्बनिक द्रव्य को हाल्डेन नामक वैज्ञानिक ने "गरम तनु रस" (Hot dilute soup) का नाम दिया है। वास्तव में यह रस जल, विभिन्न ऐल्कोहॉल, ऐल्डिहाइड्रस, अस्त, अमीन्स और अमीनो-अम्ल आदि पदार्थों का मिश्रण था जिसकी रचनाकारी क्रियाओं को निम्नवत दर्शाया जा सकता है-

$$HC = \quad CH + H_2O \xrightarrow{\text{संघनन}} CH_3CHO$$

ऐसीटेलडीहाइड

$$CH_3CHO \longrightarrow CH_3CHOCH_3CHO$$

$$CH_3CHO + CH_3CHO$$

एलडॉल

पॉलीमराइजेशन में अणुओं की मृंखला बद्धता निम्न प्रकार हुई है-

$$CH_3COOH + C_2H_5OH \longrightarrow CH_3COOHCH_3CH_2 + H_2O$$

ऐसीटिक अम्ल ऐथाइल ऐल्कोहॉल (ईथाइल ऐसीटेट)

ऑक्सीडो-रिडसान प्रक्रियाएँ-

$$2CH_3CHO \xrightarrow[+H_2O]{Oxido-reduction} CH_3COOH + C_2H_5OH$$

ऐसीटऐल्डिहाइड

ऐसीटिक अम्ल

+

ईथायल एल्कोहल

इसी प्रकार अमीनो अन्त भी निम्नवत उत्पन्न हुए-

(अ) $2HCHO \xrightarrow{Polymerization} CH_2OHCHO$

फार्मेल्डिहाइड ग्लाइकोल एल्डिहाइड

(ब) $2CH_2OHCHO + H_2O \xrightarrow{\text{Oxido-reduction}}$

CH_2OH ग्लाइकॉल

|

CH_2OH

+

CH_2OH

|

$COOH$

ग्लाइकोलिक अम्ल

(स) $CH_2OH + NH_3 \longrightarrow CH_2NH_2COOH + H_2O$

|

COOH

ग्लाईसीन

(अमीनो अम्ल)

vi. **अग्रणी प्रोटीन्स (पॉलीपेप्टाइड्स) उत्पत्ति :** अमीनो अस्त में एक दूसरे से अनुक्रिया करके जटिल अमीनो अम्ल जिन्हें पॉलीपेप्टाइड्स कहते हैं, बनाने की अद्भुत शक्ति होती है। इसीलिए उपरोक्त सरल अमीनो अम्स पॉलीमराइजेशन अनुक्रियाओं से पॉलीपेप्टाइड्स या अग्रणी प्रोटीन्स संश्लेषण करने में सफल हो गये। इस प्रकार आज से लगभग साढ़े चार बिलियन (4.5 bilians) वर्ष पूर्व अग्रणी प्रोटीन्स के रूप में जीवन की उत्पत्ति की आधारशिला रखी गई थी। यह तो आप जानते हैं कि अमीनो अन्त से निर्मित प्रोटीन्स जीवधारियों की कोशिकाओं का मुख्य अंश बनाते हैं।

इन प्रारम्भिक अथवा अग्रणी प्रोटीन्स का बाहरी आवरण जल द्वारा निर्मित था ओर इन्हीं के जटिल संयोजनों से विभिन्न प्रकार के प्रोटीन्स का निर्माण संभव हुआ है।

vii. **अग्रणी जीवाणुओं अथवा कोऐसरवेटस** (Coacervates) की उत्पत्ति. अब तक पृथ्वी का तापमान पर्याप्त मात्रा में घट गया था और संघनन से जल वाष्प ठण्डी होकर महासागर और समुद्रों का रूप धारण कर चुके थे। कलान्तर में महासागरीय जल ने जीवन उत्पत्ति और विकास की प्रयोगशाला और कारखाने का कार्य किया जहाँ जीवन के अग्रदूत के रूप में कुछ अति संक्षिप्त कण या जीवाणु जिन्हें कोएसरवेटक कहते हैं, कि उत्पत्ति हुई थी। कोएसरवेट में एक निश्चित अनुपात में कोलाईड कण होते हैं जिनमें से जल की तनिक सी भी मात्रा निकलकर आसपास के जल में नहीं मिल सकती है अर्थात् ये जीवाणु जल में भी अपने को अलग जलीय बूँद के रूप में बनाये रखने में सक्षम हैं। जीवद्रव्य में भी ऐसी क्षमता स्पष्ट देखी जा सकती है। समुद्री जल में अग्रणी अमीनो अम्ल के पॉलीमराइजेशन और संघनन से ही कोएसरवेटस की उत्पत्ति हुई थी। ओपेरिन के मतानुसार यही जीवाणु कालान्तर में जटिलता धारण करके पृथ्वी पर जीवधारी उत्पन्न करने में सफल हुए।

viii. **अग्रणी जीवधारियों की उत्पत्ति :** ओपेरिन के उपरोक्त कोएसरवेदस विशिष्ट प्रकार के कोलाइड कणों से निर्मित हुए थे। जटिल कोएसरवेदस में एक से अधिक प्रकार के प्रोटीन्स का संगठन कोलाइड कणों के सामूहीकरए) के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ। इन जटिल कोएसरवेदस की भीतरी संरचना में कोलाइड कणों के समूह संगठित हो गये और बाहरी आवरण (कोशिका झिल्ली) का निर्माण कुछ सतही क्रियाशील पदार्थो से संभव हो गया। ये सतही क्रियाशील पदार्थ आसपास के वातावरण के कोलाइड्स के अनुरूप विकसित हो गये। अत: भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में कोलाइड्स की भिन्नता के कारण विभिन्न प्रकार के कोएसरवेटस उत्पन्न हुए जिनकी स्थिरता की क्षमता भी एक दूसरे से अलग होती है। इन्हीं कोएसरवेदस में आन्तरिक जैव द्रव्य क्रियाओं के रूप में अवशोषण (Absorption), उत्प्रेरण (Catalysis) आदि का विकास होता गया। फलस्वरूप विशिष्ट जीवधारियों के अनुरूप विशिष्ट जटिलताओं का विकास हुआ। लगभग इसी समय इन कोएसरवेदस में **एन्जाइम्स** (Enzymes) का विकास हो गया जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक

कोएसरवेट सूक्ष्म कणीय जीवधारी के रूप में जीवन की एक सफल क्रियाशील इकाई बन गया। यहीं से प्रारम्भ होता है जीवन के विकास का लम्बा और रोचक इतिहास।

ओपेरिन की उपरोक्त रासायनिक अवधारणा को आधुनिक विज्ञान के सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में मान्यता प्राप्त है। अनेकों अन्य वैज्ञानित्हो के प्रयोगों से **ओपेरिन** के सिद्धान्त की पुष्टि भी की गई है। ए. एम. बटलेरोव ने 1881 में अपने प्रयोग से यह सिद्ध कर दिया था कि चूने के पानी (Lime Water) और फॉरमेलिन (Formalin) मिश्रण को कुछ समय गर्म स्थान पर रखने से शर्करा (Sugar) के जटिल अणु बन जाते हैं। इसी प्रकार ए. एन. शश (A.N Bach) ने फॉरमेलिन और पोटेशियम साइनाइड से प्रोटीन्स बनाने में सफलता प्राप्त की थी। इस संदर्भ में **एस. एल. मिलर** (S.LMiler) का 1953 में किया गया प्रयोग महत्वपूर्ण है। मिलर ने अमोनिया, हाइड्रोजन और जल के मिश्रण (पृथ्वी के तत्कालीन वातावरण में पाये जाने वाले पदार्थ) को अति उध ताप और उच्च विद्युत स्फुलिंग (High electric charge) से निरन्तर एक सप्ताह तक गुजारा। परिणामस्वरूप अमीनो अम्ल का कृत्रिम संश्लेषण हो गया। यह प्रयोग जीवन उत्पत्ति के रासायनिक सिद्धांत की पुष्टी करता है।

ओपेरिन के सिद्धान्त के अन्य रासायनिक पहलुओं का भी स्पष्ट प्रायोगिक समाधान कर लिया गया है। लेनिनग्राड रूस ने वैज्ञानिक **एस. ई. ब्रेसलर** (S.E Bresler) ने पॉलीपेप्टाइड संश्लेषण के आवश्यक ऊर्जा हटाने की समस्या के संदर्भ में प्रयोगों से यह साबित किया है कि पृथ्वी की आरम्भिक अवस्था में बाह्य उध दबाव इतनी ऊर्जा के लिए पूर्णत: सक्षम था। **एस. पी. कोस्टीचेव, ए. एन. लेवीदेव** आदि (S.P Kostichev , A.N. Lebedev etal) रूसी वैज्ञानिकों ने ही प्रयोगों से यह प्रमाणित कर दिया है कि कृत्रिम रूप में भी विभिन्न जीवधारियों से पृथक किये गये एन्जाइम्स (Enzymes) अपनी विशिष्ट जैव रासायनिक क्रियायें सम्पन्न कर सकते हैं, यदि उन्हें अलग-अलग अनुकूल माध्यमों (Media) में रखा जाये। ए. एन. लेवीदेव और अनेकों अन्य वैज्ञानिकों ने बताया कि किण्वन या खमीन (Fermentation) की जैव रासायनिक क्रियाओं से उपरोक्त कथन की पुष्टि की जा सकती है। हाल्डेन के अनुसार पराबैंगनी (Ultra - violet) किरणों का जल, कार्बन-डाइ- आक्साईड और अमोनिया पर विशेष प्रभाव पड़ने से ये अकार्बनिक पदाा कार्बनिक पदार्थो में परिवर्तित हो जाते हैं। सोबोलोव (Sobolov) ने 1959 में बताया कि पृथ्वी की सतह पर एल्फा कणों (Particles) की बमबारी से ऑक्साइडस से ऑक्सीजन मुक्त होकर वायुमण्डल में मिश्रित होती चली गई थी। अन्तत: इस ऑक्सीजन से अनेक तत्वों के माध्यम से हाइड्रो-कार्बन बने हैं। बरनेल ने भी इसी धारणा की पुष्टि की है। परन्तु मिलर और यूरे (1959) का यह मत था कि विभिन्न घटकों के संभावित ताप गतिशीलता गुणों के आधार पर यह निश्चित हैं कि जब तक हाइड्रोजन पर 100 वायुमण्डलीय दबाव था, तब तक वातावरण का मुख्य कार्बन पदार्थ मीथेन के रूप में ही रहा होगा।

11.3 उद्विकासीय धारणाओं के सिद्धान्त (Theory of Evolutionary Thoughts)

उद्रिकासीय धारणाओं के सम्बन्ध में आप इन्हें निम्नलिखित सिद्धान्तों दारा समझ सकते हैं

1. विशिष्ट सृष्टि सिद्धान्त के द्वारा
2. यूनानी दार्शनिक सिद्धान्त द्वारा

3. मध्य कालीन दारा तथा
4. आधुनिक सिद्धान्त दारा

1. **विशिष्ट सृष्टि सिद्धान्त** (Theory of special Creation) यह सिद्धान्त स्पेन के एक पादरी फादर सुरेज़ (Fathetr Surez) द्वारा प्रतिपादित किया गया था। इन के अनुसार भगवान ने छः प्राकृतिक दिनों में सारी सृष्टि की रचना की जिस से सभी जीव प्राणियों का सृजन हुआ। यह सिद्धान्त केवल इतिहासिक महत्व का ही है , वास्तविकता से इस का कोई सम्बन्ध नहीं है।
2. **यूनानी सिद्धान्त** (Greek Theories) ईसा मसीह के जन्म से पूर्व कई यूनानी उद्विकास विज्ञानिकों ने कई एतिहासिक महत्व के सिद्धान्तों का वर्णन किया था जिन में से कुछ निम्न प्रकार है
   - **थेल्स** (Thales 624 - 548 B.C) ने समुद्री जल को सभी जीवों की जननी माना तथा यह बताया कि समुद्री जल से ही जीवन की उत्पत्ति हुई है।
   - **एनेक्सिमेनीस** (Anaximenes 588 - 528 B.C) ने वायु को सभी जीवों की जननी मानते हुए अजीवात जनन् का सिद्धान्त (Theory of Biogenesis) प्रस्तावित किया।
   - **एम्पेडोक्लेस** (A Empedocies 495 - 435 B.C) ने स्वत : जनन् का सिद्धन्त (Theory of spontaneous generation) प्रतिपादित करते हुए निम्न बिन्दुओं को प्रस्तावित किया
     i. पृथ्वी पर पादपों का विकास जन्तुओं से पहले हुआ,
     ii. पृथ्वी पर जीवन का विकास धीरे - धीरे चरणबद्ध तरीके से हुआ,
     iii. अपीरपूर्ण जातियों का धीरे - धीरे जातियों द्वारा प्रतिस्थापन हुआ।
3. **मध्यकालीन सिद्धान्त** (Medieval Theory). : उद्विकास के सिद्धान्तों में प्रारम्भिक योगदान दार्शनिकों द्वारा किया गया न कि जीववेताओं द्वारा।
   - **फ्रान्सिस बेकन** (Bacon 1561 - 1626) ने प्राणियों में विभिन्नताओं व नई जातियों की उत्पत्ति पर इन विभिन्नताओं के प्रभावों की और ध्यान आकृष्ट किया।
   - **बफन** (Buffon 1707 - 1788) जो कि सर्वप्रथम महान फ़ान्सीसी प्रकृतिवेता माने जाते हैं, उन्हीं ने उद्विकास के सिद्धान्तों में अपना योगदान दिया। बफन के विचार " प्राणियों का प्रकृति - विज्ञान ' ' नामक पुस्तक में व्यक्त किये गये हैं।
   - **लिनियस** (Linnaeus 1707 - 1778) के मतानुसार वर्तमान जातियाँ ई S वर द्वारा निर्मित हैं। बाक्यें अपने जीवन में ही उन्हों ने जातियों की स्थिरता के विचार को थोड़ सा परिवर्तित किया परन्तु एसे किसी विचार का समर्थन नहीं किया जिस का उद्विकास से कोई भी सम्बन्ध था।
   - **एरसमस डार्विन** (Erasmus Darwin 1731 - 1802) ने भी वातावरण से नियंत्रित शक्तियों के द्वारा उद्विकास की विचारधारा को स्वीकार किया।
4. **आधुनिक सिद्धान्त** (Moderrn Theory) : जैव विकास के आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theories) 19 वीं सदी से विकसित हुए आधुनिक सिद्धान्तों द्वारा जैव विकास की क्रिया. को कई विज्ञानियों ने समझाने का प्रयास किया।

- **शिवेलियर डी लेमार्क** (Chevalier de Lamarck 1744 - 1829) ने सर्वप्रथम उद्विकास का एक पूर्ण सिद्धान्त प्रतिवेदित करके 1809 में उपर्जित लक्षणों की वंशागति (Inheritance of acquired characters) फिलोसोफी जुलोजिक (Philosophie Zogique) नामक पुस्तक में विस्तार से प्रकाशित किया।
- **चार्ल्स डार्विन** (Charles Darwin 1809- 1882) का महत्वपूर्ण उद्विकासवाद जीवन की उत्पत्ति व उद्रिकासीय धारणाओंका इतिहास 1859 में प्राकृतिक वरण द्वारा ' 'जातियों की उत्पत्ति' ' (Origin of species by means of natural selection) प्रकाशित हुआ।
- **ह्यूगो डी वीरज** (Hugo de vries) ने उद्विकास की प्रक्रिया को उत्परिवर्तन (mutation) द्वारा समझाया। 1905 में अपनी पुस्तर "स्पीशीज तथा उपजातियाँ, उत्परिवर्तन द्वारा उनकी उत्पत्ति' ' (species and varieties, their origin by mutation) प्रकाशित की।

11.4 लैमार्कवद या उपार्जि त ल क्षणों की आनुवांशिकता का सिद्धान्त Lamarkism of theory of Imberotance of Acquired Characters)

11.4.1 प्रस्तावना (Introduction)

वास्तव में अब यह सिद्ध हो चुका है कि आधुनिक प्राणि- जगत का निर्माण अचानक नहीं हुआ बल्कि एक अति विशाल रचना चक्र में करोड़ो वर्षों तक लगातार जीवन का निरन्तर विक। त होने के परिणामस्वरूप सरल प्रारम्भिक जन्तु आधुनिक जटिल जन्तुओं का रूप धारण कर सकते हैं।
प्रश्न यह उठता है कि जब प्रारम्भिक जीवन की उत्पत्ति सरल जीवों के रूप में हुई थी तब वह कौनसे कारण थे जिन से सरल प्राणी या वनस्पति जटिलता की और अग्रसर हुए होंगे अर्थात् उद्रिकास प्रक्रिया को कौनसे जैविक कारण निरन्तर गति देते रहे हैं।
इस प्रश्न का समाधान समय - समय पर अनेकों जीव -वैज्ञानिकों ने करने का प्रयास किया है। इनमें से प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना हम यहाँ करेंगे।

11.4.2 लैमार्कवाद उपार्जित लक्षणों की वंशागति (Lamarckism Inheritance of Acquired Characters)

फ्रांस के एक प्रसिद्ध शारीरिय वैज्ञानिक (Anatomist) व वर्गीकरण करने वाली संस्था के छात्र **जीन वैप्टिस्टे डी लैमार्क (Jean Bapptiste de Lamarck)** (1744 - 1929) ने सन् 1809 में प्रकाशित अपनी पुस्तक " **फिलॉसफी जुलोमीक " (Philosphie Zoologique)** में जैवविकास से सम्बन्धित साधारण मत या वाद प्रस्तुत किया था। इनके मतानुसार जीवधारियों के रहन - सहन (habitat) स्वभाव (habit) व विकास (development) पर वातावरण का प्रभाव - पड़ता हँ, वास्तव में परिवर्तन होने के कारण जीवधारियों को अपने आपको उन परिवर्तनों के अनुकूल बनाना आवश्यक होता हैं अत: उनमें नयी आदतों का आना आरम्भ हो जाता है। उन आदतों के . प्रभाव से कम प्रयोग या काम में न लाने वाले अंग अपना कार्य बन्द कर देते हैं और धीरे- धीरे छोटे होकर लुप्त हो जाते हैं और अधिक उपयोगी अंगों की कार्यक्षमता बढ़ जाती हैं। जिससे उनका

आकार बढ़ ता जाता हैं। साथ ही साथ कुछ नये अंग भी बनने लगते हैं, जो वातावरण के अनुकूल होते हैं। बाद में ये उपार्जित लक्षण (acquired characters) वंशागत होते हैं और इसी कारण अनेक पीढ़ियों के बाद की सन्तानें अपने पूर्वजों से इस प्रकार भिन्न होती जाती हैं कि एक नई जाति का निर्माण हो जाता है।

लेमार्क का उपार्जित लक्षणों के वंशागति का सिद्धान्त निम्न प्रमुख बातों पर आधारित था।

i. वातावरण का प्रभाव (Effect of Environment)
ii. अंगों की उपयोगिता आने व न आने का प्रभाव (Effect of use and disuse of organ
iii. उपार्जित गुणों या लक्षणों की वंशागति (Transmission or inheritance of acquired characters)

i. **वातावरण का प्रभाव** (Environmental Effects) प्रत्येक जीवधारी की शारीरिक रचना और गठन पर वातावरण में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है और यह प्रभाव उनकी शारीरिक रचना तथा स्वभाव में परिवर्तन कर देता हैं।
ii. **अगोकेउपयोग में आनेव न आने का प्रभाव** (Effects of organ and structure) जीवधारियों में शारीरिक भिन्नतायें उसकी जरुरतों से अनुसार होती हैं। जब किसी वातावरण में कोई विशेष अंग अधिकाधिक उपयोग में आ जाता हैं तब वह अधिक विकसित हो जाता है या हम यह कह सकते हैं कि आवश्यकतानुसार प्रयोग मे आने वाले अंग का विकास अधिक होता हैं। इसी प्रकार परिस्थितिवश जब कोई अंग उपयोग में नहीं आता, वे धीरे-धीरे आकार में घटते जाते हैं और अन्त में पूर्ण रूप से हसित (Degenerate) हो जाते हैं। कभी-कभी ये अग अवशेषी अंगों (Vestigeal organs) के रुप में शरीर में स्थित रहते हैं।
iii. **उपार्जित लक्षणों की वंशागति** (Inheritance of acquired characters) जीवधारियों के ऊपर वातावरण के प्रभाव तथा अंगों के उपयोग और अनुपयोग सेजो रचनात्मक परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें उपार्जित उक्षण (Acquired Characters) कहते हैं ये उपार्जित रचनात्मक श्रेणी (Progression) तथा प्रतिक्रमण (Retrogrssion) प्रकार के लक्षण वशपरम्परागत चलते रहते है और संततियों में भी उपयोग तथा अनुपयोग (uses and disuses) से ये परिवर्तन अधिकाधिक प्रभावशील होते जाते हैं और अन्त में नयी जातियों के जीव बनते हैं। जो कि अपने प्रारम्भिक पैत्रक जीव से पूर्णतया भिन्न होते हैं। इस प्रकार नये गुण वाले जीव नयी जाति का निर्माण करते हैं।

11.4.3 लैमार्क के समर्थन में कुछ प्रमाण (Evidence in favour of Lamarckism)

लैमार्क ने अपने मत के समर्थन में बहुत से उदाहरण प्रस्तुत किये

i. लैमार्क के मतानुसार आजके लम्बीगर्दन तथा टाँगोंवाले अफ्रीकी जिराफका विकास उनके छोटी गर्दन व छोटे कद वाले पूर्वजों से हुआ है। आजकल पाये जाने वाला जिराफ अफ्रीका के रेगिस्तानों में रहता हैं तथा इसके पूर्वज अफ्रीका के घने जंगलों में जिराफ अफ्रीका के रेगिस्तानों में रहता हैं तथा इसके पूर्वज अफ्रीका के घने जंगलों में रहते थे व जमीन पर उगी ' हुई वनस्पत्तियाँ खाते थे। इस प्रदेश की जलवायु में आने वाले परिवर्तनों के कारण जमीन की कुछ वनस्पतियाँ सूखने लगी। साथ ही साथ पेड़-पोधे ऊँचे होने लगे और रेगिस्तान बनने लगा। अब अपने भोजन के लिए इन्हें पेड़-पौधों की पत्तियों पर निर्भर होना पड़ा अत: इन्हें

पिछली टाँगों पर खड़े होकर अगली टाँगों को ऊपरउठाकर तथा गर्दन को लम्बी करके पत्तियों को खाना पड़ता था। इस प्रकार अगली टाँगों व गर्दन के अधिक प्रयोग में आने की वजह से वह लम्बी होती गई और इन लक्षणों के पीढ़ी दर पीढ़ी वंशागत होने से ये लक्षण वर्तमान जिराफ के लक्षण बन गये।

ii. साँप, अंगों के कम प्रयोग का एक प्रमुख उदाहरण हैं। लैमार्क के अनुसार साँप का लम्बाकार, पतला शरीर तथा टाँगों की अनुपस्थिति उनके बिलों में रहने तथा जंगलों और घनी झाड़ियों में तेजी से दौड़ने के स्वभाव के कारण हुई। शरीर का बड़ा आकार व टाँगें लोप हो गई और इस उपार्जित लक्षण के पीढ़ी दर पीढ़ी वंशागत होने के कारण वर्तमान साँपों में किसी प्रकार की टाँगे नहीं होती हैं।

iii. इसी प्रकार से जवों में अवशेषी अंगों की उपस्थिति भी लैमार्क का समर्थन करती हैं जैसे कि मनुष्यों में बाहय कान को हिलाने वाली पेशियाँ पूर्ण विकसित नहीं होती हैं जबकि खरगोश, हाथी, कुत्ते आदि मेंये विकसित होती हैं। जिसकी वजह से इनके बाइय कान (External ear or pinna) हिल-डुल सकते हैं।

11.4.4 लैमार्कवाद के अपवाद (Objectives of Lamarckism)

लैमार्क के सिद्धान्त की आलोचना कई कारणों से की गई

i. इस सिद्धान्त की प्रमुख आपति इसकी उपार्जित लक्षणों की वंशागति की धारणा है। अने वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि वातावरण के कारण उपार्जित लक्षणों की वंशागति नहीं होती। इसे समझाने के लिए उन्होंने एक लोहार तथा एक ऐथलीट खिलाड़ी का उदाहरण लिया और बताया कि इनकी मजबूत पेशियों का गुण बच्चों में नहीं पाया जाता हैं। मनुष्य जीवन भर दाढ़ी बनाकर दाढ़ी विहीन पुत्र पैदा नहीं कर सकता। वीज़मेन (Weismann) ने तो 60 पीढ़ियों तक चूहों की पूँछ काटी लेकिन फिर भी अगली पीढ़ी में पूँछ थी इसी प्रकार से अन्धे पिता की सन्तानें अन्धी नहीं होती हैं।

   इन उपरोक्त उदाहरणों से यह निश्चित हो जाता हैं कि दैहिक गुणों मेवशानुक्रमण की क्षमता नहीं होती हैं। वीजमेन व अन्य वैज्ञानिकों द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका हैं कि केवल वही गुण सन्तति में पहुँच सकते हैं जो जीवधारी के जन्नद्रव्य (germ plasm) में पाये जाते हैं। इसको केस्टल व फिलिप्स (Castal and Philips) ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया हैं। इन्होंने मादा सुअर के अण्डाशय (Ovary) को काले मादा सुअर से बदल दिया औरकाले नर सुअरसेदो बारनिषेचन के पश्चात् इनका सभी सन्तानें कालीव समयुग्मनजी (homozgous) थीं।

ii. लैमार्क के सिद्धान्त में अंगों के उपयोग व निरुपयोग के सिद्धान्त के विशेष में भी अनेक उदाहरण रखे जैसे अनवरत प्रयोग के बावजूद भी आँखे खराब हो जाती हैं।

11.5 नव लैमार्कवाद (Neo - Lamrckism)

कुछ आधुनिक वैशानिक लैमार्कवाद के प्रति जागरुक हुये हैं और आधुनिक विज्ञान के साँचे में इसके नव निर्माण का प्रयास कर रहे हैं। वे वैज्ञानिक जो इस कार्य में व्यस्त हैं लैमार्कवादी कहलाते हैं व उस संस्था को जिसके अन्तर्गत यह कार्यक्रम चल रहा हैं नव लैमार्कवाद का स्कूल

(Neo - Lamrckism school) कहते हैं व लैमार्क के नवीनीकृत सिद्धान्त को नव लैमार्कवाद (Neo - Lamrckism) कहते हैं।

अधिकांश नव लैमार्क्वाद विकृति विज्ञानी (pathologist) या जीवाश्म विज्ञानी (palaentologist) है क्योंकि विकृति विज्ञानी जीवधारी के शरीर में पाये जाने वाली सुघट्यता (plasticity) सेभली-भाँति परिचित होते हैं। जबकि जीवाश्म विज्ञानी जीवधारियों के शरीर में हुये अजुकूलनों के प्रमाणों का अध्ययन करते हैं।

नव लैमार्कवाद में संलग्न वैज्ञानिकों में प्रमुख नाम वनस्पति शास्त्री नागेली (Naegeli) प्राणि-शास्त्री पैकार्ड (packard), आधुनिककशेरुकीके छात्र गैड़ो (Gadow), ईमर (Eimer), हैकल (Hackel), स्पेन्सर (Spencer) व जीवाश्म विज्ञानी कोप (Cope), डाल (Dall) तथा हायट (Hyatt) आदि के हैं।

उपार्जित लक्षणों की वंशागति की समर्थन में किये गये कुछ प्रयोग निम्न प्रकार से हैं

1. कुछ उपार्जित बीमारियाँ जैसे एक्सोत्थैलमिया (नेत्र गोलक का बाहर आ जाना) हीमटोड़ा और ड्राइगन्ड्रीन (कानों के एकान्तरण के कारण) मस्तिष्क के रज्जूरूप में क्षति के कारण होती हैं और सन्ततियों में भी वंशागत होते हैं।
2. चूहों को घूमते हुए पिंजड़े में रखने पर वे अपने आपको इस परिस्थिति के अनुकूल बना लेते हैं। इसके परिणामस्वरूप पैदा होने वाले शरीर क्रियात्मक परिवर्तन जैसे चक्कर आना आदि बाद में आने वाली संतानों में वंशागत होते हैं। यह प्रयोग ग्रिफिथ (Griffith) तथा डेटलफसन (Detlefson) ने किया था।
3. लिन्ड् से (Lindsay) के अनुसार असामान्य वातावरण की परिस्थितियों (abnormal ancvironmental conditions) का प्रभाव शीत व गर्म दोनों ही प्रकार के रुधिर वाले जीवों पर होता हैं। साथ ही साथ इस कारण उत्पन्न हुये लक्षण आने वाली सन्तानों में वंशागत भी होते हैं।
4. मैकडगॉल (Mac Dougall 1938) ने कुछ सफेद चूहों को सिखाया व उनकी पीढ़ियों को भी समान तरीके सिखाये गये। यह कार्यक्रम 45 पीढ़ियों तक चला, बाद में यह पाया गया कि सीखे हुए चूहों की सन्तानों द्वारा गलतियाँ कम होती थी व सिखाने में भी कत समय लगाना पड़ता था। ये समान प्रयोग अगर (Agar) व उनके साथियों 1954 ने भी किये। इस प्रयोग सेयहसिद्ध होता है। कि सन्तानों में अपने पूर्वजों के उपार्जितलक्षणो की वंशागति हुई।

इन उपरोक्त प्रयोगों के बावजूद भी लैमार्क के सिद्धान्त में बहुत सी कमियाँ हैं जिनकी व्याख्या अभी तक नहीं हो सकी हैं। इस प्रकार लैमार्कवाद की स्थिति अभी अनिश्चित हैं।

11.6 डार्विनवाद (Darwinism)

उद्विकास की किया - विधि के बारे में दूसरे अध्याय का प्रारम्भ 19 वी शताब्दी के मध्य में डार्विनवाद (Darwinism)) से हुआ। चार्ल्स डारविन (Charles Darwin - 1809 - 1882) इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रेषक थे, परन्तु उसी समय में एक अन्य वैज्ञानिक, आल्फ्रेड रसेल वैलैस (Alfred Russel Wallance 1823 - 1913) ने स्वतन्त्र रूप से डारविन के ही समान निष्कर्षों पर पहुँचे और दोनों के सिद्धान्त साथ - साथ सन् 1858 में छपे। डारविन ने एक वर्ष बाद इन्हीं सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या अपनी पुस्तक " प्राकृतिक चुनाव द्वारा जाति की उत्पति (Origin

of species by natural selections) " में की। लैमार्कवाद की भांति डारविनवाद को भी कुछ नियमों में संकलित किया जा सकता है जो निम्नलिखित है :

1. सन्तानोत्पति की प्रचुर क्षमता (Enormous fertility),
2. र्विभिन्नतायें (Variations),
3. जीवन संघर्ष (Struggle for Existence),
4. प्राकृतिक वरण (Natural selctions),
5. अनुकूल लक्षणों की वंशागति (Heredity of better traits),
6. नई जातियों की उत्पति (Origin of new species)।

एक दृष्टान्त द्वारा डारविन ने अपने विचारों का स्पष्टीकरण किया। उन्होंने कहा कि कबूतरबाज पीढ़ी-दर-पीढ़ी अच्छे लक्षणों वालेकबूतरों को परस्पर सहवासकी सुविधा देकरकबूतरों की ऐसी नस्लें तैयारकरलेता हैंजो अपने पूर्वजों सेबहुतभिन्न होती हैं। उन्होंने सोचाकि कदाचित्प्रकृति भी इसी प्रकार चुनाव द्वारा उच्चतमू जन्तुओं को बढ़ावा देकर नई जातियों की उत्पतिकरती रहती हैं। इसलिये डारविनवाद को प्राकृतिक चुनाववाद (Theory of Natural selections) कहते हैं।

1. **सन्तानोत्पति की प्रचुर क्षमता** (Enormous fertility) प्रत्येक जन्तु-जाति के सदस्यों में जाति को बनाये रखने के लिए सन्तानोत्पति की बहुत क्षमता होती हैं। इस क्षमता से सदस्यों की संख्या रेखागणितिक अनुपात (geometric ratio) में बढ़ती हैं। उदाहरणार्थ एक हथिनी अपने जीवन में 30 से 90 वर्ष की आयु के दौरान, औसतन कुल 6 सन्ताने उत्पन्न करती है। अगली पीढ़ी में ये 6 सन्तानें 36 सन्तानें उत्पन्न करेंगी और फिर ये 36 बड़ी होकर 36 x 6 = 216 सन्तानें उत्पन्न करेंगी। इस प्रकार लगभग 750 वर्षों में हाथियों के एक जोड़े से लगभग 2 करोड़ हाथी बन जायेंगे। यदि इसी अनुपात में हाथियों की संख्या बढ़ती रहे तो शीघ्र ही समस्त पृथ्वी पर हाथी ही हाथी दिखाई देने लगेंगे। क्या प्रकृति में ऐसा सम्भव हैं ? नहीं। प्रत्येक जन्तु-जाति होने से पहले ही किसी-न-किसी अवस्था में किसी-न-किसी कारण नष्ट हो जाती हैं। इसीलिये प्रकृति में प्रत्येक जन्तु- जाति के सदस्यों की एक संतुलित संख्या ही बनी रहती हैं। बहुत्सी सन्तानें नष्ट क्यों और कैसे हो जाती हैं इसका उत्तर हमें निम्नलिखित वर्णन में मिलेगा।
2. **विभिन्नतायें**(Variations) किसी भी जन्तु-जाति में लैंगिक प्रजनन द्वारा जितने सदस्य उत्पन्न होते हैं उनमें से समरूप जुड़वे (identical twins) को छोड़ कर कोई अन्य दो सदस्य परस्पर बिलकुल समान नहीं होते, वरन् कुछ-न-कुछ भिन्न होते हैं। इनकी विभिन्नतायें, आकार, परिमाण, रंग, जीवन रीतियों, संरचना, कार्यिकी आदि अनेक प्रकार के लक्षणों से सम्बन्धित हो सकती हैं। निस्सन्देह अच्छे लक्षण किसी भी सदस्य के लिये इसके जीवन काल में लाभदायक सिद्ध होंगे और बुरे लक्षण हानिकारक।
3. **जीवनसंघर्ष**(Struggle for Existence),: जन्तुओं में सन्तानोत्पतिकी प्रचुर शक्तिके कारण इनकी संख्या तो रेखागणितिक अनुपात में बढ़ने की क्षमता रखती हैं, परन्तु इस तरह बढ़ने वाली संख्या के लिये अधिकाधिक खाद्य, स्थान एवं जीवन हेतु अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे होगी ? प्रकृति का खाद्य भंडार, इसका क्षेत्रफल तथा इसमें उपलब्ध अन्य सुविधायें तो लगभग सीमित एवं स्थिर रहती हैं। अत: प्रत्येक सदस्य को अपनी आवश्यकताओं की

पूर्तिकरने के लिए दूसरे सदस्यों से संघर्ष करना होगा। इसी को जीवन संघर्ष कहते हैं। यह संघर्ष प्रत्येक सदस्य के लिये धूणावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता हैं और जीवन भर चलता रहता हैं। किसी सदस्य का जीवन पूर्ण तभी होता हैं जब वह सन्तानोत्पति द्वारा जाति के अनुक्रम (Continuity) में अपना योगदान कर सके। जीवन संघर्ष में सफल होने के लिये वातावरण के अनुसार अनुकूलन (adaptability) की क्षमता एक महत्वपूर्ण लाभदायक लक्षण होता हैं। ऐसी क्षमता वाला जन्तु अपने आप को वातावरण में निरन्तर होते रहने वाले परिवर्तनों के अनुसार परिवर्तित करता रहता हैं। जो सदस्य ऐसा नहीं कर पाते, वे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। मीसोजोइक युग (Mesozoic era) में अति सफल जीवन व्यतीत करने वाले विशालकाय रेप्टाइल्स (dinosauns) आगे चल कर इसीलिए नष्ट हो गये कि ये वातावरण में हुए परिवर्तनों क अनुकूल अपना पीरमाण कम नहीं कर पाते।

4. **प्राकृतिक वरण** (Natural Selection) निस्सन्देह ऊपर लिखे जीवन संघर्ष में अच्छे लक्षणों वाले सदस्य विजयी होंगे और निम्न लक्षणों वाले सदस्य सफल जीवन की आवश्यकताओं से वंचित रह कर किसी-न-किसी अवस्था में नष्ट हो जायेंगे। इसी को उच्चतमू सदस्यों की अतिजीविता (survival of fittest) कहते हैं। दूसरे शब्दों में इस विधि को प्रकृति में अच्छे लक्षणों का स्वत: चुनाव हो जाता हैं; ठीक उसी प्रकार का चुनाव जैसा कि एक कुशल कबूतराबाज अपने कबूतरों में करता हैं। इसी चुनाव को डारविनवाद में प्राकृतिक चुनाव कहा गया हैं।
5. **अनुकूल लक्षणों की वंशागति** (Inheritance of better traits) प्राकृतिक चुनाव के कारण उत्कृष्ट लक्षणों वाले सदस्यों को सन्तानोत्पतिका अवसर अधिक औरनिकृष्ट लक्षणों वालों को कम मिलता हैं। इस प्रकार प्रत्येक जाति में पीढ़ी-दर-पीढ़ी उत्कृष्ट लक्षणों की अधिकाधिक वंशागति और निकृष्ट लक्षणों का लोप होता जाता हैं।
6. **नई जातियों की उत्पति** (Origin of new species) उत्कृष्ट लक्षणों की वंशागति बढ़ने तथा निकृष्ट लक्षणों का लोप होने से, प्रत्येक पीढ़ी के सदस्य अपने पूर्वजों से कुछ अधिक सुगठित एव भिन्न हो जाते हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी वंशागति में इसी विभिन्नता के कारण हजारों, लाखों वर्ष के बाद एक समय ऐसा आ जाता हैंकि नई पीढ़ियाँ पुरातनकालीन पीढ़ियों के सदस्यों से अधिक भिन्न हो चुकी होती हैं और इन्हें एक नई जाति के सदस्य मान लिया जाता हैं।

11.7 नवडार्विनवाद (Neo Darwinism)

जैव विकास के बारे मेंदिये गये **चार्ल्स रॉबर्ट डार्विन**के मत को ही हम डार्विनवाद कहते हैं। डार्विन के विचारों का प्रकाशन सर्वप्रथम उसकी पुस्तक स्पीसीज का उद्गम (Origin of species) में हुआ था जैसे-जैसे समय गुजरता गया जीवशास्त्रियो (Zoologist) ने इसका समर्थन किया व अपने नये विचारों के द्वारा डार्विनवाद को और अधिक शक्ति प्रदान की। साथ ही साथ इसे कुछ आलोचनाओं का भी सामना करना पड़ा। बाद में नये अन्वेषणों व प्रयोगों के आधार परडार्विनवाद में कुछ नये विचारों को जोड़ा गया व कुछ पुरानी धारणाओं को इसमें से निकाल दिया, इस प्रकार से वे वैज्ञानिक जिन्होंने प्रकृतिवाद से सिद्धान्त को आधुनिक मतों से संवारा **डार्विनवादी** (Darwinism)) कहलाये व उनकी नयी धारणा को **नव-डार्विनवाद** (Neo Darwinism) कहा गया व इससे सम्बन्धित संस्था को नव डार्विनवादी स्कूल (Neo Darwinism school) कहा।

डार्विन के समकालीन समय में कोशिका विज्ञान (Cytology) व आनुवंशिकी (Genetics) के बारे में कोई भी जानकारी नहीं थी। इनकी खोज की शुरुआत बाद में हुई थी व मेंडल (Mendel) के कार्य को भी सन् 1900 के बाद मान्यता प्राप्त हुई। बड़े - बड़े अच्छे वैज्ञानिक जैसे **अर्नस्ट मायर** (Earnest Mayor), **जूलियन हक्सले** (Julian Huxley), **सेवाल** (Sewall) आदि नव डार्विनवादी थे जिन्होंने बहुत से प्रयोगों द्वारा डार्विनवाद की बहुत सी विसंगतियों को दूर किया। अगस्त वीज़मेन (August Weisman) नव डार्विनवादी संस्था विसंगतियों को दूर किया। अगस्त वीज़मेन (August Weisman) **नव डार्विनवादी संस्था** (Neo- Darwinism society) का नेता था। इस जर्मन नव डार्विनवाद का सिद्धान्त 1892 में प्रकाशित हुआ, जिसने डार्विन के प्राकृतिक वरण में आनुवशिकाता के कम उल्लेख की कमजोरी पर अधिक ध्यान दिया। जिसके अनुसार आनुवंशिकी ल क्षणों के लिए जननद्रव्य सातत्य (continuity of germ plasm) की मुख्य कसौटी हैं। आ धुनिक नव डार्विनवादियो ने लैमार्क के सिद्धान्त उपार्जित लक्षणों की वंशागति (inheritance of acquired characters) के प्रति डार्विन के चिरकालीन झुकाव को सही साबित कर दिया व जीवों को नई जातियों के उद्‌गम इनकी जीन्स में प्राय : साधारण परिवर्तनों के कारण नये जीव बनते हैं। जिनसे विभिन्नताये और बड़ जाती हैं। इन पीरतर्वनों को उत्परिवर्तन (mutations) कहते हैं। जीन्स में हुये ऐसे परिवर्तनों के कारण प्राणियों के ल क्षणों में जो परिवर्तन होते हैं, वे स्पष्टत: वंशागत होते हैं और इनके पीढ़ी दर पीढ़ी प्राकृतिक वरण द्वारा इनसे नई जातियों के उत्पति होती हैं।

रोवाल्ड फिशर (Rovald fisher) और राइट (write) ने समस्त जीवों की आबादी की आनुवंशिकी (Genetic) का गणितीय सूत्र (Mathematical formula) दिया।

इस प्रकार आधुनिक धारणाओं के व जीन पूल (Gene pool) के जानने के कारण डार्विन का विकास सम्बन्धी सिद्धान्त अधिक जटिल हो गया हैं। लेकिन उसके प्रमुख रूप में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हुआ हैं। इस प्रकार से अब डार्विनवाद आलोचकों का भी समर्थन व प्रमाणपत्र प्राप्त करता जा रहा हैं।

बोध प्रश्न

1. ''जैव - विकास'' के सम्बन्ध में लैमार्क के मत इस के द्वारा व्यक्त कर सकते हैं
   (अ) अजीवात्
   (ब) प्राकृतिक वरण
   (स) जर्मप्लाज्म की निरन्तरता
   (द) उपार्जित लक्षणों की वंशागति ( )
2. नवलैमार्कवाद का आधार है
   (अ) विभिन्नताएँ
   (ब) उत्परिवर्तन एवं प्राकृतिक चयन
   (स) सन्तानोत्पति की प्रचुर क्षमता
   (द) जर्मप्लाज्म को प्रभावित करने वाले उपार्जित लक्षण ( )
3. डार्विन का सिद्धान्त इस निष्कर्ष पर आधारित था :
   (अ) जीवन के लिये संघर्ष

(ब) प्राकृतिक वरण

(स) योग्यतम की उत्तरजीविता

(द) उपरोक्त सभी ( )

4. 'योग्यतमू की उत्तरजीविता' की विचारधारा दी :

(अ) डार्विन

(ब) लैमार्क

(स) विज़मन

(द) वैलेस ( )

5. एनक्सिमेनीज़ ने स्वत: जनन् का सिद्धान्त दिया था(सही /गलत) ( )

6. वीज़मान लैमार्कवाद के समर्थक थे। (सही / गलत) ( )

7. 'विशिष्ट सृजन का सिद्धान्त' लैमार्क ने दिया। (सही / गलत) ( )

8. 'जनसंख्या का सिद्धान्त' नामक लेख माल्थसने लिखा।(सही/गलत)( )

11.8 सारांश (Summary)

1. लेमार्कवाद को संक्षिप्त रूप में निम्नलिखित चार अवधारणाओं के रूप में प्रतिपादित किया जा सकता है
   (अ) सभी जीवधारियों में निरन्तर स्वयं का और अपने अंगों का आकार बढ़ाने की प्राकृतिक प्रवृति पाई जाती है।
   (ब) जीवधारी में किसी नवीन अंग का विकास नवीन आवश्यकता के अनुरूप ही होता है।
   (स) जिस अंगो का जीवधारी निरन्तर अधिक उपयोग करते हैं वे अधिक विकसित हो जाते हैं, परन्तु निरन्तर उपयोग में न आने से अंगों में क्षीणता आती है।
   (द) जीवधारी के जीवनकाल में उपर्जित लक्षण उसकी अगली पीढ़ी में वंशानुगत हो जाते हैं, व नयी जाति का उद्भव हो जाता है।
2. डार्विन ने प्राकृतिक वरणवाद में जीवधारियों की विभिन्न जातियों की उत्पत्ति, विकास, - निरन्तरता अथवा विलुप्तीकरण का मुख्य आधार ' 'प्राकृतिक विभिन्नताओं " का माना है।
3. डार्विन के मतानुसार प्रकृति में एक प्रकार से वरण की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है जिसमें अयोग्य या कम योग्य जीवधारियो को प्रकृति निष्कासित कर देते है।
4. यद्यपि डार्विन के वरणवाद में लेमार्क के सिद्धान्त की आलोचना की गई तथापि डार्विन ने उपार्जित लक्षणों की आनुवंशिकता को नकारा भी नहीं है तथा लेमार्क के उपयोग व अनुपयोग सिद्धान्त का भी आश्रय लिया है।

11.9 शब्दावली (Glossary)

उत्प्रेरण	Catalysis
विशिष्ट सृष्टि	Special creation
उत्परिवर्तन	Mutation
पार्थक्य	Isolation

उपार्जित	Acquired
विभिन्नता	Variation
वरण	Selection
अनुक्रम	Continuity
अनुकूलन	Adaption

11.10 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली व भाटिया - प्राणि विज्ञान (प्राणि-विविधता तथा उद्विकास) - रमेश बुक डिपो, जयपुर - नई दिल्ली
2. तोमरव सिंह - जनरल बायोलॉजी - इवोलूशन, डिस्ट्रीब्यूशन एण्ड पेलेन्टोलॉजी, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to self assessment Questions)

1. (द)	2. (द)	3. (द)	4. (अ)
5 गलत	6 गलत	7. गलत	8 सही

11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. उद्विकासीय विचारधाराओं के इतिहास की विवेचना कीजिये।
2. लैमार्कवाद पर एक निबन्ध लिखिये।
3. डार्विनवाद में प्रस्तुत तर्कों व निष्कर्षो की व्याख्या कीजिये।
4. डार्विनिवाद पर एक निबन्ध लिखिये।
5. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये
   (अ) नवडार्विनवाद
   (ब) उपार्जित लक्षणों की वंशागति
   (स) जनसंख्या का सिद्धान्त
   (द) जीवन संघर्ष।

इकाई 12: प्राकृतिक वरण, उद्विकास का आनुवांशिक आधार व जाति उद्भवन (Natural Selection ,Genetic basis of evolution and Speciation)

इकाई की रूपरेखा (Out Line of Unit)

12.0 उद्देश्य (Objectives)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

12.2 प्राकृतिक वरण का मूल अर्थ (Meaning of Natural Selection)

12.3 प्राकृतिक वरण की क्रियाशीलता (Activity of Natural Selection)

12.4 उद्विकास का आनुवांशिक आधार (Genetic basis of evolution and Speciation)

12.5 प्रजाति उद्भवन (Speciation)

12.6 सारांश (Summary)

12.7 शब्दावली (Glossary)

12.8 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to self assessment Questions)

12.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

12.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप निम्न बिन्दु जानने योग्य हो जायेंगे

- प्राकृतिक वरण का मूल अर्थ क्या है।
- प्राकृतिक वरण की क्रियाशीलता को कौन से कारक प्रभावित करते हैं।
- जीन उत्परिवर्तन उद्विकास का आनुवांशिक आधार किस प्रकार होते हैं।
- जाति उद्भवन क्या है तथा इससे सम्बंधित कारक क्या है।

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

डार्विन के अनुसार प्रकृति में एक प्रकार से चुनाव या वरण की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है जिस में अयोग्य या कम योग्य जीवधारियों को प्रकृति निष्कासित कर देती है। इस प्रकार प्राकृतिक वरण प्रक्रिया में जब किसी जाति वि शेष के सदस्य निरन्तर अलाभकारी गुण द र्शाते है, तब प्रकृति उन्हें सदैव के लिये समाप्त या विलुप्त कर देती है। परन्तु इनके विपरीत जिन सदस्यों में प्राकृतिक वरण के लिये सुलाभकारी गुण पाये जाते हैं। उन्हें प्रकृति सुरक्षित करके और अधिक उपर्युक्त परिवर्तन और अनुकूलन के लिये अगली पीढ़ी में इन सुलभकारी गुणों को पहुँचाने का अवसर प्रदान करती है।

12.2 प्राकृतिक वरण का मूल अर्थ (Meaning of Natural Selection)

डार्विन के अनुसार जीवन संघर्ष में वे ही जीवधारी सफलता प्राप्त करते हैं जिन की रचना उस वातावरण में रहने के लिये अत्यन्त उपयुक्त हो। इस के विपरीत जिन प्राणियों की रचना

वातावरण के अनुकूल नहीं होती, वे कुछ समयपश्चात्नष्ट हो जाते हैं। हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Speneer) ने इस प्रक्रिया को समर्थ का जीवत्व कहा था जबकि इस प्रक्रिया को डार्विन ने प्राकृतिक चुनाव या वरण का नाम दिया था।

अन्य उद्विकासीय कारकों की तुलना में प्राकृतिक वरण निश्चय ही उद्विकास के क्रम में सब से महत्वपूर्ण व प्राथमिक कारक होता है। यह वातावरण तथा आनुवंशिक पदार्थ के बीच की कड़ी होता है। वातावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव के कारण जातियां जीवित रहने के लिये संघर्ष करती हैं जिसके फलस्वरूप उनके आनुवंशिक पदार्थ में परिवर्तन उत्पन्न होता है। ये परिवर्तन जीवित रहने वाले प्राणियों से प्रजनन के माध्यम से उनकी संतानों में पहुंच जाते हैं। अत: वरण उद्विकास को संभव बनाता है।

कई बार उत्परिवर्तन तथा विभिन्नताओं द्वारा हानिकारक परिवर्तन समजीनी अवस्था में उत्पन्न हो जाते- हैं। अत: ऐसे प्राणी स्वयं ही समष्टि से विलुप्त हो जाते हैं। सभी उत्परिवर्तन हानिकारक नहीं होते हैं अत: प्राकृतिक वरण ऐऐ जीन्स का पक्षाधर होता है तथा उन्हें समष्टि में स्थापित होने में सहायक होता है।

12.3 प्राकृतिक वरण की क्रियाशीलता (Activity of Natural Selection)

प्राकृतिक वरण की क्रियाशीलता के लिये निम्न कारक आवश्यक होते हैं

1. जनन योग्य इकाईयों।
2. आनुवंशिक विभिन्नताओं की उत्पत्ति, तथा
3. एक ही प्रकारके वातावरण में एक से अधिक प्रकार की जनन योग्य इकाईयों की उपस्थिति।

प्राकृतिक वरण की क्रियाशीलता के लिये यह आवश्यक है कि एक ही प्रकार के वातावरण में भिन्न- भिन्न प्रकार के जीनों प्रकार के प्राणी उपस्थित हों ताकि भिन्न-भिन्न प्रकार के जीनी प्रकारों में तुलनात्मक रूप से यह जाना जाये कि कौन सा जीनी प्रकार उस वातावरण के लिये सर्वाधिक उपयुक्त है, क्योंकि उपयुक्त जीनी प्रकार वाले प्राणियों की संख्या समष्टि मेंनिरंतर बढ़ती जायेगी। इस तरह प्राकृतिक वरण की क्रियाशीलता का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

4. प्राकृतिक वरण का महत्व (Significance of Natural Selection)

प्राकृतिक वरण के महत्व को निम्न प्रकार समझाया जा सकता है

मानलो किसी समष्टि में एक लोकस (Locus) a पर दो युग्मविकल्पी a_1, तथा a_2 जीव हैं। इन में a_1 की जीन आवृति 0.9(p) व a_2 की जीन आवृति 0.1 (q) है। जेनेटिक संतुलन (genetic equilibrium) के समय समष्टि की जीन अप आवृतियाँ (gene frequencies) स्थिर हो जायेंगी। नैतिक वातावरण में परिवर्तन के कारण, प्राकृतिक वरण के दबाव के कारण समलक्षणी a_1 a_2 के 100 प्राणियों में से केवल 80 जीवित रहेंगे a_1 a_1 तथा a_1 a_2 जेनेटिक संरचना वाले प्राणियों पर प्राकृतिक वरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, केवल $\mathbf{a_2\ a_2}$ ही $\mathbf{a_1\ a_1}$ व $\mathbf{a_1\ a_2}$ की तुलना में कम सन्तति उत्प : करता है।

यदि इस प्रकार का क्रम चलता रहे तो समष्टि के जीन - पूल (gene pool) से जीन a_2 विलुप्त हो जायेगा। इसी प्रकार प्राकृतिक वरणवाद हानिकारक जीन को विलुप्त कर, उत्तम जीन को प्रोत्साहित कर आगे सम्प्रेषण करता है।

प्राकृतिक्। चयन के **आधुनिक मत** को एक आधारभूत रचनात्मक प्रक्रिया माना जाता है क्योंकि इसका मुख्य कार्य नवीन ल क्षणात्मक विभिन्नताओं को **विभेदक प्रजनन** (differentiat reproduction) द्वारा सम्पूर्ण समुदाय में प्रसारित करना होता है।

प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया में किसी प्रकार का संघर्ष अथवा योग्यतम की उत्तरजीविता जैसा प्रक्रम नहीं होता है। यह एक शान्तिपूर्ण प्रक्रिया होती है जिस में केवल प्रजनन - क्रिया होती है।

12.4 उद्विकास का आनुवंशिक आधार (Genetic basis of evolution and Speciation)

1. प्रस्तावना (Introduction)

उत्परिवर्तन उद्विकास के मूल पदार्थ हैं। गुणसूत्रों व जीन्स में आकस्मिक, असंतत व अनियमित परिवर्तनों के कारण उत्परिवर्तन होते हैं। किसी एक नयी जाति के उद्विकास में उत्परिवर्तन व **प्राकृतिक वरण** दोनों भाग लेते हैं।

2. जीन संचय तथा जीवसंख्याएँ (Gone Pools and Population)

उत्परिवर्तन उद्विकास का मूल तत्व होता है किन्तु केवल उत्परिवर्तन ही पर्याप्त नहीं है बल्कि वास्तव में यह भूमिका प्राकृतिक वरण निभाता है। आप यह जानते होंगे कि उद्विकास में जीन एक इकाई नहीं होता बल्कि एक पूरी जीव - संख्या एक इकाई की तरह कार्य करती है।

एक निश्चित क्षेत्र में प्रवास करने वाले व संकरण करने वाले समान प्रकार के प्राणियों की जीवसंख्या को **आनुवंशिक जीवसंख्या** (genetic population) या डीमे (deme) कहते हैं। साधारणत : एक डीम (deme) निकट पायी जाने वाली डीमों (demes) के साथ कुछ सीमा तक परस्पर व्याप्त होता है। जाति जीवसंख्या की एक बड़ी इकाई होती है जो अंतवर्ती डीम्स की एक श्रृंखला की बनी होती है।

उद्विविकास की आनुवंशिक की जानकारी **हार्डी - वेनबर्ग** (Hardy - Weinberg) के सिद्धान्त के द्वारा समझा जा सकता है।

एक जीवसंखया में पीढ़ी - दर- पीढ़ी एक निश्चित जीन - आवृत्तियों (Gene Frequences) को निर्दिष्ट करता है यदि :

i. जीवसंख्या विशाल हो
ii. चयन न होता हो, तथा
iii. उत्परिवर्तन नहीं होते हों।

यह नियम उत्परिवर्तनों के उत्पन्न होने या नियमित प्रजनन के कारण या छोटी जीवसंख्या के कारण अस्थ-व्यस्थ हो जाता है, जिस के फलस्वरूप आनुवंशिक अपवहन (genetic drift) उत्पन्न होता है। इस स्थिति में उद्रिकास एक जीवसंख्या की जीन-आवृत्तियों में क्रमिक परिवर्तन होता है। जीवसंख्या (समष्टि) मेंपीस्वर्तनया तो उत्परिवर्तनोंके कारण आनुवंशिक कारकों मेंकिसी परिवर्तन को अथवा वातावरणीयकारको मेंकिसी परिवर्तन को व्यक्तकरता है, जिसके परिणामस्वरूप किसी एक जीव का वरण होता है।

प्रत्येक समष्टि अपनेविशिष्ट **आनुवंशिक संचय** (genetic pool) से लक्षित होती है। इसमें प्रत्येक जीव आनुवंशिक रूप से विशिष्ट होता है तथा प्रत्येक का अपना विशिष्ट जीनोटाइप (genotype) होता है। जब समाच का **आनुवंशिक संतुलन** (genetic equilibrium) बना रहता है, तब जीन-संचय पीढ़ी-दर-पीढ़ी निश्चित व अपरिवर्तित रहता हैं। किन्तु समष्टि का उद्विकास तब होता है जब उत्परिवर्तन, **प्रसंकरण** अथवा **प्राकृतिक वरण** के दारा जीव-संचय में परिवर्तन होता है।

हार्डी-विनबर्ग के सिद्धान्त को एक उदाहरण लेकर सरलता सेसमझा जा सकता है। किसी विशाल परिकल्पित समुदाय में एक दी गयी आवृत्ति मेंदो **अलील A** एवं **a** उपस्थित हैं। मेंटल के वशागति नियम के अनुसार इस समुदाय में तीन तीन प्रकार के सदस्य उपस्थित होंगे जिनका संख्यात्मक अनुपात निम्नलिखित होगा:

AA	**Aa**	**aa**
36%	**48%**	**16%**

यदि माना जाय कि इस समुदायों के मध्य मैथुन बेतरतीब अर्थात् प्रजनन अव्यस्थित् (random) ढंग से होता है तथा इस दशा में सभी सदस्य संख्या में लगभग एक समान युग्मक उत्पादित करेंगे। यहाँ यह भी मान लिया जाय कि जीन A एवं a में उत्परिवर्तन नहीं होता है। ऐसी प्रस्थितियों में एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में जीन A तथा a की आवृत्ति में परिवर्तन की स्थिति का प्रेक्षण निम्नलिखित है:

क्योंकि इस समुदाय में जीन AA वाले सदस्य कुल समुदाय का ३8% भाग बनाते हैं, इसलिये यह कुल उत्पादित युग्मको 36% का भाग भी बनति। इस प्रकार के सभी युग्मक केवल एक जीन A जीन युक्त होंगे। इस प्रकार सभी aa सदस्य कुल उत्पादित युग्मको का 16% भाग बनति एवं इस प्रकार के सभी युग्मकों में केवल एक जीन a ही उपस्थित होगा। इन के विपरीत Aa प्रकार के सजीव अर्थात् समान संख्या में Aa तथा a युग्मक बनायेंगे, क्योंकि इनका अनुपात कुल राशि का 48% होगा, इसलिये इन में 24% युग्मक A प्रकार के तथा अन्य 24% प्रकार के होंगे। अत: इस समुदाय के कुल उत्पादित युग्मको का प्रतिशत निम्न प्रकार का होगा

जनक	**युग्मक**	**जनक**	**युग्मक**
26%AA	36% A	16%aa	16%a
48% Aa	24% A	48% Aa	24%a
	60% A		40% a

लैंगिक प्रजनन के अन्तर्गत इन युग्मकों में परस्पर निषेचन इस प्रकार सम्भव होगा.

शुक्राणु A का संयुग्मन अण्ड A से
शुकाणु a का संयुग्मन अण्ड a से
शुद्रगणु A का संयुग्मन अण्ड a से, तथा
शुकाणु a का संयुग्मन अण्ड A से

निषेचन प्रक्रिया के अन्तर्गत युग्मकों के परस्पर संयुग्मन की आवृति (frequency) स्वभाविक रूप से दो प्रकार के युग्मकों A एवं a की संख्या पर निर्भर होगी, अत: उपरोक्त उदाहरण में युगको के परस्पर संयुग्मन की आवृति की प्रतिशत निम्न प्रकार की होगी।

शक्राणु		अण्ड		संतान
A	+	A	$\longrightarrow$	60 x 60 = 36% AA

A	+	a	$\longrightarrow$	60 x 40 = 24% AA
a	+	a	$\longrightarrow$	40 x 60 = 24% AA
a	+	a	$\longrightarrow$	40 x 40 = 16% AA

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि इस समुदाय के सन्तानी पीढ़ी में विभिन्न जीन्स की आवृति क्रमश: **36% AA ,48% Aa ,** एव **16% aa** होगी, अत: इस नयी अगली पीढ़ी में सदस्यों का यही अनुपात उपलब्ध होगा जो मूल जनक समुदाय में था। यह स्पष्ट है कि यहाँ जीन आवृत्ति अपरिवर्तित रहती है अर्थात यह समुदाय पीढ़ी दर पीढ़ी **आनुवंशिक-सतुलन** की दशा में रहता है तथा इस प्रकार के समुदाय में उद्‌विकास की दर भी स्वभाविक तौर से शून्य होगी।

उपरोक्त दिये गये वर्णन से यह पता चलता है कि उद्‌विकासिक परिवर्तन दशा में सम्भव होते हैं जब हार्डी -वाइनबर्ग नियम की एक या अधिक शर्तें भंग होती हैं तथा जब फलस्वरूप समुदाय का आनुवंशिक-संतुलन बिगड़ेंता है।

इस सन्दर्भ में किसी समुदाय में प्राकृतिक चयन प्रक्रिया तभी होती है जब उस समुदाय में प्रजनन अव्यस्थित प्रकार से नहीं होता है, जब उस में आनुवंशिक उत्परिवर्तन होते हैं तथा या जब समुदाय में सदस्यों की संख्या अल्प होती है, अत: तभी उद्‌विकास सम्भव होता है।

12.5 प्रजाति उद्भवन (Speciation)

i. प्रस्तावना (Introduction)

उद्‌विकास की प्रक्रिया अनेक कारकों (factors) के नियंत्रण में होती है जो अतिप्रारम्भिक जीवित पिण्ड को वर्तमान काल के विभिन्न जन्तुओं में शाखातिन्वित ढंग से विकसित करने के लिये उत्तरदायी है। यद्‌यपि उद्‌विकास की प्रकृति का अध्ययन करना कठिन है, तब भी निम्न विवेचनाएँ भूतकाल व वर्तमान काल के जीव-जगत के उद्‌विकास की प्रकृति के बारे में कुछ जानकारी प्रदान करेंगी।

नयी जातियों के उद्‌गम को समझाना एक समस्या है। एक समान जीन-संचय युक्त जीव संख्याओं के कुल समूहों को **जाति** (Species) कहते हैं।

आकस्मिक सकरणता व पृथक करने वाले प्रजनन-अवरोधों को अपूर्ण प्रकृति के द्‌वारा जाति की स्थिति (status) नहीं बदली है। जब एक जनसंख्या के उपसमूहों के मध्य प्रसंकरण निरंतर कम होता जाता है और उत्पन्न संकर अप्रजनन योग्य हो जाते - तो बहुत से समूह अन्त में पृथक जातियों में विभाजित हो जाते हैं। पृथक्करण की प्रक्रिया का कोई भी कारक समूहों या जन्तुओं के का मध्य प्रसंकरण की मात्रा घटा देता ३।

किसी जन्तु-जाति के समुदायों के मध्य प्रजननिक अवरोधकों के विकसित होने से पूर्व सामान्यतया सर्वप्रथम **भौगोलिक अवरोधक** उपस्थित होते हैं। इसमें से सब से सामान्य एवं प्रभावशाली भौगोलिक अवरोधक दूरी (distance) का अवरोधक होता है।

भौगोलिक पार्थक्य अति सामान्य होता है परन्तु यह स्थायी नहीं होता। एक जाति के प्रारम्भ में पृथक हुए दो या अधिक समूह उस समय तक सम्पर्क में आने पर प्रसंकरण कर सकते हैं जब तक कि अंतरजातीय बंध्यता या आनुवंशिक पार्थक्य उत्पन्न नही हो जाते।

आनुवंशिक पार्थक्या संयोग से उत्पन्न एक या अधिक उत्परिवर्तनों के कारण होता है। यह लम्बी अवधि के भौगोलिक पार्थक्य के बाद ही उत्पन्न हो सकता है और इस प्रकार दो समुदायों के

जन्तुओं के मध्य स्पष्ट अन्तर उत्पन्न हो सकते हैं या आनुवंशिक पार्थक्य एक ही समयुग्मजी समूह में उल्ल हो सकता है, उदाहरण के लिये, ड्रोसोफिला सूडोब्स्कुरा (Drosohila pseudobscura) के बाह्य रूप से समान दो समूहों में मैथुन कराने पर ये समूह पूर्णरूप से बंध्य प्रतीत होते हैं। ये समूह तब ही स्पष्ट रूप से भिन्न दिखेंगे जब दोनों समूह पूर्णत: पृथक् किये गये हों तथा अगली पीढ़ियों में संयोग व वरण द्वारा विभिन्न उत्परिवर्तन एकत्रित होते हैं। इन दोनों समूहों को तब तक भिन्न जातियों की संज्ञा नहीं दी जा सकती जब तक कि उन में आनुवंशिक पार्थक्य नहीं विकसित हो जाता।

आप जातिभवन की प्रक्रिया को निम्न उदाहरण से समझ सकते हैं :

> मान लो एक लम्बे समय- अतंराल एवं अनेक पीढ़ियों के पश्चात् किसी जन्तु-जाति के दो निकटवर्ती समुदाय अ एवं ब परिणाम एवं संख्या में क्रमश: बढ़ते जाते हैं, अत: फलस्वरूप लगातार बढ़ते समुदाय दबाव के कारण इन समुदायों के सदस्य भी निरन्तर अधिक प्रवासी क्षेत्र ये प्रसारित होते जाते हैं। उचित समयान्तर ओह पश्चात इस प्रक्रम में यह भी स्थिति आ जाती है इस प्रक्रम में यह भी स्थिति आ जाती है कि दो विपरीत छोरों पर उपस्थित समुदाय अ व ब के सदस्य परस्पर इतने दूर हो जाते हैं कि इनको सीधे एक दूसरे से सह-प्रजनन का अवसर ही नहीं मिलता है। ऐसी प्रस्थितियो में हालांकि समुदाय अ और ब के सदस्यों में जीन-प्रवाह (gene flow) सम्भव तो होता है किन्तु यह सम्बन्ध अब इनके मध्य उपस्थित हो जाने वाले अन्तर-सम्बन्धी समुदायों (स, द, इ) के द्वारा ही होता है अर्थात समुदाय अ और ब के सदस्यों के बीच सीधा लैंगिक प्रजनन नहीं होता है।

यह भी निश्चित होता है कि उत्पीरवर्तवो एवं आनुवंशिक परिवर्तनों के फलस्वरूप समुदाय अ व ब के सदस्यों में विभिन्न प्रकार के लक्षणों का उद्गम होगा तथा इन लक्षणों का प्रसारण प्राकृतिक चयन द्वारा इन समुदायों के अन्य सदस्यों में भी क्रमश: हो जायेगा। अत: दोनों समुदायों अ व य के सदस्य, संरचना एवं कार्य में परस्पर एक दूसरे से क्रमश: भिन्न होते जातै। कुछ समय के पश्चात् यह लक्षणात्मक अन्तर इतने अधिक हो जायेंगे कि समुदाय अ और ब दो विभिन्न अर्थात् पृथक् उपजातियों का स्वत: प्रतिनिधित्व करने लगेंगी।

जाति उद्भवव से सम्बन्धित उत्तरदायी कारकों का जिकर करना भी आवश्यक है, जो कि निम्न हैं:

i. **वियोजन :** जो कारक एक ही जाति के प्राणियों को स्वतन्त्र रूप से संकरण से पृथक करते हैं वियोजनकारी या पार्थक्य (isolation) कारक कहलाते हैं।
ii. **संकरण :** किन्हीं भी अलग- अलग समष्टियों के एक ही जाति के प्राणियों के बीच जनन को संकरण (hybridization) कहते हैं। संकरण के कारण ही एक समष्टि क जीन कोश (gene pool) में नये जीन्स का प्रवेश होता है।
iii. **उत्परिवर्तन :** किसी भी समष्टि में दो प्राणी एक समान नहीं पाये जाते हैं। उन में न केवल आकीरक बल्कि कार्यिकयि व आनुवंशिक अन्तर भी पाये जाते हैं। इस तरह की विभिन्नताएँ जीत्सु की संरचना में रासायनिक परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होती हैं।
iv. **पुन : संयोजन :** समष्टि में पुन : संयो जन भी नये जीन संयोग (new genetic combinations) उत्पन्न करने में सक्षम होता है। इस प्रक्रिया में समष्टि के जीन कोश (gene pool) में उपस्थित पुराने जीन संकरण, विनिमय (Crossing over), गुणसूत्रीय

उत्परिवर्तन तथा युग्मों के याद्दच्छिक संगम के कारण नये संयोजनो में रूपान्तरित होते रहते हैं। ये नये संयोजन जाति उद्भवन में सहायक हो सकते हैं।

पृथक्करण के आधार पर जाति उद्भवन दो प्रकार का होता है :

a. विस्थानिक जातिभवन (allopatric speciation)
b. समस्थानिक जातिभवन (sympatric speciation)

a. **विस्थापिक जातिभवन :** इस प्रकार के उद्भवन में स्थानगत पृथककरण (spatial isolation) के कारण जनन को रोका जाता है, जबकि समस्थानिक जातिभवन में जनन पृथक्करण, पृथक्करण के अन्य प्रकारों के द्वारा होता है। विस्थापिक उदभवन में स्थानगत पृथककरण के द्वारा विकास होता है। ये वंशज अपने पूर्वजों से विकसित होते हैं। इनमें फिर विभिन्नताएँ चयन व जीनी प्रवाह उद्धविकासीय दबाव के रूप में कार्य करते हैं।
b. **समस्थानिक जातिभवन :** इस प्रकार के उद्भवन भी ऐसे परिणाम देता है। जैसेकि यदि इन के मध्य जनन पृथक्करण रहता है तब परिणामस्वरूप नयी समष्टि बनेगी। यदि एक या दोनों समष्टियों को प्रमुख आवास से हटा दिया जाये, विस्थानिक जाति बन जायेगी।

यदि दो समष्टियाँ एक ही क्षेत्र में रहती हैं तो समस्थानिक जाति की पहचान होगी। जब इनके मध्य पृथक्करण स्थापित हो जायेगा, प्रत्येक समष्टि अपना स्वयं का विकास पथ का अनुसरण करेगी।

विस्थानिक जातिभवन को विकास जाति उत्पत्ति की प्राथमिक विधि माना जाता है।

जाति उद्भवन की इस प्रक्रिया में सब से सामान्य प्रकार का भूगौलिक पार्थक्य दूरी (distance) होता है। इस के अतिरिक्त अन्य प्रकार के भौगोलिक पार्थक्य होते है, जैसे पहाड़, नदियाँ व स्थलीय टापुओं का समुद्र जल से घिरा होना इत्यादि।

बोध प्रश्न

1. यह वरण समष्टि में विभिन्नताओं की मात्रा बढ़ाने को प्रेरित करता है -
   (अ) दिशात्मक
   (ब) द्यितीरत
   (स) सामान्य
   (द) उपरोक्त सभी ( )
2. प्रकृति में प्राकृतिक वरण द्वारा किस-किस प्रकार के प्राणियों का चयन किया जाता है ?
   (अ) वन्य प्रजाति
   (ब) अनुकूलतम
   (स) न अनुकूलित होने वाले
   (द) उपरोक्त सभी? ( )
3. सामान्य वरण सक्रिय होता है तो आनुवंशिक साम्य अवस्था बिगड जाती है। (सही/गलत)'
4. वरण चयनात्मक प्रजनन भी कहलाता है।. (सही/गलत)'
5. आनुवंशिक गुणों का मुख्या आधार होते हैं-
   (अ)गुणसूत्र

(ब) केन्द्रक
(स) जीन
(द) गाल्जी काय ( )

6. आनुवंशिक साम्यता का नियम प्रस्तुत किया
(अ) डार्विन
(ब) डीवरीजू
(स) हार्डी वाइनबर्ग
(द) राइट ( )

7. जीन आनुवंशिक गुणों का आधार होता है। (सही/गलत)

8. आनुवंशिक विचलन का सिद्धान्त सीवाल राइट ने दिया था। `(सही/गलत)

9. 'जाति उद्भवन तब होता है जब एक ही जाति की समष्टियों के बीच होता है -
(अ) जननिक वियोजन'
(ब) भौगोलिक वियोजन
(स) किसी समष्टि का विलोप
(द) समष्टि का अधिक विस्तार ( )

10. जाति उद्भवन के लिये उत्तरदायी कारक है -
(अ) उत्परिवर्तन
(ब) वियोजन
(स) संकरण
(द) उपरोक्त सभी

11. जाति उद्भवन का केवल वियोजन एक कारक है।(सही / गलत)

12. जाति वर्गीकरण एवं जैवविकास का आधारभूत इकाई है।(सही / गलत)

12.6 सारांश (Summary)

1. प्राकृतिक वरण निश्चय ही उद्विकास के क्रम में सबसे महत्वपूर्ण व प्राथमिक कारक होता है।
2. प्राकृतिक वरण ऐसे जीन्स (genes) का पक्षधार होता है जो उन्हें समष्टि में स्थापित होने में सहायक होता है।
3. प्राकृतिक वरण की क्रियाशीलता के लिये निम्न कारक आवश्यक होते हैं
   (अ) जनन योग्य इकाईयाँ
   (ब) आणुवंशिक विभिन्नताओं की उत्पत्ति
   (स) एक ही प्रकार के वातावरण में एक से अधिक प्रकार की जनन योग्य इकाईयो की उपस्थिति
4. प्रत्येक समष्टि का अपना एक जीन-कोष (gene pool) होता है तथा समष्टि के प्राणियों में पाये जाने वाले सभी जीन संयुक्त रूप से एक समष्टि का जीन-काष कहलाते।

5. हार्डी-वाइनबर्ग से नियम के अनुसार किसी भी बड़ी समष्टि में यदि सगम (mating) या दृच्छिक (random) हो तथा जीनी उत्परिवर्तन न हो तो समष्टि में जीन व जीनी प्रकार आवृत्ति पीढ़ी दर पीढ़ी नियत (constant) रहती है।
6. जाति उद्भवन में एक जाति दो या अनेक जातियों को उत्पन्न करती है या अपनी पूर्व जाति को प्रतिस्थापित भी कर सकती है।
7. जाति उद्भवन से सम्बन्धित कारक इस प्रकार है
   (अ) वियोजन
   (ब) संकरण
   (स) उत्परिवर्तन
   (द) पुन: संयोजन

12.7 शब्दावली (Glossary)

जीन अपआवृत्ति	Gene Frequency
जीन कोश	Gene pool
उत्परिवर्तन	Mutation
समष्टि	Population
भौगोलिक अवरोधक	Geographical barriers
वियोजन	Isolation
विस्थापित	Allopatric
समस्थानिक	Sympatric
- दृच्छिक	Random

12.8 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली एवं भाटिया - प्राणि विज्ञान, प्राणी विविधता तथा उद्विकास, रमेश बुक डिपो, जयपुर-दिल्ली
2. तोमर एवं सिंह -जनरल बॉयोलॉजी - इवोल्यूशन, डिस्ट्रीब्यूशन एंड पेलेन्टोलॉजी, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to self assessment Questions)

1. ब	2. ब	3. गलत	4. गलत	5. स
6. स	7. सही	8. सही	9. अ	10. द
11. गलत	12. सही			

12.10 अभ्यासार्थ(Exercise Questions)

1. प्राकृतिक चयन (विभेदक प्रजनन) की विशिष्टाओ एवं आधुनिक चयन के मत पर प्रकाश डालें।

2. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये
   (अ) छितीरत वरण
   (ब) प्राकृतित चयन की विशेषताएँ
   (स) विभेदक प्रजनन का महत्व।
3. 'उद्विकास का आनुवंशिक' आधार पर एक निबन्ध लिखिये। टिप्पणियाँ। लिखिये
   (अ) हार्डीवाइन बर्ग नियम
   (ब) आनुवंशिक अपसरण
   (स) व्यवस्थित प्रजनन का प्रभाव।
4. जाति उद्भवन का उदाहरणों की सहायता से वर्णन कीजिये।
5. टिप्पणियाँ लिखिये
   (अ) जाति उद्भवन
   (ब) जाति उद्भवन की विधियाँ
   (स) जाति उत्पत्ति में पृष्ककरण का महत्व
   (द) विभेदग जनन का जाति उत्पत्ति में योगदान

इकाई 13: जैविक उद्विकास के प्रमाण (Evidences of Organic Evolution)

इकाई की रूपरेखा (Out Line Of Unit)

13.0 उद्देश्य (Objectives)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

13.2 परम्परागत प्रमाण

13.2.1 वर्गीकरण से प्रमाण (Evidences from Classifications)

13.2.2 तुलनात्मक शरीर रचना के प्रमाण (Evidence from Morphology)

13.3 आधुनिक जीव विज्ञान से प्रमाण (Evidence From Modern Biology)

13.3.1 जैव रासायनिक प्रमाण (Evidence from Biochemistry)

13.3.2 तुलनात्मक कार्यिकी से प्रमाण (Evidence from Comparative Physiology)

13.3.3 आनुवांशिकी से प्रमाण (Evidence from Genetics)

13.4 सारांश (Summary)

13.5 शब्दावली (Glossary)

13.6 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to self assessment Questions)

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

13.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में हम निम्न अध्ययन करेंगे

- जैविक विकास
- परम्परागत जैव वैज्ञानिक प्रमाण
- आधुनिक जैव-वैज्ञानिक प्रमाण

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक काल में विभिन्न प्रकार के प्राणियों की अत्याधिक संख्या, जीव-विश्व की एक प्रमुख विशेषता है। पृथ्वी पर रहने वाले पौधे व प्राणी पृथ्वी के इतिहास के विभिन्न कालों मे परिवर्तित होते रहे हैं। प्रारम्भ में अतिसामान्य प्रकार के जीव थे और उससे समस्त विभिन्न व अधिक जटिल प्रकार के पौधे व प्राणी विकसित हुए। यह कहना न्यायसंगत होगा कि वर्तमान पौधे व प्राणी पृथ्वी पर बहुत पहले पाये जाने वाले अतिसामान्य जीवों से विकसित हुए हैं। दूसरे शब्दों में क्रमबद्ध परिवर्तनों की जिस प्रक्रिया द्वारा वर्तमान पौधे व प्राणियों की विभिन्न जातियाँ पृथ्वी पर बहुत पहले से उपस्थित जातियों से विकसित हुई **जैविक उद्विकास** (Organic Evolution) कहते हैं। कई प्रमाण यह स्पष्ट करने के लिये प्रतिपादित किये जा चुके हैं कि जैविक विकास हुआ है और हो रहा है, यद्यपि यह एक बहुत धीमी प्रक्रिया है।

उद्विकास सिद्धान्तों के अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्तमान युग के जीवधारियों की अनेकों जातियाँ, वश और वर्ग आदि की उत्पत्ति उद्विकास या जैव विकास के फलस्वरूप हुई है। परन्तु उद्विकास

की धारणा को मात्र मान्यता प्रदान कर देने से उस सिद्धान्त की वैधानिक पुष्टि नहीं होती है। अत : विभिन्न जैव वैज्ञानिक स्रोतों और क्षेत्रों से अनेकों महत्वपूर्ण प्रमाणों से हम उद्विकास प्राक्ष्मी को प्रमाणित करते हैं। विभिन्न प्रमाण (Evidences) निम्न दो मुख्य समूह में रखे जा सकते हैं -

(अ) परम्परागत जैव वैज्ञानिक प्रमाण (Conventional Biological Evidences)

1. वर्गीकरण से प्रमाण (Evidences from Classification)
2. तुलनात्मक शरीर रचना से प्रमाण (Evidences from Comparative Antonomy)
3. तुलनात्मक भ्रौणिकी से प्रमाण (Evidences from Comparative Embryology)
4. संयोजी जन्तु से प्रमाण (Evidences from connecting links)
5. जीवाश्म, भू - वैज्ञानिक वितरण और समय स्केल से प्रमाण (Evidences from Palentology , Geological , distribution , time scale)
6. प्राणि भूगोलीय वितरण प्रमाण (Evidences from Zoo-gepgraphical distribution)

(ब) आधुनिक जैव - वैज्ञानिक प्रमाण (Evidences from Modern biology)

1. जीव - रसायनिक प्रमाण (Evidences from Bio- chemistry)
2. तुलनात्मक कार्यकी प्रमाण (Evidences from Comparative physiology)
3. आनुवांशिकी प्रमाण (Evidences from Genetics)

13.2 परम्परागत प्रमाण (Conventional Biological Evidences)

13.2.1 वर्गीकरण से प्रमाण(Evidences from Classification)

उद्रिकास का एक प्रमाण वर्गीक रण से प्राप्त हो ता है। जीव - विश्व सबसे पहले दो जगतों (Kingdom) में बाँटा जाता है, **प्राणि - जगत** (Animal kingdom) तथा **वनस्पति जगत** (plant kingdom)। दनको फिर फाइला (phyla) में विभाजित किया जाता है। अधिकतर वर्गीकरण - वेत्ता वनस्पाति जगत को चार फाइला और प्राणी जगत को बीस फाइला में वर्गीकृत करते हैं। फाइला को क्लासों (classes) में विभाजित किया जाता है, क्लासों को गण अथवा ऑर्डरों (orders) में, ऑर्डरों को कुलों (families) में, कुलों को वंशों (genera) में तथा वंशों को स्पीशीज जाति में विभाजित किया जाता है। एक ही फाइला के समस्त सदस्यों में कुछ समान लक्षण होते हैं। इस प्रकार कॉर्डेटा फाइलम के समस्त सदस्यों में एक **नाटोकार्ड** (notochord) या पृष्ट रखु (कोशिकाओं की ठोस शृंखला) होता है जो उनके परिवर्तन की किसी एक अवस्था में **तंत्रिका रज्जु** (dorsal tubular nerve cord) होता है। इसी प्रकार एक ही कुल के समस्त सदस्यों में कुछ समान ल क्षण मिलते हैं। उदाहरण के लिए श्वान (dog) को इस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है **जगत** प्राणि - जगत (animalia) **फाइलम** : कार्डेटा (Chordata), **क्लास** : ममैलिया (mammalia) **आर्डर** कार्निवोरा (carnivora), **कुल** : केनिडी (canidae), **वंश** ; केनिस (canis), **स्पीशिज** फेमिलियेरिस (Familiaris)।

इस पद्धति के अनुसार एक फाइलम के सदस्यों की तुलना में एक ही कुल के सदस्यों में अधिक समानता होती है, और एक ही वंश (genus) के सदस्यों में एक ही कुल के सदस्यों की तुलना में अधिक समान लक्षण होते हैं। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्गीकरण की एक पद्धति

सम्भव है और एक प्राणी दूसरों की तुलना में कुछ जन्तुओं से ही अधिक समानता प्रदर्शित करता है। उद्विकासवेत्ताओं के अनुसार चूंकि वर्गीकरण की एक प्रकार की पद्धति सम्भव है अत: ऐसी समानताओं को उद्विकास के प्रमाण के रूप मे रखा जा सकता है। उद्विकासवेत्ताओं का विश्वास है कि ऐसी समानताएँ एक ही पूर्वज से सम्बन्धों को व्यक्त करती है। उद्विकासवेत्ताओ ने यह तर्क भी दिया है कि यदि पौध व प्राणी विशिष्ट रूप से रचे गये हैं तो उनको वर्गीकरण की किसी भी पद्धति के अनुसार व्यवस्थित करना सम्भव नहीं होगा। यह तथ्य कि जन्तुओं को बढ़ ती हुई जटिलता के क्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है, उद्विकास का प्रमाण माना जा सकता है।

13.2.2 तुलनात्मक शरीर रचना के प्रमाण (Evidences from Comparative Anatomy)

1. **समजातता से प्रमाण** ((Evidences from Homology) उद्विकास के लिए एक दूसरी तरह के प्रमाण समजात (homology) से लिया हैं जो समजात अंगों का अध्ययन है। **समजात संरचनायें** (homologous structures) वे हैं जिनका **भ्रूणीय उद्गम** एक ही होता है पर वे आवश्यक रूप से एक सा कार्य नहीं करती। **समरूप संरचनायें** (analogous structures) वे हैं जिनका भ्रूणीय उद्गम एक नहीं होता। उदाहरण के लिये कटि का पख, पक्षी का पख, चिमगादड़ का पंख और टेरोडेक्टाइल (प्रागैतिहासिक उड़ने वाला सरीसृप) का पंख एक ही कार्य में अर्थात् उड़ने में सहायक होते हैं। लेकिन उनकी धूणीय उत्पत्ति विभिन्न होती है समरूप अंगों का विकास किसी विशिष्ट वातावरण की आवश्यकता के अनुरूप **अभिबिन्दुय उद्विकास** (convergent evolution) दर्शाता है। अर्थात समान परिस्थितियों में रहने वाले विभिन्न जीव एक विशिष्ट आवश्यकता पूर्ति के लिये समान अंगों का विकास कर लेते हैं। अत: समरूप अंगों से जैव विकासवाद का सिद्धान्त पुष्ट होता है (चित्र 13.1)। इसलिये समरुप अंग उद्विकास के समर्थन में प्रमाण देते हैं। **समजात संरचनाओं के उदाहरण** के तौर पर हम सेलामेण्डर, मगर, पक्षी, चमगादड़, व्हेल, मील तथा मनुष्य जैसे भित्त जीवों के अग्रवाद (fore limb) की हड्डियों को ले सकते हैं (चित्र 13.2)। ये पाद सेलामेण्डर में चलने के लिये, पक्षी व चमगादड़ में उड़ने के लिये, व्हेल में तैरने के लिये, मोल में खोदने के लिये और मानव में पकड़ने के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं। पाद कायानुसार परिवर्तित होते हैं, अत: उनके विभिन्न रूप हैं। इसी प्रकार प्रत्येक में जब पैर की हड्डियों की परीक्षा की गई तो वे भी समान भागों की बनी हुई पायी गई लेकिन उनके रूप परिवर्तित हो चुके हैं। इन सभी प्राणियों में बाहरी रूप में विशाल अन्तर हैं और इनके अग्रपाद (हाथ) और पश्चपाद (पैर) देखने पर कोई समानता नहीं दर्शातें हैं। परन्तु प्रत्येक के अग्रपाद में झूमरूस, रेडियो अलना, कार्पल और मेटकार्पल और पश्चपाद में फीमर, टीबिया-फीबुला, टार्सल और मेटा-टार्सल समान क्रम में व्यवस्थित होते हैं यद्यपि आवश्यकतानुसार उनके रूप अलग-अलग हैं। ये सभी पाद वास्तव में एक ही प्रकार के **पेन्टाडेक्टाइल पाद** (pentadactyl limb) से विकसित हुए जो उद्विकास क्रम में विशेष उद्देश्यों के लिये रूपान्तरित हो गये। समजात संरचनायें उद्विकास का प्रमाण देती है।

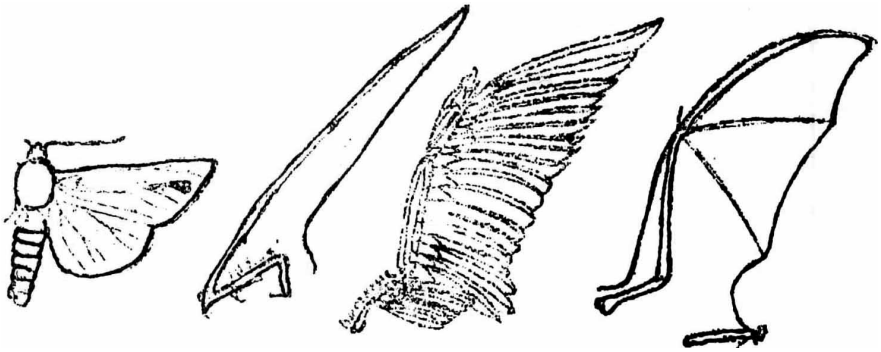

चित्र 13. 1 : समरूप अंग (Analogous organs) - एक कीट के पंख. एक टेरोडेक्टाइल के पंख, एक पक्षी के पंख तथा एक चमगादड़ के पंख का एक ही कार्य होता है किन्तु उनका भ्रूणीय उद्भव (embryonic origin) अलग-अलग है।

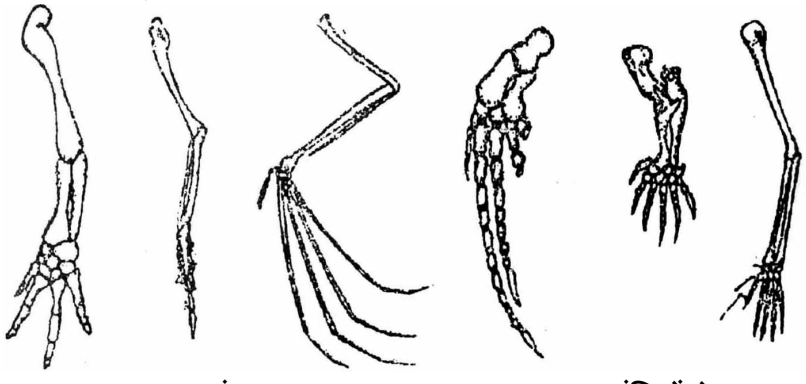

चित्र 13. 2 : समजात अंग (homologous organs) - पृष्ठवंशियों के अग्रपाद की अस्थियाँ। समजात अंगों का भ्रूणीय उद्भव (embryonic origin) एक समान होता है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि ये एक सा कार्य भी करें

2. **अवशेषी अंगों से प्रमाण** (Evidences from Vestigeal Organs) महत्त्वपूर्ण प्रमाण अवशेषी अंगों से लिया गया है। ये ऐरने अंग है वर्तमान में जिनका कोई कार्य प्रमाणित नहीं हुआ है। यह परिकल्पना की गई है कि यह अंग एक समय में पूर्वजों में कार्यशील थे लकिन उद्विकास की प्रक्रिया के दौरान उनकी उपयोगिता समाप्त हो गई तथा वे क्रमश : निष्क्रिय हो गये। उदाहरण के लिये, मानव शरीर में एपेन्डिमन (appendix) व आहार नाल का सीकम (caecum), कोकिक्स (coccyx), टॉन्सिल्स (tonsills), कर्ण पेशियाँ (ear-muscles), मनुष्य की आँख की अंदरूनी भाग में त्वचा का एक वलन (fold) जो सरीसृपों तथा पक्षियों के निषेमद पटल (nictitating membrane) को व्यक्त करता है, आदि अवशेषी अंग होते हैं (चित्र 13.3)। मानव की एपेन्डिक्स यद्यपि निष्क्रिय अंग है परन्तु अन्य अनेकों शाकाहारी जन्तुओं में वनस्पति **कोश भित्ति** (cell wall) को तोड़ कर पाचन में यह अंग विशेष रूप से सक्रिय सहयोग देता है। अत: यह माना जाता है कि मानव के पूर्वज शाकाहारी प्राणी में यह विकासवाद के अनुरूप है। इसी प्रकार कुछ साँपों में (उदाहरण अजगर) अवशेषी असमेखला (pectoral girdle) और श्रोणि मेखला (pelvic girdle) का पाया जाना यह सिद्ध करता है कि उनके पूर्वजों में अग्रपाद और पश्चपाद थे अर्थात् उनका उद्विकास हाथ - पैर वाले (limbed) प्राणियों से हुआ होगा॥

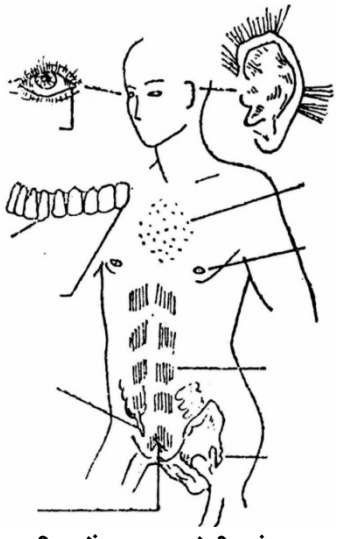

चित्र 13.3: मानव शरीर में कुछ अशेषी अंग (vestigial organs)

3. **तुलनात्मक भ्रौणिकी से प्रमाण (**Evidences from Comparative Embryology) : उद्विकास के समर्थन में भ्रौणिकी एक बहुत दृढ़ प्रमाण प्रस्तुत करती है। प्राणियों के प्रारम्भिक विकास में समानता इतनी निकट है कि यह कहना तर्कयुक्त होगा कि विभिन्न प्राणी एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और वे एक ही प्राचीन पूर्वज से अग्रसित हुए हैं। यदि विभिन्न पृष्टवंशियों के भ्रूणों की शृंखला का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो परवर्ती अवस्थाओं में बहुत विभिन्नतायें मिलेगी, लेकिन उनकी प्रारम्भिक प्रावस्थाओं में इतनी अधिक समानतायें मिलती हैं कि उनके मध्य भेद करना विशेषज्ञों के लिये भी कठिन है (चित्र 13.4)।

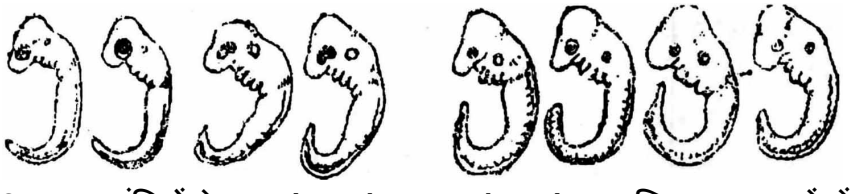

चित्र 13.4 : पृष्ठवंशियों के भ्रूण (Vertebrate embryos) - प्रारम्भिक अवस्थाओं में सभी एक जैसे होते हैं

यह देखा गया है कि परिवर्धन के दौरान प्राणी अधिकतर उन प्रावस्थाओं से गुजरते हैं जो निम्नतर प्राणियों के वयस्क रूपों के समान होती है। उदाहरण के लिये, मेंढ़क अपने जीवन इतिहास में, एक मल्म के समान प्रावस्था से गुजरता है जो क्लोमों (Gills) व पुच्छ की उपस्थिति व पादों की अनुपस्थिति से लक्षित होती है। इस प्राक्ष्मी का क्या महत्व है? इसका एक बहुत संभव स्पष्टीकरण **वान बीयर के पुनरावर्तन सिद्धान्त** (Recapitulation Theory of von Bear) द्वारा दिया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जन्तु अपने जीवन-इतिहास (ontogeny) में अपनी जातिके उद्विकास के इतिहास (Phyologeny) की पुनरावृत्ति संक्षिप्त रूपों में करता है अर्थात् जीवन- इतिहास उद्रिकास के इतिहास की पुनरूक्ति है (Ontogeny repeats phylogy)। इस सिद्धान्त को और अधिक स्पष्ट करने के लिये एक ग्राफ की सहायता से मेंढक के सम्पूर्ण जीवन इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं की तुलना इसके क्रमिक उद्विकासीय इतिहास से करने पर जायगोट को मेंढक के एक कोशीय प्रोटोजोआ जैसे पूर्वज से मोरूला को बहुकोशीय स्पन्स से,

ब्लाक्ट्रला को द्विस्तरीय सीलेन्ट्रेटा, गेस्ट्रूला को त्रिस्तरीय जन्तुओं और टेडपोल लार्वा को मज्य जैसी पूर्वज अवस्थाओं के समकक्ष रखा जा सकता है। अर्थात् मेंढक का जीवन इतिहास मात्र अपने उद्विकासीय इतिहास की पुनरावृत्ति है जिसमें मल्म उद्विकासीय विकास में मेंढक के अन्तिम पूर्वज थे (चित्र 13.5)।

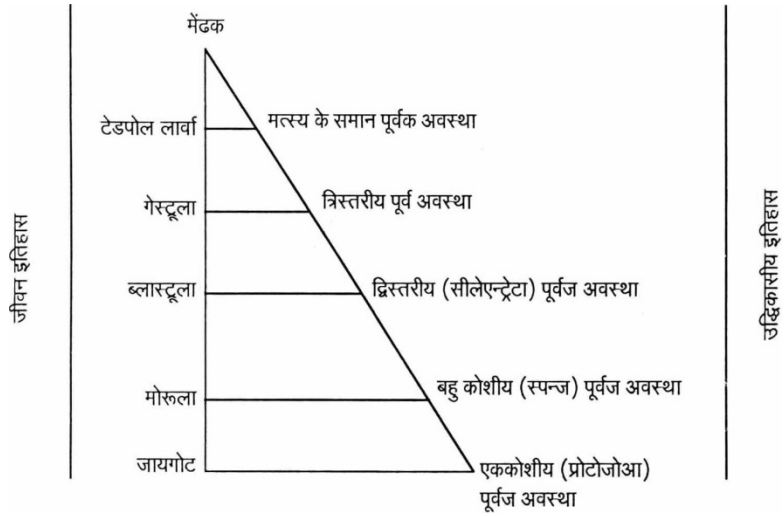

चित्र 13.5 : जीवन-इतिहास, उद्विकास की पुनरावृत्ति है का निरूपण

यह भी कहा जा सकता है कि टेडपोल के क्लोम व पुच्छ केवल अनुकूली लक्षण होते हैं और पूर्वज परम्परा को व्यक्त नहीं करते हैं। लेकिन हम पाते हैं कि एक पक्षी या स्तनधारी जो जलीय वातावरण में नहीं रहता, में भी परिवर्धन की एक प्रारंभिक प्रावस्था में ग्रसनी-चापें (visceral arches) व क्लोम छिद्र (gill - slits) तथा रक्त परिवहन तंत्र मछली की भाँति होता है। यह विलक्षण है कि एक सदृश्य पूर्वज परम्परा के कारण एक मछली, सेलामेंण्डर, कछुआ, चूहा, खरगोश व मनुष्य जैसे विभिन्न प्राणी अपनी प्रारम्भिक भ्रूणीय प्रावस्थाओं में इतने अधिक एक दूसरे के सदृश्य है कि उनको एक दूसरे से पहचानना कठिन है।

भ्रूण विज्ञान के अध्ययन से प्राप्त पूर्वज परम्परा का अतिरिक्त प्रमाण शरीर के कुछ अंगों के परिवर्धन से प्राप्त होता है। मछलियों में हृदय द्विकोष्टीय होता है, **उभयचरों** (amphibians) में और अधिकतर सरीसृपों में त्रिकोठीय तथा पक्षियों व स्तनधारियों में चार कोधें वाला होता है। यह महत्त्वपूर्ण है कि एक पक्षी या स्तनधारी का हृदय परिवर्धन के प्रारम्भ में द्विकोठी प्रावस्था से गुजरता है और चार कोठीय बनने से पहले त्रिकोठी प्रावस्था से गुजरता है।

मुलर (Muller) व **हेकल** (Hackel) का महत्त्वपूर्ण **प्रजाति-आवर्तन नियम** (biogenetic law) का सारांश इस वाक्य में व्यक्त हुआ है : जीवन इतिहास उद्विकास के इतिहास की पुनरूक्ति करती है। किन्तु यह नियम अब उतना महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता है क्योंकि अब यह सिद्ध हो चुका है कि जीवन-इतिहास उद्विकास की संपूर्ण अवस्थाओं की पुनरावृत्ति नहीं करता है।

4. **संयोजी जन्तुओं से प्रमाण** (Evidences from Connecting Links). हम वर्तमान जन्तुओं की विकासवान मृंखला में व्यवस्थित कर सकते हैं जिसमें अतिस्थितियाँ अंतवर्ती जातियों से संबंधित हैं। किन्तु अनेकों ऐसे प्राणी पाये गये हैं जिसमें कुछ प्राचीन गुण अभी भी सुरक्षित हैं ओर ये लक्षण उद्विकासीय प्रक्रिया के लिये महत्त्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में ये प्राणी जीवित जीवाश्म (Living fossils) कहे जा सकते हैं जो प्राचीन पूर्वज और आधुनिक

विकसित प्राणी वर्गो के मध्य सेतु (bridge) का काम करते हैं। ऐसे प्राणियों को संयोजी प्राणी कहते हैं प्राणी जगत में संयोजी जन्तुओं के कई उदाहरण मिलते हैं। अण्डे देने वाले स्तनधारी उपक्लास प्रोटोथीरिया (Prototheria) में आते हैं- जैसे **प्लेटिपस** (Platyus) और **कटिदाहर चींटीखोर** (Echidna)। ये जन्तु सरीसृपों व स्तनधारियों के मध्य अंतवर्ती जन्तु हैं। ये कई लक्षणों विशेषतौर पर अण्ड निक्षेपण व 1 रूपीय एपीस्टनम (Episternum) में सरीसृपों के समान है। साथ ही वे बालों व स्तनों की उपस्थितिके कारण स्तनधारी है। **सयोजीजन्तु** का एक और विशिष्ट उदाहरण **जीवाश्म पक्षी** (fossil bird) **आर्किओप्टेरिक्स** (Archaeoptrryx) है, जो सरीसृपों व पक्षियों के बीच की कड़ी है। इस दुर्लभ पक्षी में अग्रपाद का पंखों को रूपान्तरण शरीर पर पर (feathers) भी उपस्थित थे, लेकिन वर्तमान पक्षियों के विपरीत इसमें दंत, लम्बी पुच्छ और शल्क पर। जैसे सरीसूप वर्ग के लक्षण भी थे। अत: ये संयोजी जन्तु पक्षियों का विकास सरीसृप प्राणियों से सिद्ध करता है।

संयोजी प्राणियों का अस्तित्व एक प्रकार से उस पथ या क्रमका द्योतक है जिसके माध्यम से उच्चतर समूह निम्नतर समूहों में विकसित हुए हैं

5. **जीवाश्म विज्ञान से प्रमाण (जीवाश्म) एवं भू वैज्ञानिक वितरण और समय स्केल** (Evidences from Palaentology, fossils and Geological Distribution and Time) उद्विकासवेत्ताओं ने जीवाश्म-प्रमाण को उद्विकास का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण माना है। फासिल (fossils) शब्द लेटिन भाषा के **फोसिलियम** (Fossilium) से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है खोद कर निकाली गई वस्तु। अत: प्रारम्भ में इस शब्द का प्रयोग केवल भूपटल से खोद कर निकली गई वनस्पति या प्राणियों के लिये किया जाता था। परन्तु अब जीवाश्म का व्यापक अर्थहै और इसी संदर्भ में सर **चार्ल्स लायल** (Sir Charles Lyell) द्वारादी गई परिभाषा जीवाश्म की सर्वमान्य व्याख्या के रूप में प्रचलित है। सर लायल के शब्दों में **"जीवाश्म किसीजन्तु अथवा पौधे के शरीर के शेष चिन्ह है जो प्राकृतिक कारणों द्वारा संचित रूप में प्राकृतिक चट्टानों में पाये जाते हैं।"** अन्य शब्दों में जीवाश्म (Fosslis) उन पौधों व जन्तुओं के अवशेष हैं जो प्राचीन काल में जीवित थे और उनमें से अधिकतर अब विलुप्त हो चुके हैं। पौधों व जन्तुओं के जीवाश्मों व उनके अस्तित्त्व के चिन्हों से भूतकालीन जीवन के अध्ययन कोजीवाश्म विज्ञान (Palaentology) कहा जाता है।

जीवाश्म निर्माण (Fossil Formation)

आदि काल में विभिन्न जीवों के रचनात्मक प्रारूप के अनुसार अनेकों विधियों से जीवाश्मीकरण (Fossilization) होता रहा है। प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं

1. **कठोर एवं कंकालीय भागों का पीररक्षण** (Preservation of hard skeletal parts) : पृष्टवांशियों के कंकाल या उनके भाग अथवा दाँत आदि किसी आकस्मिक दुर्घटना में दब जाने से चट्टानों में परिरक्षण हो जाते हैं और विलुप्त जीवों की शरीर रचना, माँसपेशियों का आकार और स्थिति आदि का पूर्ण ज्ञान कराते हैं।

2. **अश्मीकरण** (Petrification) आकस्मित्रु मृत्यु से जब कोई जीवधारी या उसके कोमल अग किसी खनिज के नीचे दब जाते हैं तथा मूल ऊतक को खनिज अणु धीरे-धीरे विस्थापित करके परिरक्षण करते हैं। ऐरीजोना के जंगलों में पाये गये जीवाश्म इनका अच्छा उदाहरण है। इसी प्रकार एक शार्क मछली की तीस करोड़ वर्ष पुरानी माँसपेशी का अश्मीकृत जीवाश्म मिला है।

3. **पदचिन्ह परिरक्षण** (Preservation of foot - print of Trails) : प्राचीन काल में कुछ जीवधारियों के नम भूमि पर चलने से उनके पंजों आदि के स्थाई चिन्ह बन गये, कालान्तर में सूखकर परिरक्षित हो गये। पेनिसलवेनियन राज्य में पिट्सबर्ग (Pitsburg) में 1948 में चट्टानों से प्राप्त एक उभयचरी प्राणी के पदचिन्ह इसका सर्वोत्तम नमूना है।

4. **साँचे या ढाँचे** (Mould or Castes) : कुछ प्राणियों के ऊपर मृत्यु उपरान्त मिट्टी की पर्त जमकर कठोर हो जाने से उनके साँचे या ढाँचे जीवाश्म के रूप में सुरक्षित हो गये। विशेषकर कोमल जीवों के लिये यह बहुत उपयोगी है।

दुर्भाग्य से भूतकाल में पृथ्वी पर मौजूद समस्त प्राणियों के पूर्ण जीवाश्म- अभिलेख उपलब्ध नहीं है अन्यथा वे जैविक विकास के सिद्धान्त की सचाई का पूर्ण निश्चित प्रमाण हमें देते।

भू वैज्ञानिक अभिलेखों की अपूर्णता निम्नलिखित कारणों से हैं : -

(i) प्राणियों के अधिकतर कठोर भाग, जैसे खोल व अस्थियाँ ही परिरक्षित हो सकती है। बिना कठोर भागों वाले प्राणियों ने बहुत कम जीवाश्म छोड़े हैं।

(ii) अधिक गहराइयों पर स्थित जीवाश्म समुद्री सतहों के दबाव पर अत्यधिक ताप द्वारा नष्ट हो चुके हैं।

(iii) जीवाश्म-निर्माण अधिकांशत: समुद्र के तल पर होता है इसलिये: वहाँ थलीय प्राणियों के जीवाश्म अधिक नहीं मिलते हैं।

(iv) महासागरों के तलों पर गहराई में स्थित कई जीवाश्म मनुष्य की पहुँच से बाहर है।

(v) एक अन्य समस्या जीवाश्मों के वर्गीकरण की है। जीवाश्वेत्ताओं को अधिकांश कंकालों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं तथा वे भी अधिकतर खंडित अवस्था में प्राप्त है।

यद्यपि **जीवाश्म-वेत्ताओं** को अधिकतर जीवाश्मों के खण्ड ही प्राप्त हुए हैं, किन्तु फिर भी जन्तु उद्विकास को निरूपित करने वाली कुछेक जीवाश्मों की पूर्ण श्रृंखलायें भी उपगध हैं, जैसे घोड़ा, हाथी व ऊंट आदि। उदाहरण के लिये घोड़े की पूर्वज परम्परा को व्यक्त करने वाली **जीवाश्म-श्रृंखला** यूरोप व उत्तर अमेरिका की टरशरी (Tertiary) चट्टानों से खोजी जा चुकी है। प्रथम घोड़े के समान प्राणी, **इओहिप्पस** (Eohippus), **इयोसीन** (Eocence) काल में जीवित था। यह छोटा प्राणी एक बिल्ली से बड़ा नहीं था। इओहिप्पस, कई उद्रिकासीय प्रावस्थाओं से गुजरता हुआ अन्त में आधुनिक घोड़ा, **एक्वस** (Equus) बना। समयानुसार हुए मुख्य पखिर्तन निम्न हैं (चित्र13. 6):-

(1) बिल्ली के आकार से बढ़कर आधुनिक घोड़े से कुछ बड़ होना;

(2) नेत्रों के आगे सिर का बड़ा व लम्बा होना;

(3) गर्दन की लम्बाई व उसकी गतिशीलता में वृद्धि;

(4) पत्ते खाने के लिये (browsing) उपयुक्त जड़दार प्रीमोलर व मोलर दंतों का घास चरने के लिये उपयुक्त जड़ हीन, इनेमल युक्त प्रीमोलरो व मोलरों में परिवर्तन होना;

(5) तेज दौड़ ने के लिये पैरों का लम्बा होना;

(6) प्रत्येक तलवे में पाँच अंगुलियों का घटकर एक लम्बी अंगुली (तीसरी) रह जाना और अन्त में केवल दूसरी व चौथी अंगुली की हड्डियों का फ्लिंदस की तरह रह जाना। उपरोक्त परिवर्तनों द्वारा घोq लम्बे पैरों से तेज दौड़ ने वाला स्तनपायी हो गया जो खुले घास के मैदानों से

आहार प्राप्त करने के अनुकूली है तथा जिसमें कठोर घास को पीसने के लिये इनेमिल युक्त कई किनारों वाले दाँत पाये जाते हैं।

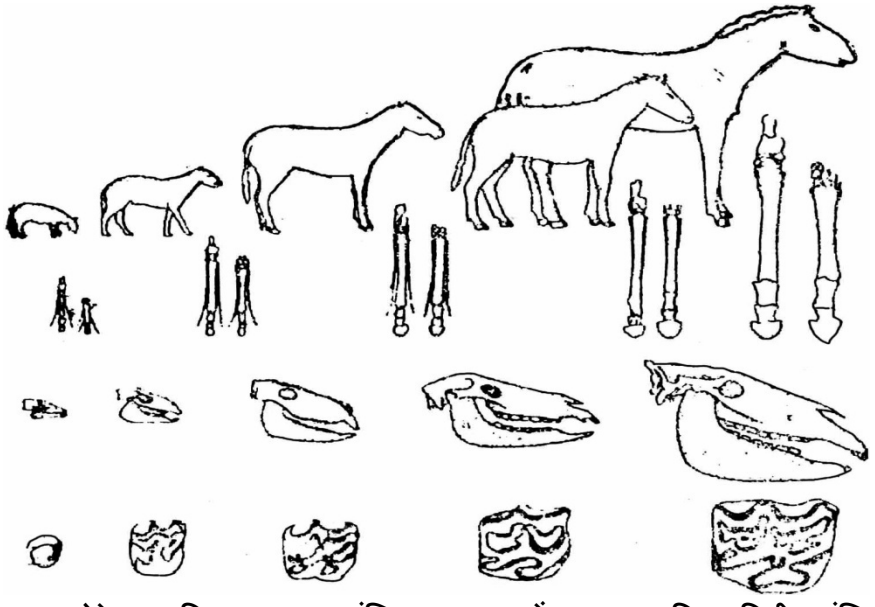

चित्र 13. 6 : घोड़े का उद्विकास। प्रथम पंक्ति : आकार में लगातार वृद्धि। द्वितीय पंक्ति : पादों की लम्बाई में वृद्धि तथा पांचवीं से पहली पदांगुलियों का न्यूनीकरण : प्रत्येक पाद की तीसरी पादांगुलि बड़ी होती है जबकि दूसरी तथा चौथी पादांगुलियों की अस्थियाँ स्पिल्न्त्स (spilnts) के रूप में बनी रहती हैं। तृतीय पंक्ति : खोपड़ी (skull) के आकार में क्रमिक वृद्धि। चतुर्थ पंक्ति : द्वितीय ऊपरी मोलरों की पेषण - सतहों (grinding surfaces) में इनेमल (enamel) के प्रारूप की जटिलताओं में लगातार वृद्धि।

सरीसृपी पूर्वजों से वर्तमान पीढ़ि यों के उद्विकास को व्यक्त करने वाला अन्य रोचक जीवाश्म, **आर्किओप्टेरिक्स** (Archeopteryx) है, जो पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाला प्रथम पक्षी था। इस **आदि - पक्षी** के जीवाश्म अपर **जुरेसिक** (upper jurassic) काल की चट्टानों में मिलते हैं।

भूवैज्ञानिक समय स्केल (The geological time scale)

प्रसिद्ध भूगर्भ वैज्ञानिक **शूशर्ट** (Schuchert) के अनुसार प्रारम्भ में भूगर्भ विज्ञान मात्र चट्टानों और खनिजों का अध्ययन था परन्तु इंग्लैण्ड निवासी स्मिथ (Smith) ने सन् 1799 - 1801 में जीवाS म की खोज करके इसका जीव - विज्ञान से सीधा सम्बंध स्थापित किया था। फ्रांस निवासी **कुवीयर और ब्रोगिअर्ट** (Cuvier & Brongiart) (1808 - 1811) ने जीवाश्म और भूगर्भ विज्ञान के सम्बंधों को और अधिक स्पष्ट करके इनके महत्व की व्याख्याकी थी। सर लायल ने जीवन में निरन्तरता में विश्वास व्यक्त किया था जिसकी पुष्टि डारविनवाद और अन्य खोजों से होती चली गई। आधुनिक युग में विभिन्न रेडियोधर्मी तत्वों के अध्ययन स जीवाश्म और उसकी चट्टानों की प्राचीनता और आयु का अनुमान लगाकर यह सिद्ध किया जा चुका है कि उत्पत्ति से लेकर आज तक जीवन की निरन्तरता एक अटल सत्य है जिसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता हैं। विभिन्न भूतकालीन चट्टानों को प्राचीनता से नवीनता के क्रम में व्यवस्थित करके जीवन के सम्पूर्ण इतिहास का विवरण एक भूवैशानिक समय स्केल द्वारा दर्शाया जा सकता है और इसको एक भूवैज्ञानिक समय सारिणी से संक्षिप्त रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

भू वैज्ञानिक समय स्केल में जीवनके सम्पूर्ण इतिहासको, पृथ्वी के तत्कालीन परिवर्तनों के अनुसार निर्मित चट्टानों और उनके जीवाश्म के आधार पर, **5 महाकल्पों** (era) में बाँटा गया है। प्रत्येक महाकल्प को कल्पों (periods) में विभक्तकिया गया है। उन भौगोलिक क्षेत्रों के नाम पर ही कल्पों का नामकरण कियागया है वहाँ से सर्वप्रथम इनकी चट्टानों की खोज की गई है। प्रत्येक को युगों (Epoch) में विभाजित किया गया है। इनके नामकरण का मुख्य आधार युग विशेष के जीवों की प्राचीनता या विशिष्टतायें हैं।

6. **प्राणि-भौगोलिक वितरण से प्रमाण** ((Evidences from Zoogeographical distributions) आधुनिक युग मेंपृथ्वी के विभिन्न भागों सेप्राणियोंके वितरण को प्राणी भौगोलिक वितरण कहते हैं। पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में प्राणियों की समानता के आधार पर 6 प्रमुख प्राणी भौगोलिक क्षेत्र या परिमंडल माने गये हैं -

1. **निआर्कटिक परिमंडल** (Nearctic Region). यह क्षेत्र उत्तरी अमेरिका से मेक्सिको के ढालू पठार तक का भाग है।
2. **पेलीआर्कटिक परिमंडल** (Palaearctic Region) इस क्षेत्र के अन्तर्गत हिमालय के उत्तर का एशिया, यूरोप और सहारा मरूस्थल के उत्तर में स्थित अफ्रीका का भाग रखा गया है।
3. **नियोट्रॉपिकल परिमंडल** (Neo-tropical Region) :इसमें केन्द्रीय औरदक्षिणी अमेरिका का क्षेत्रफल सम्मिलित है।
4. **ओरियन्टल परिमंडल** (Oriental Region) हिमालय के दक्षिण का एशियाई भाग ओरियन्टल परिमंडल है।
5. **इथोपियन परिमंडल** (Ethiopean Region) हिमालय का दक्षिण अफ्रीकी भाग इथोपियन परिमंडल के अन्तर्गत रखा गया है।
6. **आस्ट्रेलियन परिमंडल** (Australion Region) आस्ट्रेलिया और आस पास के द्वीप या टापू (islands) आस्ट्रेलिया परिमंडल का निर्माण करते हैं।

उपरोक्त 6 **प्राणि-भौगोलिक परिमंडलों** में अलग-अलग प्रकार के विशिष्ट वातावरण कारक और जन्तु पाये जाते हैं। परन्तु एक ही परिमंडल के विभिन्न भागों में वातावरण की विविधता के विपरित भी क्षेत्रीय प्राणियों में बहुत अधिक समानता पाई जाती है जिनके आधार पर सामूहिक रूप में परिमंडल विशेष के प्राणि-समुदाय (fauna) का निर्धारण किया गया है। किसी प्राणि-जाति का एक क्षेत्र में वितरण होना और दूसरे में न होना (अनुपस्थित) वातावरण की भिन्नता के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। परन्तु जब दो समान वातावरण वाले क्षेत्रों में प्राणी जातियाँ असमान हों, तब उद्रविकास के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से इस प्रकार के भौगोलिक वितरण का समुचित स्पष्टीकरण दे पाना असंभव है। नीचे दिये गये उदाहरण उद्रिकास के सिद्धान्त को प्रमाणित करते है।

यदि हम आस्ट्रेलियन परिमंडल के प्राणि-जगत को देखे तो **मोनीट्रीमेटा** और **मार्सूपीलिया** (कगारु) स्तनधारी वर्ग के दो ऐसे समूह है जो मात्र ऑस्ट्रेलिया में पाये जाते हैं। इस क्षेत्र के अन्य स्तनधारियों में कुछ चूहे और चमगादड़ों के ही नाम ज्ञात है। अन्य अनेकों जातियों के स्तनधारी जो अन्य परिमंडलों में पाये जाते हैं इस क्षेत्र में नहीं मिलते हैं। इस क्षेत्र के विशिष्ट प्राणियों के रूप में **मोनीट्रीमेटा** और **मार्सूपीलिया** का उद्रिकास प्राचीन स्तनधारियों के **पार्थक्य** (isolation) में

होने के कारण अन्य क्षेत्रों में संभव नहीं था। **यूथीरिया** के चमगादड़ उड़कर और चूहे अनेकों साधनों (जैसे उड़ ने वाले पक्षियों, नावों या लकड़ी से तैरते लट्ठों) पर चढ़कर पहुच गये होंगे। परन्तु अन्य स्तनधारियों के लिये यह संभव नहीं था। अत: आस्ट्रेलियन क्षेत्र का अन्य प्राकृतिक भौगोलिक क्षेत्रों से पार्थक्य इसकी क्षेत्रीय विशिष्टता वाले जन्तुओं का विकास करने में सहायक रहा है और स्थानीय प्राणियों का अन्यत्र वितरण भी इसी कारण से असंभव था।

नियोट्रोपीकल क्षेत्र के प्राणियों का समूह, आधुनिक और प्राचीन स्तनधारियों की एक विभिन्न मिश्रण प्रस्तुत करता है। प्राचीन कालीन (Primitive) जैसे प्राणियों में चींटीखोर (Ant - eater) **स्लॉथ** (Sloths), **आर्मडिलो** (Armadllos), मार्सूपीलिया अदि प्रमुख है। परन्तु आधुनिक स्तनधारियों में हिरण, बिल्लियाँ, भेड़िया और **लामा** (ऊट जैसा प्राणी) आदि सभी जन्तुओं का समूह निआर्कटिक (Nearctic) क्षेत्र (उत्तरी अमेरिका) में समानता दर्शाता है। इस समानता का स्पष्टीकरण उद्विकास सिद्धान्त से बड़ी सरलतापूर्वक किया जा सक्ता है। यह एक सत्य है कि इन दोनों भौगोलिक क्षेत्रों (नियोट्रापीकल या दक्षिणी अमेरिका और निआर्कटिक या अमेरिका) के मध्य प्राचीन युग में ' 'पनामा' ' नामक भूमि खण्ड सेतु (land bridge) था और तृतीय कल्प (Tertiary period) में यह सेतु समुद्र के नीचे डूब गया। परन्तु इस कल्प से पहले ही **क्रीटेसियस** (Cretaceous) कल्प में **आदिकालीन** (Primative) स्तनधारी उत्तरी अमेरिका से दक्षिण अमेरिका पहुंच गये थे जहाँ उनका पार्थक्य (Isolation) में उद्विकास होता रहा। पृथ्वी पर एक बार फिर वातावरण के परिवर्तन के फलस्वरूप समुद्र का स्तर नीचे चला गया और चतुर्थ कल्प के **प्लीस्टोसीन युग** (Plaestoceine eposch) में पनामा सेतू फिर से ऊपर आ गया अनेकों आधुनिक स्तनधारी दक्षिण अमेरिका में प्रदिप्त हो गये। परन्तु इस क्षेत्र के अधिकांश प्राचीन (आदिकालीन) स्तनधारी नवीन जातियों से संघर्ष नहीं कर पाये और लुप्त हो गये एवं क्यू ने रूपान्तरण कर लिया। इस प्रकार रूपान्तरित प्राचीन और नवीन स्तनधारियों का एक विचित्र मिश्रण होकर नियोट्रोपीकल क्षेत्र के विशिष्ट प्राणी समूह का विकास हुआ है।

इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों के प्राणियों के विशिष्ट समूहों का भौगोलिक वितरण भी उद्विकास के सिद्धान्त की ही पुष्टि करता है।

महाद्वीपी और महासागरीय द्वीपों से प्रमाण (Evidences from Oceanic Islands)

विश्व के विभिन्न महासागरों में दो प्रकार के द्वीप या टापू पाये जाते हैं। प्रथम प्रकार के महाद्वीपीय द्वीप प्राचीन काल में अपने मूल महाद्वीप से जुड़े हुए थे परन्तु कालान्तर में दोनों के मध्य जल भरने के कारण द्वीप और महाद्वीप दो अलग भागरें गे कट गये। इस श्रेणी के कुछ प्रमुख द्वीपों में **श्रीलंका, जावा, सुमात्रा, जापान** आदि के नाम हम सभी जानते हैं। इन द्वीपों के विशिष्ट प्राणी अपने मूल महाद्वीप के समान होते हैं। श्रीलंका और भारतीय उपमहाढीप के **उभयचरी, रेप्टीलिया,' पक्षी** और **स्तनधारी** आदि सभी प्राणी एक समान है।

दूसरे प्रकार के महासागरीय द्वीपों की उत्पत्ति महासागरों के गहरे जल के नीचे अचानक ज्वालामुखी की विध्वंसात्मक प्रक्रिया से होती है जिसमें उबलता गर्म लावा निकलकर जल के मध्य जमा होकर द्वीप के रूप में प्रकट हो जाता है। दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट से लगभग 600 मील दूर गहरे महासागर में स्थित गेलेपेगोस (Galapagos) द्वीप समूह और विश्व प्रसिद्ध हवाई द्वीप समूह (Hawaian Islands) इसी श्रेणी के द्वीप है। इन द्वीप समूह के मूल प्राणी विश्व के अन्य भौगौलिक क्षेत्रों से बिछल अलग हैं। इन द्वीपों पर मूल रूप से समुद्री घेंघे

(snails), लिजार्ड, कटि और चमगादड़ के अतिरिक्त अनेकों प्रकार की पक्षी जातियाँ पाई जाती है। स्तनधारियों में कृत्रिम रूप से मानव ने चूहों को इन द्वीपों तक पहुंचा दिया है वास्तव में इन दीपों पर मात्र वही प्राणी उद्विकास कर सकते हैं जो जल के अवरोध को तैरकर या उड़कर पार करने मे सक्षम थे। कीटों जैसे छोटे प्राणियों की भी उनकी उड़ने की शक्ति के कारण सम्भव हुआ है। एक अन्य ध्यान देने योग्य बिन्दु यह है कि इन द्वीपों पर सभी प्राणियों का विकास पार्थक्य में होने के कारण इनमें विशिष्ट लक्षण पाये जाते हैं जो स्थानीय पारिस्थितिकी अनुकूलन के अनुरूप उद्विकास का महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

गैलेपेगोस द्वीप में पाई जाने वाली सभी चिड़िया अमेरिकन महाद्वीप की जातियों से समानता दर्शाती है। परन्तु अन्य द्वीपों की चिड़ियों की तुलना में ये बिछल भिन्न है। स्पष्ट है कि इनके पूर्वज अमेरिका महाद्वीप से उड़कर यहाँ आये और विकास की प्रक्रिया में अपनी मूल पूर्वज जातियों से कुछ लक्षणों से भिन्न हो गईं। इन चिड़ियों में सबसे अधिक रोचक उदाहरण डारविन की फिन्च (Darwin's finches) का है जो अपनी मूल अमेरिकन जातियों से चोंच के अतिरिक्त सभी गुणों में समानता दर्शाती है। इनकी चोंच की भिन्नता का स्पष्ट कारण है कि जब ये चिड़ियाँ यहाँ आकर बस गई तब इन द्रीपों पर अन्य पक्षियों और प्राणियों का अभाव था। अत: किसी भी क्षेत्र मे स्पर्धा नहीं थी। इस मुक्त वातावरण में प्रारम्भिक फिन्व चिड़ियाँ जनसंख्या वृद्धि के कारण द्वीप के अलग- अलग निलय पर रहने लगी और स्थानीय भोजन के अनुरूप अपनी चोंच में भी आवश्यक परिवर्तन कर लिये। इस प्रकार पार्थक्य और भोजन स्पर्धा के अभाव में इन चिड़ियों की चोंच भोजन की भिन्नता के अनुरूप अनुकूलन होते चले गये। मूल रूप से एक जाति की चिड़ियाँ चोंच की भिन्नता के कारण अनेकों जातियों या उपजातियों में विकसित हो गई। इन चिड़ियों के अनुकूलन विकरण (adaption radiation) ने डारविन की विचारधारा पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला था, इसीलिये इन्हें डारविन की फिन्च भी कहते हैं।

डारविन फिन्च के अध्ययन से यह स्वयं सिद्ध है कि **पार्थक्य** में भोजन की विविधताओं के कारण एक मूल जाति की चिड़ियाँ से अनेकों जातियों का विकास हुआ है। इसी प्रकार हवाई द्वीप पर **ड्रेपेनिडी कुल** (Family Drepanidae) की चिड़ियों में भी पार्थक्य, भोजन स्पर्धा अभाव और मुक्त वातावरण में जनसंख्या प्रसार से मात्र 50 लाख वर्ष के अल्प समय में अनेकों जातियों विकसित हो गई है।

13.3 आधुनिक जैव -वैज्ञानिक प्रमाण (Evidences from Modern Biology)

उद्विकास की धारणा काफी पुरानी है। अत: अधिकाँश प्रमाण भी पुराने अध्ययन के आधार पर दिये गये हैं। परन्तु जीव विज्ञान की अनेकों आधुनिक शाखाओं का विकास वर्तमान शताब्दी में हुआ है, और नवीन खोजों उद्विकास के सिद्धान्त को ओर अधिक सुविधापूर्वक प्रमाणित किया हैं।

13.3.1 जैव रासायनिक प्रमाण (Evidences from Biochemistry)

(अ) जीवद्रव्य (Protoplasm) की रासायनिक रचना से प्रमाण: बाह्य रूप में विभिन्न वनस्पतियों और जन्तु एक दूसरे से बिछल अलग दिखाई पड़ते हैं। किसी पौधे से सामान्य प्राणी की तुलना साधारण मनुष्य के लिये आश्चर्य की बात है। परन्तु सभी वनस्पति और प्राणी जीवन का भौतिक

आधार जीवद्रव्य ही है। एक **बेक्टीरिया, प्रोटोजोआ** या **शैवाल, कवक**, विशाल वृक्ष, मक्खी या हाथी देखने पर असाधारण रूप से भिन्न हैं परन्तु सभी की कोशिका में जीवद्रव्य भरा रहता है जिसकी जीव रासायनिक रचना भी समान होती है। प्रत्येक जीवधारी का जीव द्रव्य मुख्यत: **जल, प्रोटीन्स, वसा** और **कार्बोहाइड्रेट्स** से निर्मित होता है। सभी प्रोटीन C, H, O, N, S और P से वसा और कार्बोहाइड्रेट्स C, H और O से एवं जल H और O से बने होते हैं। यद्यपि एक बेक्टीरिया, शैवाल या हाथी का (प्रोटोप्लाज्म) जीव द्रव्य एकदम समान नहीं होगा परन्तु उनकी मूलभूत रचना उपरोक्त चारों पदार्थों से ही होती है। थोड़ा बहुत अन्तर मात्र शारीरिक कार्यिकी पारिस्थितिकी अनुकूलन के कारण होता है।

(ब) गुणसूत्र की रासायनिक रचना (Chemical compostion of chromosomes) सै प्रमाण गुणसूत्रों की रासायनिक रचना अद्भुत रूप में सभी जीवधारियों में समान है। छोटे रो लेकर बड़े सभी जीवों के गुणसूत्र मूल रूप से **न्यूक्लीक अम्ल** (DNA एवं RNA) और **प्रोटीन्स** (हिस्टोन्स एवं प्रोटाअमीन्स) रो बने होते हैं, इसके अतिरिक्त इन रासायनिक पदार्थों के अणु (MOLECULES) सभी जीवों के गुणसूत्र में एक समान योजना से क्रमबद्ध रहते हैं। इस प्रकार की समान रासायनिक रचना और क्रम यह प्रमाणित करते हैं कि सभी जीवधारियों की उत्पत्ति क्रमबद्ध रूप में समान पूर्वजों से हुई है।

(स) एन्जाइम की समानता से प्रमाण - अनेकों प्राणी और वनस्पति में एकदम समान एन्जाइम्स (enzymes) पाये जाते हैं। सभी पर्णहरित हरे पौधों में **प्रकाश-संश्लेषण** (photosynthesis) प्रक्रिया को संचालित करने के लिये समान प्रकार के एन्जाइम उपयोग किये जाते हैं इसी प्रकार स्पंज (sponges) से लेकर स्तनधारी (mammals) तक सभी प्राणियों में ट्रिपसिन और अमायलेज (trypsin & amylase) नामक एन्जाइम पाये जाते हैं जिनकी कार्यविधि सभी में समान प्रकार की है। इसी प्रकार अन्य अनेकों समान एन्जाइम भी पाये जाते हैं। एन्जाइम की सहायता भी यही इंगित करती है कि इन जीवों का उद्गम समान प्रकार के पूर्वजों से हुआ है।

(द) हारमोन्स (Harmones) की समानता रो प्रमाण - ये तो आप जानते ही हैं कि कशेरूकी वर्ग के जन्तुओं में अनेकों **अन्त:स्रावी ग्रन्थियो** (Endocrine glands) से विशिष्ट रासायनिक द्रव्य निकलते हैं जिन्हें हारमोन्स कहते हैं। प्रत्येक हारमोन का विशिष्ट कार्य होता है। सभी **कशेरूकी** (vertebrates) वर्ग के जन्तुओं के सभी हारमोन्स समान होते हैं और उनके कार्य और प्रभाव एकदम समान होते है। इसी कारण **थायराक्सिन** हारमोन्स की कमी से मेंढक में उचित विकास और वृद्धि की मंद गति को किसी भी स्तनपायी के **थायराक्सिन** से सुधारा जा सकता है। मछलियों. से निकालकर गाय भैंसों में **पिटोसीन** जन्तुओं के हारमोन्स की समानता से यह स्वयं सिद्ध है कि इन सब का उद्गम समान जीवों से हुआ है।

(इ) तुलनात्मक सीरम विज्ञान (comparative Serology) से प्रमाण : आधुनिक **रूधिर विज्ञान** (serology) से उद्विकास सिद्धान्त को प्रमाणित करने के साथ-साथ विभिन्न प्राणियों के पूर्वजों से उनके समबंधों में निकटता अथवा दूरी का भी पता लगाया जाता है। जब किसी जन्तु के रुधिर में कोई **बाहरी** प्रोटीन (foreign protein) प्रविष्ट होता है तब **प्रतिरक्षी** (antibodies) उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार के बाहरी प्रोटीन को प्रतिजन (antigen) कहते हैं। प्रतिरक्षी और प्रतिजन के मिश्रण को प्रतिरक्षी रक्तद्रव्य (antiserum) कहते हैं। प्रतिरक्षी और प्रतिजन पर आधारित परीक्षण को अवक्षेपी परीक्षण (precipitation test) कहते हैं।

यदि हम मानव के रुधिर को **शशक** (rabbit) के रक्त में प्रविष्ट करा दें तो तब शशक के प्रतिरक्षित रुधिर में मानव के विरुद्ध प्रतिरक्षी होंगे अर्थात् शशक में प्रतिरक्षी रक्तद्रव्य बन जायेगा। प्रतिरक्षी रुधिर से अन्य प्राणियों के रुधिर की प्रतिजन द्वारा प्रक्रिया करा कर विभिन्न प्राणियों से मानव के उद्रिकासीय सम्बंधों का अनुमान लगाया जाता है।

उपरोक्त प्रतिरक्षी रुधिर को चार परखनलियो में समान मात्रा में डाल कर अलग - अलग रख देते हैं। अब परखनली नम्बर 1, 2, 3 और 4 में क्रमश: **मानव, चिपेन्सी, बखून** और **श्वान** (human,chimpanzi,bobbon,and dog) का रक्त द्रव्य (serum) समान मात्रा में मिला दें, तब हम देखते हैं कि परखनली नम्बर 1 और 2 में (मानव और चिम्पेंजी) लगभग समान मात्रा में अवक्षेप (precipate) बनता है। परखनली नम्बर 3 (बखून - बंदर की एक जाति) में अवक्षेप बनता तो है परन्तु कम तथा तुलनात्मक नम्बर 4 (श्वान) में कोई अवक्षेप नहीं बनता है।

उपरोक्त परीक्षण से स्पष्ट है कि मानव और चिम्पेंजी का रक्त लगभग एक समान रासायनिक और जैविक गुण दर्शाता है। अन्य शब्दों में उद्विकास प्रक्रिया में चिम्पेंजी मानव का निकटतम पूर्वज है। बजून के रक्त दव्य से अवक्षेप की कम मात्रा मानव से दूर का सम्बंध बताती है। परन्तु श्वान के रक्तद्रव्य में अवक्षेप यह सिद्ध करता है कि मानव और श्वान के रक्त में कोई निकटता नहीं है क्योंकि उद्विकास में दोनों के वंशज या पूर्वज अलग - अलग धाराओं से विकसित हुए होंगे।

यदि हम इसी प्रकार **प्राइमेट** (Primate) वर्ग के विभिन्न मानवाकार एश्वेपोड बन्दर, **प्राचीन विश्व बन्दर** (Old वर्ल्ड monkey) **नवीन विश्व बन्दर** (न्यू वर्ल्ड monkey) और इन सब के उद्गम स्रोत वंशज **लीमर** (Lemur) आदि पर तुलनात्मक अवक्षेपी परीक्षण करें तब हम देखते हैं कि मानव से लेकर लीमर तक क्रमिक रूप में अवक्षेप की मात्रा निरन्तर घटती जाती है। अर्थात् मानव का रक्त सबसे अधिक एन्धोपोड, उससे कुछ कम प्राचीन विश्व बंदर, उससे भी कम नवीन विश्व बदर या सबसे कम निकटता लीमर से दर्शाता है। इस आधार पर स्पष्ट है कि उद्विकास में लीमर से पहले नवीन विश्व बंदर और उनसे क्रमश: प्राचीन विश्व बंदर तथा **एन्थोपोड्स** का विकास हुआ। अन्त में एंथ्रोपोड्स से ही मानव का विकास हुआ है।

अवक्षेपी परीक्षण से प्राप्त परिणामों को उद्विकास के अतिरिक्त किसी अन्य सिद्धान्त से स्पष्ट नहीं किया जा सकता है।

13.3.2 तुलनात्मक कार्यिकी से प्रमाण (Evidence from Comparative Physiology)

यदि हम अमीबा, झींगा मछली, मेड़ क, चिडि याँ, हाथी और मानव आदि प्राणियों की पाचन, उत्सर्जन अथवा श्वसन आदि क्रियाओं के बारे में विचार करें, तब बड़ अटपटा सा लगता है। परन्तु सभी प्राणियों की विभिन्न जैविक क्रियाओं का कार्यिकी सिद्धान्त अद्भुत रूप से एकसमान है। उदाहरण के लिये अमीबा से लेकर मानव तक पाचन क्रिया का प्रारम्भ पहले अप्लीय माध्यम से होता है तत्पश्चात् क्षारीय माध्यम से अंतिम चरण सम्पन्न होता है। अमीबा में अम्ल और क्षार का रिसाव **खाद्य- कुण्डिका** (food vacuole) में क्रमिक रूप से होता है परन्तु उपरोक्त अन्य प्राणियों में अम्स का रिसाव अमाशय की विशिष्ट कोशिकाओं से होता है और **क्षारीय रिसाव** यकृ प्रान्त से होता है। सभी जीवों में समान प्रकार के एन्जाइम अम्लीय और क्षारीय माध्यम में क्रियाशील होकर जटिल शर्करा को सरल शर्करा, ग्लूकोज और ग्लाइकोजन में तोड़ देते हैं। इसी

प्रकार वसा को सरल **वसा अम्ल** (fatty acids) और **ग्लिसरॉल** (glycerol) एव प्रोटीन को अमीनों अम्ल आदि में पीरवर्तित करके अवशोषण योग्य बना देते हैं।

उपरोक्त प्राणियों में विचित्र विविधता के बावजूद भी अद्भुत पाचन कार्यिकी समानता है।

इसी प्रकार विभिन्न प्राणियों में उत्सर्जन में **नाइट्रोजनीय पदार्थ** (Nitro genous wastes) का त्याग किया जाता है। यद्यपि उत्सर्जन अंगों में व्यापक भिन्नता पाई जाती है तथापि कार्यिकी सिद्धान्त और विधि में अन्तर नहीं है। श्वसन की अनेकों विधि और और अंग है जैसे अमीबा में साधारण सतह, बिच्छु में बुक लंग (book lung) मछली में गलफड़े (gills), कॉकरोच में वायु नलिका (trachea) और मेंढ़क में त्वचा तथा फेफड़े (lung) से श्वसन क्रिया सम्पन्न होती है। ग्रन्तु इतनी विविधता के बाद भी सभी प्राणियों में कार्यिकी सिद्धान्त में कोई भेद नहीं है। सभी जीव वायुमंडल या जल से ऑक्सीजन ग्रहण करके कार्बन डाई ऑक्साइड का त्याग करते हैं।

कार्यिकीके उपपरोक्त उदाहरण व्यापक विविधता में भी एकरूपतादर्शातेहै। यह एक रूप को प्रमाणित करती हैकि सभी प्राणियोंका उद्गमएकसमान स्रोत से हुआ है और उद्विकास प्रक्रिया मेवातावरणीय अनुकूलन की आवश्यकताओं के अनुरूप शारीरिक या संगठनात्मक परिवर्तनों के कारण विविधता उत्पन्नहोती चली गईहै। कार्यकी एकरूपताकोकिसी अन्यसिद्धान्तसेस्पष्ट नहींकिया जा सकता है।

13.8.3 आनुवांशिकी से प्रमाण (Evidence from Gentics)

विभिन्न वनस्पति और प्राणियों की विविधता का आधार आनुवांशिकी ही है। समय-समय पर जीन्स और गुणसूत्रों में पुर्नसयोग आदि क्रियाओं से **उत्पीरवर्तन** (mutations) हो जातेहै। जिनसे जातिगत लक्षणों में विविधता उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार **संकरण** (hybridisation) में दो निकटवर्ती जातियों नई उपजाति अथवा जातिकी उत्पत्ति करती है। परन्तु संकरण सदैव एक ही वंश (Genus) की दो जातियों या उपजातियों में संभव होता है क्योंकि उनका आनुवांशिकी आधार या गुणसूत्रों में अधिक समानता पाई जाती है।

घोड़ा (Equs Cabalus) और गधा (E.abinus) एक ही वंश के दो जातियाँ है। यदि हम एक मादा घोड़ा (Mare) और एक नर गधे (Male ass) का संकरण (Hybridisation) करा दें तो एक तीसरी प्रकार का प्राणी खच्चर (Mule) उत्पन्न होता है। परन्तु खच्चर आपस में प्रजनन करके संतान उत्पत्ति नहीं कर सकते हैं। अर्थात् खचर उद्विकास का अंतिम और अवरूद्ध छोर है।

उपरोक्त उदाहरण में घोड़ी और गधे में प्रजनन प्रक्रिया संभव होती है क्योंकि दोनों प्राणी एक वंश से उत्पन्न दो जातियाँ हैं। अत: वंश स्तर तक उनका आनुवांशिकी आधार एकसमान होता है परन्तु उनसे उत्पन्न खच्चर में गुणसूत्र संख्या की असमानता के कारण और आगे प्रजनन असंभव हो जाता है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि वंश से ही विभिन्न जातियों का उद्विकास होता है ओर इसी कारण एक वंश की जातियों में ही संकरण संभव होता है।

प्रकृति में अनेको अन्य संकरणों के उदाहरण पाये जाते हैं। उदाहरण के लिये टोड (bufo) और **बतख** (ducks) की जातियों के अतिरिक्त रूई (cotton) गेहूं तम्बाकू आलू आदि अनेकों वनस्पतियों में भी संकरण से अनेकों उपजातियाँ और जातियों का विकास हुआ है।

प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों प्रकार संक्रमण उद्रिकास सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं।

बोध प्रश्न (Self Assessment Questions)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मनुष्यका एक अवशेषी अंग हैं
   (अ) वर्मीकार्म एपेण्डिक्स
   (ब) पीयूष प्रान्त
   (स) सिबेशियस ग्रंथिया
   (द) कर्ण पल्लव
2. समजात अंगों की होती है -
   (अ) असमान उत्पत्ति एवं कार्य
   (ब) असमान उत्पत्ति परन्तु समान कार्य
   (स) समान उत्पत्ति एवं समान अथवा असमान कार्य
   (द) असमान उत्पत्ति एवं संरचना
3. संरचनाओं के कौन से सैट में केवल समरूप अंग हैं.
   (अ) चमगादड़, पक्षी तथा मधुमक्खी के पंख
   (ब) मानव, बन्दर व कंगारू के हाथ
   (स) कॉकरोच, मच्छरव मधुमक्खी के मैन्दिबल्स
   (द) घोड़े, टिड्डी व चमगादड़ के पश्च पाद
4. समरूप अंग होते हैं -
   (अ) उत्पत्ति में समान, कार्य मेंभिन्न
   (ब) उत्पत्ति में भिन्न, कार्य मेंसमान
   (स) उत्पत्ति में एवं कार्य मेंदोनो में समान
   (द) उत्पत्ति एवं कार्यदोनो मेंभिन्न
5. इनमें कौन सा संयोजक जन्तु हैं :
   (अ) इक्थिओफिस
   (ब) पेरीपेदस
   (स) गधा
   (द) कंगारू

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये

1. किसी जन्तु अथवा पौधे के शरीर के शेष चिन्ह जो प्राकृतिक कारणों द्वारा संचित रुप में से प्राकृतिक चट्टानों में पाये जाते हैं। उन्हें ..... कहते हैं।
2. सन् 1987 में वेगनर (Wegner) ने जर्मनी में जीवाश्म ..... को खोजा।
3. विभिन्न वनस्पति एवं जन्तुओं की विविधता का आधार ..... है।
4. मोनोट्रिमेटा और मार्सूपीलिया स्तनधारियों वर्ग के ऐसे समूह हैं जो क्येल ..... में पाये जाते है।
5. .... एम्फ़िबिया एवं सरिसृपों के मध्य कड़ी है।

13.4 सारांश (Summary)

क्रमबद्ध परिवर्तनों की जिस प्रक्रिया द्वारा वर्तमान पौधे व प्राणियों की विभिन्न जातियाँ पृथ्वी पर बहुत पहले से उपस्थित जातियों से विकसित हुई **जैविक उद्विकास** (Organic evolution) कहते हैं। कई प्रमाण यह स्पष्ट करने के लिये प्रतिपादित किये जा चुके हैं कि जैविक विकास हुआ है और हो रहा है, यद्यपि यह एक बहुत धीमी प्रक्रिया है।

विभिन्न जैव वैज्ञानिक स्रोतों और क्षेत्रों से अनेकों महत्वपूर्ण प्रमाणों से हम उद्विकास प्रक्रिया को प्रमाणित करते हैं। विभिन्न प्रमाण (Evidences) निम्न दो मुख्य समूह में रखे जा सकते हैं

परम्परागत जैव वैज्ञानिक प्रमाण : वर्गीकरण से प्रमाण, तुलनात्मक शरीर रचना से प्रमाण, तुलनात्मक भ्रौणिकी से प्रमाण, संयोजी प्राणी से प्रमाण, जीवाश्म, भू-वैज्ञानिक वितरण और समय स्केल से प्रमाण एवं प्राणि भूगोलीय वितरण प्रमाण।

आधुनिक जैव-वैज्ञानिक प्रमाण : जीव-रसायनिक प्रमाण, तुलनात्मक कार्यकी प्रमाण एवं आनुवांशिकी प्रमाण।

जीव विज्ञान की अनेकों आधुनिक शाखाओं का विकास वर्तमान शताब्दी में हुआ है और नवीन खोजों ने उद्विकास के सिद्धान्त को ओर अधिक सुविधापूर्वक प्रमाणित किया है।

13.5 शब्दावली (Glossary)

अग्रपाद	Fore limb
कर्ण पेशियाँ	Ear - muscles
कोश भित्ति	Cell wall
फोसिलियम	Fossilium
जीवाश्मीकरण	Fossilization
जैविक उद्विकास	Organic evolution
तंत्रिका रखु	Nerve cord
समजात संरचनायें	Homologous structures
अभिबिन्दुय उद्विकास	Convergent evolution
कर्ण पेशियाँ	Ear - muscles
पुनरावर्तन सिद्धान्त	Recapitulation Theory of von Bear
ग्रसनी-चापें	Visceral arches
क्लोम छिद्र	Gill-slits
जीवाश्मीकरण	Fossilization
अश्मीकरण	Pertrification
महाकल्पों	Era
कल्पों	Period
समुदाय	Fauna
पार्थक्या	solation

अन्त : स्रावि ग्रंथियो	Endocrine glands
खच्चर	Mule

13.6 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली एवं भाटिया - प्राणि विज्ञान, **प्राणी विविधता तथा उद्विकास,** रमेश बुक डिपो, जयपुर - दिल्ली
2. तोमर एवं सिंह - जनरल **बॉयोलॉजी** - **इवोल्यूशन, डिस्ट्रीब्यूशन** एंड **पेलेन्टोलॉजी**, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ

13.7 बोध प्रश्नो के उत्तर (Answer to self assessment)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. (अ) 2. (स) 3. (अ) 4. (ब) 5. (ब)

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. जीवाश्म
2. आर्कियोप्टेरिक्स
3. आनुवांशिकी
4. ऑस्ट्रेलिया
5. सीमोरिया

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. जैव विकास का क्या अर्थ हैं। इसकी पुष्टि में तुलनात्मक रचना व तुलनात्मक शरीर क्रिया विज्ञान के प्रमाणों का वर्णन कीजिये।
2. अवशेषी अंगों भ्रौणिकी से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर जैव -विकास को प्रमाणित कीजिये।
3. "व्यक्तिवृत्त मे जातिवृत्त की पुनरावृत्ति " ("Ontogeny repeats phylogeny") इस कथन की पुष्टि कीजिये।
4. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये
   (i) अवशेषी अंग
   (ii) समरूप और समजात अंग
   (iii) प्राणी भौगोलिक वितरण
   (iv) आर्कियोप्टैरिक्स
   (v) जीवाश्म निर्माण

इकाई 14: विभिन्नताऐं. पार्थक्य, अनुकूलन (Variations, Isolation, Adaptations)

इकाई की रूपरेखा (Out line of Unit)

14.0 उद्देश्य (Objectives)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

14.2 विभिन्नताऐ (Variations)

- 14.2.1 विभिन्नताओं के प्रकार (Types of Variations)
- 14.2.2 विभिन्नताओं के कारण (Sources for Variations)
- 14.4.3 विभिन्नताओं का कोशिकीय या आनुवंशिक आधार (Cellular and Genetic Basis of Variations)

14.3 पार्थक्य (Isolation)

- 14.3.1 पार्थक्य की क्रिया विधियाँ (Mechanisms of Isolation)
- 14.3.2 जननिक पार्थक्य का उद्भव (Origin of Reproduction Isolation)
- 14.3.3 पार्थक्य का उद्विकासीय महत्व (Role of Isolation in Evolution)

14.4 अनुकूलन (Adaption)

- 14.4.1 अनुकूलन के प्रकार (Kinds of Adaptation)
- 14.4.2 अनुकूलन एवं उद्विकास (Adaptation and Evolution)

14.5 सारांश (Summary)

14.6 शब्दावली (Glossary)

14.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to Self-assessment Questions)

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

14.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको ये बतलाना है कि प्राणियों में विविधता या विभिन्नताऐं किन प्रकारों की पाई जाती है तथा वे कौन सेकारण है, जिनसे ये विभिन्नताएँ उत्पन्न होती हैं। इसी के साथ इकाई के अगले भाग में पार्थक्य एवं अनुकूलताओ के बारे में भी बताया गया है जो आपको जातिउद्भवन एवं उद्विकास को समझने में सहायता प्रदान करेगी।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

इकाई को विभिन्नताओं, पार्थक्य तथा अनुकूलन के बारे में वर्णित करते हुऐ तीन मुख्य भागों में बांटा गया है। प्रत्येक भाग को पढतेहुऐ आपको उद्विकासम्ध प्रक्रिया समझाईगई है। उद्विकास में आवश्यक बिन्दु जाति-उद्भवन है, जो कि प्राणियों में वातावरणीय अनुकूलनों से उत्पन्न होने वाली विभिन्नताओं तथा फिर धीरे- धीरे अपनी ही जाति से पार्थक्य या अलग हो जाने के कारण होता है। इकाई के प्रत्येक भाग के अंत में बोध प्रश्न दिये गऐ है, जिससे आपको स्वयं को जाचने का मौका मिलेगा।

14.2 विभिन्नताएँ (Variations)

एक ही जाति के सदस्यों को उनमें पाई जाने वाली भिन्नताओं के कारण ही पहचाना जा सकता है। यहां तक कि एक ही माता-पिता के सभी बच्चे भी समान नहीं होते हैं। निकट सम्बन्धी जीवों में पाये जाने वाले ये अन्तर विभिन्नताएं कहलाते हैं। विभिन्नताएं उद्धविकास के लिए आवश्यक है।

14.2.1 विभिन्नताओं के प्रकार (Types of Variations)

i. सतत् तथा विचल विभिन्नताएँ
ii. दैहिक तथा जननीय विभिन्नताएँ
iii. गणनीय तथा परिमाणात्मक विभिन्नताएं

i. सतत तथा विचल विभिन्नताएँ

ऐसी विभिन्नताएं जो औसत के दोनों ओर निरंतर रूप से विचलित होती रहती है। इन्हें सतत् विभिन्नताएं कहते हैं। क्योंकि सतत् विभिन्नता घटती- बढ़ ती रहती है, अत: ये धनात्मक एवं ऋणात्मक विभिन्नताएँ भी कहलाती है।

डार्विन के अनुसार सूक्ष्मविभिन्नताओ के पीढ़ी-दर- पीढ़ी एकत्रीकरण से नई जाति का उद्भवन होता है। असंतत् विभिन्नताएँ जीवों में अचानक ही उत्पन्न होती है व औसत से इस का विचलन अत्यधिक होता है अत: ये परिवर्तन म्यूटेशन भी कहलाते हैं, उदाहरण मनुष्य के हाथ पैरों में 6 अंगुलियों का होना, बड़े सींग कान होना। ह्यूगो डी वरीज के अनुसार ये विभिन्नताएं जाति के उद्भव एवं विकास में महत्वपूर्ण होती है।

ii. दैहिक एवं जननीय विभिन्नताएं

एक जीव द्वारा अपने जीवन काल में अर्जित की गयी विभिन्नताओं को कायिक विभिन्नताएँ या उपार्जित विभिन्नताएँ कहते हैं। ये विभिन्नताएं माता-पिता से संतान में नहीं पहुंचती है वरन् उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाती है।

एथलीट की विकसित मांसपेशियाँ, चीनी महिलाओं के पैरों का छोटा होना, दुर्घटनावश किसी का कटा हुआ हाथ या पाँव।

जनन कोशिकाओं या जनन द्रव्य में भिन्नताओं के कारण उत्पन्न होने वाली विभिन्नताओं को जननीय ब्लास्टोजेनिक विभिन्नताएँ कहते हैं। यह विभिन्नताएँ आनुवंशिक होती है व पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानान्तरित होती है।

iii. गणनीय तथा गुणात्मक विभिन्नताएँ

जीवधारियों में अंगों की संख्या की पुनरावृत्ति से उत्पन्न विभिन्ताएँ गणनीय विभिन्नताएँ कहलाती है। उदाहरणार्थ हाथ या पैरों मे पाँच के स्थान पर छ: अगुलियों का पाया जाना, मनुष्य में 12 के स्थान पर 13 पसलियों की उपस्थिति तथा सितारा मछली में पाँच के स्थान पर छ: भुजाओं का पाया जाना इत्यादि।

गुणात्मक विभिन्नताएँ. ऐसी विभिन्नताएँ जिन्हें संरचनात्मक भिन्नताएँ कहते हैं। उदाहरण मनुष्य की लम्बाई, मनुष्य में नेत्रों की आकृति व रंग, मनुष्य के नाक व कान की आकृति, पौधों की लम्बाई, पौधो की पत्तियाँ इत्यादि के रूप एवं रंग में भिन्नताएँ।

14.2.2 विभिन्नताओं के कारण (Sources for Variations)

कायिक विभिन्नताओं का उद्भवन मुख्यतया वातावरणीय कारकों के द्वारा होता है इसके विपरीत जननीय विभिन्नताएँ आनुवंशिकता में भिन्नता के कारण होती है।

वातावरणीय कारकों में प्रकाश ताप एवं पोषण इत्यादि प्रमुख हैं। अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों से उत्पन्न हॉरमोन जीवों के वर्धन एवं विभेदन को प्रभावित करते हैं तथा इन क्रियाओं का नियमन भी करते है। जैसे वृद्धि हॉरमोन की कमी से बौनापन आ जाता है।

14.4.3 विभिन्नताओं का कोशिकीय या आनुवंशिक आधार

(Cellular and Genetic Basis of Variations)

विभिन्नताओं के आनुवंशिक आधार को निम्न तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

i. गुणसूत्रीय विपथन
ii. गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन
iii. बिन्दु उत्परिवर्तन

i. गुणसूत्रीय विपथन

गुणसूत्रों पर जीन्स पाये जाते हैं। जब गुणसूत्र पर जीन्स की संख्या में परिवर्तन अथवा क्रम में परिवर्तन होता है तो इसे गुण सूत्रीय विपथन कहते हैं।

(a) **न्यूनता** (Deficiency or deletion): गुणसूत्र का कोई भाग किसी कारणवश टूटकर पृथक् हो जाता है तो जीन्स की संख्या में कमी हो जाती है इसे न्यूनता कहते हैं।

(b) **द्विगुणन** (Duplication) : द्विगुणन के अन्तर्गत कोई जीन अथवा जीन समूह एक गुणसूत्र में दो बार (आवर्तित) होता है। जीन्स के इन अतिरिक्त समूहों को "repeat" कहते है।

(c) **स्थानान्तरण** (Translation) जब दो असमजात गुणसूत्रों के बीच जीन्स का आदान- प्रदान होता है तो इसे ट्रान्सलोकेशन कहते हैं। स्थानान्तरण द्वारा नयी जातियों का विकास होता है।

(d) **प्रतिलोमीकरण** (Inversion) जब एक ही गुण सूत्र पर स्थित जीन्स 180^0 पर घूर्णन करके अपने विन्यास में परिवर्तन कर लेते हैं तो इसे इन्वर्जन कहते है।

ii. गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन

गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन को निम्न दो श्रेणियों में अध्ययन किया जा सकता है।

(a) **गुणसूत्रों के सम्पूर्ण सेट में परिवर्तन** गुणसूत्रों के सम्पूर्ण सेट में परिवर्तन को अणिता (euploidy) कहते हैं।

- **अगुणिता** (Haploidy) जब गुणसूत्रों का एक सेट यानि (n) नम्बर ही पाया जाता है इसे अगुणिता कहते हैं, सामान्यतया यह स्थिति युग्मको में पाई जाती है।
- **बहुगुणिता** (Polyploidy) जब गुणसूत्रों के जोड़ो में दो से अधिक की वृद्धि होती है तो इसे बल्लणिता कहते हैं। जैसे त्रिगुणित (3n), चर्द्धणित (4n) पंचगुणित (5n) आदि।

(b) **गुणसूत्रों के एक सेट मे गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन :** गुणसूत्रों के एक सेट में से एक या एक से अधिक गुणईसूत्रों के संख्या में कमी या अधिकता को अशणिता (Aneuploidy) कहते हैं।

- **संख्या में कमी :** पूरे सेट में से एक गुणसूत्र की कमी होने पर मोमोसोमिक जीव बनते है। इसमें गुणसूत्रों की संख्या 2n - 1 होती है।
- **संख्या में वृद्धि :** जब सम्पूर्ण सेट में एक या दो गुणसूत्रों की संख्या में वृद्धि होती है तो इसे पोलीसोमी (Polysomy) कहते है, गुणसूत्रों की संख्या के अनुरूप इनको एकाधिसूत्री (Trisomic,2n + 1) तथा द्विअधि सूत्री (Tetrasomic 2n + 2) कहते है।

iii. बिन्दु परिवर्तन (Point Mutations)

जब जीन स्तर पर कोई परिवर्तन होता है तो इसे बिन्दु उत्परिवर्तन कहते हैं। अधिक स्तर पर प्रत्येक जीन DNA का एक भाग है तथा DNA अणु में न्यूक्लिओटाइडों का क्रम उसमें निहित सूचनाओं को निर्धारित करता है। किसी कारणवश इनमें विन्यास क्रम में परिवर्तन आ जानेपर जीन में उत्परिवर्तन हो जाता है।

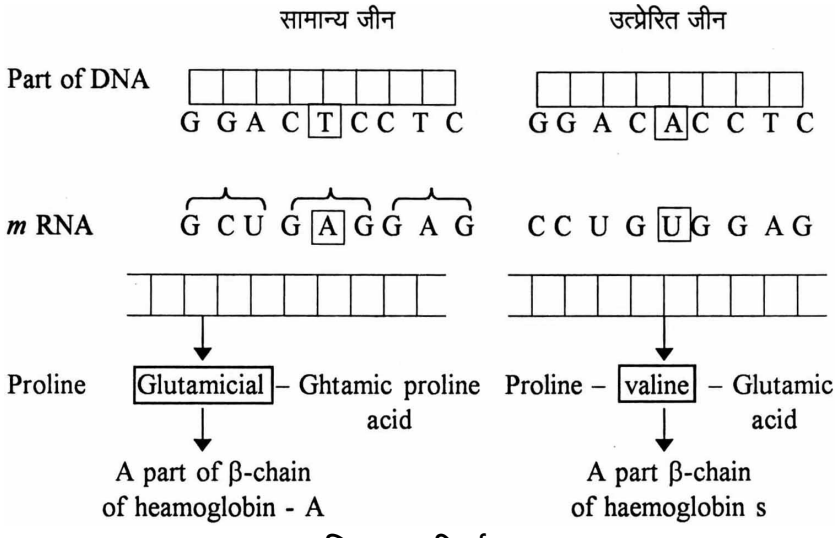

बिन्दु उत्परिवर्तन

यह दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

(a) **फ्रेम- शिपट उत्परिवर्तन** : यदि DNA के अणु में न्यक्लियोटाइड श्रृंखला में से एक न्यूक्लिओटाइड की वृद्धि होती है तो इससे उत्पन्न होने वाले उत्परिवर्तन को फ़ेमशिफ्ट उत्परिवर्तन कहते हैं। इसके परिणामस्वरूप m-RNA में परिवर्तन होता है। इस उत्परिवर्तन के कारण आनुवंशिक कूट में परिवर्तन आ जाता है।

(b) **प्रतिस्थापन उत्परिवर्तन** : जब एक न्यक्लियोटाइड किसी अन्य न्यूक्लियोटाइड द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है तो इसे प्रतिस्थापन उत्परिवर्तन कहते हैं।

- **संक्रमण** (Transition) : इस के अन्तर्गत एक प्यूरीन क्षार का दूसरे प्यूरीन क्षार से और पिरिमिडीन क्षार का दूसरे पिरिमिडीन क्षार से प्रतिस्थापन होता है।

- **अनुप्रस्थ प्रतिस्थापन** (Transversion) : यदि एक पॉलीन्यक्लियोटाइड शृंखला में एक प्यूरीन के स्थान पर पिरिमिडिन अथवा पिरिमिडिन के स्थान परसूनि फा प्रतिस्थापन होता है तो इसे ट्रान्सवर्जन (Transversion) कहते हैं।

बोध प्रश्न - 1

नोट : (i) हर प्रश्न का उत्तर उसके नीचे छोड़ी हुई जगह में दे।
(ii) अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गऐ उत्तरों से मिलाये।

(1) औसत के दोनों ओर निरंतर रूप से विचिलित होने वाली विभिन्नताऐ क्या कहलाती है।

.....
.....

(2) असतत्(विभिन्नताओं का कोई एक उदाहरण दो।

.....
.....

(3) किस प्रकार की विभिन्नताऐं जीव की मृत्यु के साथ ही खत्म हो जाती है।

.....
.....

(4) गणनीय तथा गुणात्मक विभिन्नताओं में क्या अन्तर है।

.....
.....

(5) गुणसूत्रों के एक सेट में एक या अधिक गुणसूत्र की कमी या अधिकता क्या कहलाती है।

.....
.....

(6) बिन्दु उत्परिवर्तन किसे कहते हैं।

.....
.....

(7) Transition और Transversion में अंतर लिखो

.....
.....

14.3 पार्थक्य (Isolation)

पृथक्करण क्रिया विधि का सर्वप्रथम विवरण 1937 में डोब्जेन्स्की (Dobzhansky) द्वारा दिया गया। प्रत्येक प्रजाति की अपनी एक पहचान (identity) होती है। जाति की पहचान को बनाये रखने के लिए निकट सम्बन्धी जातियों के बीच संकरण को रोका जाना आवश्यक है इस निकट सम्बन्धी जातियों के बीच संकरण को अवरोधित करने का कार्य पृथक्करण क्रियाविधि द्वारा किया जाता है। हक्सले के अनुसार पृथक्करण एक उद्विकासीय बल (evoluting force) है। अत:

पार्थक्य किसी एक जाति के जीवों को दो उपजातियों में अथवा एक उपजाति के जीवों को अपनी मूल जाति के जीवों से अलग करता है।

14.3.1 पार्थक्य की क्रिया विधियाँ (Mechanisms of Isolation)

पृथक्करण क्रिया विधियों को निम्न दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. **पूर्व संगम या अन्तः जातीय संकरण का निरोधन करने वाली क्रियाविधि (Pre - mating Factor or mechanism that prevent Intraspecific Isolation)**
   - i. भौगोलिक पार्थक्य (Geographical Isolation)
   - ii. दूरीगत पार्थक्य (Isolation due to distance)
   - iii. जलवायु-सम्बन्धी पार्थक्य (Climate Isolation)
   - iv. ऋतुनिष्ठ पार्थक्य (Seasonal Isolation)
   - v. पारिस्थितिकी पार्थक्य (Ecological Isolation)
   - vi. व्यवहारिक पार्थक्य (Ethological Isolation)
   - vii. यांत्रिक पार्थक्य (Mechanical Isolation)
   - viii. कार्यिकयि पार्थक्य (Physiological Isolation)
2. **संगमोत्तर कारक या अन्त : जातीय संकरण की पूर्ण सफलता का निरयेन करने वाली क्रिया विधि (Post making Factor or mechanism that reduce success of Interspecific Isolation)**
   - i. युग्मक मृतकता (Gamete Mortality)
   - ii. युग्मनज मृतकता (Zygote Mortality)
   - iii. संकर की निम्नता (Hybrid Inferiority)
   - iv. संकर बन्धता (Hybrid Sterility)

1. पूर्व संगम या अन्त:जातीय संकरण का निरोधन करने वाली क्रियाविधि : (Pre-mating Mechanism or Factors that prevent Intraspecific Isolation)

(1) भौगोलिक पार्थक्य (Geographical isolation): भौगोलिक कारकों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले पार्थक्य को भौगोलिक पार्थक्य कहते हैं। पर्वत शृंखलाएँ, नदियाँ, मरुस्थल वन, स्थल, सेतु, समुन्द्र इत्यादि विभिन्न भौगोलिक अवरोध है। जो जीवों को आपस में मिलने से रोकते है। जिससे वे छोटी - 2 इकाइयों या उपजातियों में विभाजित हो जाते है। हवाई द्वीप समूह में लैण्डस्नेल (Land snail) का वितरण इसका एक अच्छा उदाहरण है। द्वीप समूह में ज्वालामुखी ' घाटियाँ है परन्तु इन पर्वतों के ऊपरी भाग बंजर है इसलिए प्रत्येक घाटी मे अलग अलग प्रकार की वनस्पति तथा लैण्ड - स्नेल की अलग - अलग उपजातियाँ पाई जाती है।

ii. **दूरीगत पार्थक्य (Isolation due to distances)** कभी - कभी एक जाति के सदस्य एक बड़े भौगोलिक क्षेत्र में वितरित होते है तो एक दूसरे से मिल नहीं पाते है परिणामस्वरूप वे अलग - अलग उपजातियों में बंट जाते है।

iii. **जलवायु सम्बन्धी पार्थक्य** (Climatic Isolation) : जलवायु में भिन्नता होने के कारण एक भूभाग के जीव दूसरे भूभाग पर नहीं पहुँचते। इसके फलस्वरूप उनमें अपनी जलवायु के अनुकूल परिवर्तन होते रहते है।

तापक्रम, आर्द्रता, खनिज लवण, भूमि की संरचना में भिन्नता आदि कुछ मुख्य जलवायुकारक है। ये जीवों की उपापचय क्रियाओं को प्रभावित करते है जिनके फलस्वरूप शरीर क्रियात्मक विभिन्नताएं उत्पन्न होती है।

उत्तरी व दक्षिणी केप कॉड का समुद्री जल इसके उपयुक्त उदाहरण है केपकोड के उत्तर में ठंडा जल व दक्षिण में गर्म जल पाया जाता है। इन क्षेत्रों में रहने वाली जातियों के बीच इस जलवायु कारक के कारण पार्थक्य पाया जाता है।

iv. **ऋतुनिष्ठ पार्थक्य :** जन्तुओं और पीधो पर ऋतु एक निश्चित प्रभाव डालती है। अनेक जन्तु ऋतु प्रजनक होते है इसलिए यदि एक ही क्षेत्र में निवास करने वाली दो जातियों की प्रजनन ऋतु भिन्न होती है तो इनमें जनन सम्भव नहीं हो पाता है। इस प्रकार के अलगाव को ऋतुनिष्ठ पार्थक्य कहते हैं, उदाहरण **: बुफो अमेरिकन्स** (Bufo americans) व **बुफो फाउलेरी** (Bufo fawlari) एक ही भौगेलिक क्षेत्र में निवास करते है, लेकिन प्रकृति में इनके संकर (Hybrids) नहीं पाये जाते है। मुफो अमीरकन्स की जननकाल प्रारम्भिक वर्षा ऋतु जबकि **बुफो फाउलेरी** में जनन वर्षा ऋतु के अंतिम भाग में होता है इसके अतिरिक्त अनेक पक्षियों में ऋतुनिष्ठ पार्थक्य मिलता है।

v. **परिस्थितिकी पार्थक्य** (Ecological Isolation) जब एक सामान्य क्षेत्र में रहनेवाली दो जातियाँ भिन्न-भिन्न आवास अथवा परिस्थितिकी क्षेत्र में निवास करती है तो इनके बीच क्रॉस संभव नहीं होता है व इस प्रकार के पृथक्करण को पारिस्थितिकी पार्थक्य कहते है।

उदाहरण : उत्तरी अमेरिका के जलीय साँप की रेस (races) पायी जाती है एक अस्तीय जल में रहती है व दूसरी लवणीय जल में निवास करती है। प्रकृति में इनके संकर नहीं पाये जाते है।

vi. **व्यवहारिकयि पार्थक्य** (Ethlogical Isolation) जनन के लिए व्यवहार एक महत्वपूर्ण लक्षण है। एक ही जातिके नर व मादा के बीच ही जनन संभव हो पाता है क्योंकि इनके व्यवहार में एक निर्धारित तालमेल पाया जाता है। जनन के दौरान नरव मादा में पाया जाने वाला यह व्यवहार सगम व्यवहार (courtship behaviour) कहलाता है।

उदाहरण: मेढक टोड व पक्षियों में अनुरंजन के लिए विशिष्ट प्रकार की ध्वनियों का अत्यधिक महत्व है। इसी प्रकार वर्ण, वर्ण प्रतिबन्ध, शारीरिक रूप व गंध इत्यादि का भी अनुरंजन में अधिक महत्व है। अनेक जातियों के जीव अपने साथी को आकर्षित करने के लिए विशेष प्रकार की गंध उत्पन्न करते हे। इनमें स्तनधारियों का प्रमुख स्थान है।

vii. **यांत्रिक पार्थक्य** (Mechanical Isolation) अनेक प्राणियों में जननेन्द्रियों की जटिल संरचना के कारण मैथुन एवं शुक्राणुओं का संचारण नहीं होता। कीटों की जननेन्द्रियाँ ताले-कुँजी के सिद्धान्त पर बनी होती है। थोड़ासा भी अन्तर इन में मैथुन क्रिया को नही होने देता है। ड्रोसोफिला में अंतरजातीय संकरण के फलस्वरूप मादा मक्खी के जननांगों को क्षति पहुंचती है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

viii. **कार्यिकयि पार्थक्य** (Physiological Isolation) कुछ जातियों के जीवों में शरीर क्रियात्मक भिन्नताएँ उत्पन्न हो जाने के कारण उपजातियाँ बन जाती है, जो बाद में नई जातियाँ

बनाती है। ड्रोसोफिला की कुछ जातियों की मक्खियों में आपस में मैथुन नहीं हो पाता क्योंकि ड्रोसोफिला में मैथुन के पश्चात योनि की मुख्य झिल्ली फूल जाती है। अगर मैथुन एक ही जाति की मक्खियों में होता है तो कुछ घंटोबाद यह सूजन कम हो जाती है। किन्तु दो विभिन्न जातियों की मक्खियों में मैथुन होने पर सूजन कई दिन तक रहती है। अत: निषेचित अण्डे अण्ड-शोषज न होने के कारण मादा के शरीर में ही नष्ट हो जाते है।

2. संगमोत्तर कारक या अन्तर्जातीय संकरण की पूर्ण सफलता का निरोधन करने वाली क्रियाविधि (Post - Mating Factors or Mechanism that reduce full success of Interspecific Isolation)

i. **युग्मक मृतकता (Gamete mortality)** : एक जाति के आशु दूसरी जाति की मादाओं के जनन पथ या जनन अंगों में जीवित रहने में असमर्थ होते है। तथा जीवित रहने पर ये निषेचन करने में समर्थ नहीं होते।

ii. **युग्मनज मृतकता (Zygote mortality)** कभी-कभी निषेचन हो जाता है व युग्मनज का निर्माण हो जाता है लेकिन जाइगोट आगे परिवर्धन नहीं कर पाता है। इसे युग्मनज मृतकता कहते है. राना पाइपेन्स की दो भौगोलिक प्रजातियों के संकर जी।वेत नहीं रहते।

iii. **सकरनिम्नता** (Hybrid inferiority) : कभी-कभी अन्तरर्जातीय निषेचन सफल होने के बाद जाइगोट में परिवर्धन द्वारा संकरका निर्माण हो जाता है, लेकिन यह जीवित नहीं रह पाता है।

iv. **संकर बन्धता** (Hybrid sterility): कभी-कभी संकर (hybrid) जीवित रह जाते हैं लेकिन यह बन्धय होते है। घोड़े व गधे के बीच क्रोस के परिणाम स्वरूप खच्चर (mule) उत्पन्न होता है, जोकि बन्ध्य होता है। बंध्यता का मुख्य कारणयुग्मक जनन के दौरान होने वाले अर्धसूत्रीयविभाजन में समजात गुणसूत्रों का युग्म (pair) नहीं बनना है।

14.3.2 जननिक पार्थक्य का उद्भव (Origin of Reproductive Isolation)

जननीय पार्थक्य को समझाने के लिए दो संकल्पनाएँ प्रस्तुत की गई है

1. मूलर संकल्पना (Muller's views)

इस विचारधारा के अनुसार जब एक ही जाति की समष्टि भौगोलिक बाधा के कारण दो समष्टियों में विभक्त हो जाती है तो इसे एलोपेट्रिक समष्टियाँ कहते हैं। इसके बाद दोनों समष्टियाँ एक दूसरे से स्वतंत्र हो जाती है व इन दोनों पर भिन्न-भिन्न उद्ववविकासीय कारक कार्य करते है जैसे - पुनर्योजन, प्राकृतिकवरण, उत्परिवर्तन आदि। इस प्रकार दोनों समष्टियों के जीनपूल में अलग-अलग परिवर्तन होते हैं। इन दोनों में आनुवंशिक विविधता उत्पन्न हो जाती है।

2. डोब्झेन्सकी की विचारधारा (Dobzhansky's view)

इस विचारधारा का प्रतिपादन 1940 में डोब्झेन्सकी ने किया। इसके अनुसार जननीक पृथक्करण पूरक जीन सम्मिश्रण में परिवर्तन व प्राकृतिक वरण के कारण उत्पन्न होता है। इसके अनुसार संकर (hybrids) कम अनुकूलित होता है इसलिए या तो मर जाते है अथवा बध्य होते है। इस प्रकार संकर के विलोपित होने के साथ पैतृको के संकरण को प्रोत्साहित करने वाले जीन्स भी विलोपित हो जाते है। इस प्रकार प्राकृतिक वरण संकरणको निरुत्साहित करके दो निकट सम्बन्धी समष्टियों के बीच जननिक पृथक्करण उत्पन्न कर देता है।

14.3.3 पार्थक्य का उद्विकासीय महत्व (The role of isolation in evolution)

पृथक्करण जाति-उत्पत्ति के लिए एक प्रमुख उद्विकासीय बल है। इसकी सहायता से निम्न दो प्रकार से जाति उद्भवन होता है।

1. एलोपेट्रिक जाति-उद्भवन (Allopatric Specification)
2. सिम्पेट्रिक जाति-उद्भवन (Sympatric Specification)

1. एलोपेट्रिक जाति-उद्भवन (Allopatric Speciation)

एक जाति की जैव समष्टि असतत वितरण प्रदर्शित करती है। असतत वितरण के कारण यह उपसमूह में विभक्त हो जाती है एक ही जाति की समष्टि के उपसमूह एलोपेट्रिक समाच के रूप में जाने जाते है। यदि एलोपेट्रिक समष्टियाँ लम्बे समय तक पृथक्करण द्वारा अलग रहती हैं, तो इनमें जीनी-विविधता का विकास हो जाता है व यह नई जातियों में शरिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार के जाति-उद्भवन को एलोपेट्रिक जाति-उद्भवन कहते हैं।

2. सिम्पेट्रिक जाति उद्भवन (Sympatric Speciation)

समस्थानिक जाति का उद्भवन किसी जाति की समष्टि की विभिन्न इकाइयों की जीनी संरचना में अचानक ही उत्पन्न परिवर्तनों के कारण होता है, समष्टि जननीय रूप से पृथक दो या अधिक समष्टियों में पृथक हो जाती है, एक बार जननीय पार्थक्य में सुस्थापित होने के बाद प्रत्येक समष्टि समस्थानिक जातियों का निर्माण करती है।

बोध प्रश्न -

नोट : (i) हर प्रश्न का उत्तर उसके नीचे छोड़ी हुई जगह में दो।
(ii) अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गऐ उत्तरों से मिलाऐ।

(1) पृथ्यकरण क्रियाविधि का सर्वप्रथम विवरण किसने दिया?

.....

.....

(2) जलवायु सम्बन्धी पार्थक्य का एक उदाहरण दो।

.....

.....

(3) एक ही क्षैत्र में पाई जाने वाली दो जातियों की प्रजनन ऋतु भिन्न होने पर वे किस प्रकार पार्थक्य प्रदर्शित करेंगी?

.....

.....

(4) यांत्रिक पार्थक्य वाले किसी एक प्राणि का उदाहरण दो।

.....

.....

(5) दो जातियों के मध्य हुऐ क्रॉस के बाद बना संकर जीवित नहीं रह पाता ये किस प्रकार की संगमोत्तर कारक का उदाहरण है?

.....

.....

(6) जननिक पार्थक्य समझाने हेतु दी गई संकलपनाओ के नाम दो।

.....

.....

(7) एलोपेट्रक तथा सिम्पेट्रिक् जाति-उद्भवन में अंतर लिखी।

.....

.....

14.4 अनुकूलन (Adaption)

प्रत्येक प्राणी में स्वयं को अपने चारों और के वातावरण के अनुरूप ढालने की क्षमता पाई जाती है। प्रकृति में पाये जाने वाले सभी प्राणी अलग-अलग आवासीय स्थानों में रहते है जैसे - कुछ प्राणी जल में रहते है, कुछ स्थलीय होते है कुछ वृक्षों पर रहते है। प्रत्येक आवासीय स्थान की अपनी-अपनी विशेषताएं होती है तथा उन विशिष्टताओं के अनुरूप उस क्षेत्र में रहने वाले प्राणियों में ऐसे लक्षण पाये जाते है जो उन्हें उस आवासीय परिस्थिति मे रहने के अनुकूल बनाते है। अनुरून के फलस्वरूप जीवों तथा उसके वातावरण में सामजस्य स्थापित रहता है जैसे समस्त जलीय जीवों में तैरने के लिए शरीर नौकाकार तथा सुप्रवाही (stream-linked) होता है, इसी प्रकार हवा में उड़ने वाले प्राणियों का शरीर हल्का होता है तथा पंख होते है। अनुकूलनों का उद्विकास से गहरा सम्बन्ध है।

किसी भी विशिष्ट वातावरण में रहने के लिए प्राणी अपने में आकारिकीय एवं कार्यिकयि परिवर्तन उत्पन्न करता है, इन्हीं परिवर्तनों को अनुकूलन कहते हैं।

14.4.1 अनुकूलन के प्रकार (Kinds of Adaptation)

अनुकूलन निम्न चार श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते है

i. संरचनात्मक अनुकूलन (Structural Adaptation)
ii. कार्यिकयि अनुकूलन (Physiological adaptation)
iii. रक्षी अनुकूलन (Protective Adaptation)
iv. प्राणी साहचर्य अनुकूलन (Animal - association adaptations)

i. संरचनात्मक अनुकूलन (Structural Adaptations)

प्राणियों के शरीर में कुछ न कुछ शारीरिक संरचनात्मक परिवर्तन पाये जाते है। जो उसे उस विशिष्ट वातावरण में सफलतापूर्वक रहने के योग्य बनाते है। इस तरहके अनुरूपों को संरचनात्मक अनुकूलन कहते है। इनमें से कुछ निम्नलिखित है।

a. **धावक अनुकूलन** (Cursorial Adaptation) : ये अनुकूलन भूमि पर तेजी से दौड़ने के लिए जीवधारियों में हुए परिवर्तनों से सम्बन्धित है। इनमें पाद अगुलिचारी या खुर के रूप में विकसित होता है अगुलस्थियाँ अविकसित तथा संख्या में कम होती है। टांगों की पशियाँ शाक्तशाली हो जाती है। जैसे- घोड़ा, चीता।
b. **खननी अनुकूलन** (Fossorial Adaptations). गुफाओं तथा बिल बनाकर रहनेवाले जन्तु खनन प्राणी कहलाते है तथा इनकी रचनायें खनन अनुकूलन प्रदर्शित करती है। खनन प्राणियों

का शरीर अधिकतर लम्बा, पतला तथा रंगहीन होता है तथा इनके उपांग लम्बे एवं क्षीण होते हैं। आखे अल्प विकसित एवं कार्यहीन होती है। इनकी घ्राण शक्ति एवं स्पर्श क्षमता अत्यधिक विकसित होती है। इनके अग्रपाद बिल बनाने, खोदने के लिए उपयुक्त होते हैं।

c. **आरोहण अनुकुलन** (Scansorial Adaptations) : अनेक प्राणी जैसेछिपकली उर्ध्वाकर सतहों पर (दीवारों) पर चढ़ने के लिए अनुकूलित होती है। चमगादड़ पेड़ो पर लदकने के लिए तथा बन्दर वृक्षों पर लटकने व दौड़ने के लिए अनुकूलित होती है। कुछ प्राणियों की टांगे तथा पूँछ परिग्राही (Prechensile) प्रकार की होती है।

d. **जलीय अनुकूलन** (Aquatic adaptations) : प्रकृति में अनेक प्राणी जलीय आवास में रहते है, जल में रहने वाले प्राणियों का शरीर धारारेखित होता है जिससे जल के प्रति कम से कम प्रतिरोध उत्पन्न हो। त्वचा चिकनी होती है। सिर, शरीर एवं पूंछ पार्श्व सम्पीडीत होते हैं, गमन के लिए फिन्सया पेडल पाद पाये जाते हैं। मछलियों में श्वसन के लिए गिल्स पाये जाते है। जो जलीय श्वसन के लिए अनुकूलित होते है। तेजी से बहने वाली नदियों में रहने वाले जन्तुओं में चट्टानों या जलीय पौधों से चिपकने के लिए चूषक होते हैं।

e. **गहन सागर अनुकूलन** (Deep Sea Adaptations) : महासमुन्द्रों में रहने वाले अनेक प्राणी समुन्द्र की गहराई में पाये जाते है, वहाँ गहन अधंकार पाया जाता है। वहाँ का तापमान स्थिर रहता है। गहराई में जल धाराओं का अभाव होता है। ये प्राणी अत्यधिक दबाव के कारण पृष्ठ की तरफ चपटे होते है। अधिकांश प्राणियों में संदीप्तीशीलता (Bioluminescence) का गुण पाया जाता है। जिससे वे अपने शिकार को अपनी तरफ आकर्षित्त करते हैं।

f. **मरु अनुकूलन** (Desert Adaptation) : मरुस्थल में रहनेवाले प्राणी मुख्य रूप से जल की कमी, उच्च तापक्रम रेतीली आधियों से बचाव करने के लिए विशेषरूप से अनुकूलित होती है। कुछ प्राणी गूदेदार पादपों को खाकर ही जल प्राप्त करते है। मॉलोक की त्वचा जल अवशोषी होती है जो वातावरण मेंउपस्थित नमी को अवशोषितकर जल आपूर्तिकरते है। त्वचापर शल्क एवं कटिकाए तथा अपारगम्य आवरण पाया जाता है जो जलहानि को रोकता है, अधिकांश मरुस्थलीय प्राणी उत्सर्जी पदार्थों को सान्द्र अवस्था में उत्सर्जित करते है तथा जल हानि को रोकते है। अधिकांश प्राणी रात्रिचर होते है।

g. **उड्डयन अनुकूलन** (Aerial or Volant Adaptations). जो प्राणी वायु में उड़ने की क्षमता रखते है उड्डयन प्राणी कहलाते है। इन प्राणियों के शरीर पर "पर" (feathers) पाये जाते है। जो ढकने एवं उड़ने में सहायक होते है। अग्रपाद पंखों (wings) में स्थान्तरित हो जाते है जो उन्हें उड़ने की क्षमता प्रदान करते है। शक्तिशाली उड्डयन पेशियाँ पाई जाती है। चोच चिमटी की तरह कार्य करती है। शरीर का भार कम करने के लिए अस्थियाँ वातिल (pneumatic) होती है। अधिकांश कशेरुकाएं संगलित होती है जैसे वक्षीय (thoracic) कटि (Sacral) तथा पुच्छीय कशेरुकाएं पाइगोस्टाइल (pygostyle) के रूप में संगलित रहती है। फेफड़ों के अलावा वायुकोष (air sacs) पाये जाते है। इनमें द्विपादिक गमन पाया जाता है।

h. **परजीवी अनुकूलन** (Parasitic Adaptations) : परजीवी प्राणी आश्रय के लिए दूसरे प्राणियों पर निर्भर रहते है। यह सम्बन्ध परजीविता कहलाता है। परजीवी के शरीर में अनेक प्रकार के संरचनात्मक अनुकूलन उत्पन्न हो सकते है। अत: इन्हें परजीवी-अनुकूलन कहते है। सरलतम

शरीर में संरचना, गमनागो का अभाव, संवेदी अंगों एवं आहारनाल का अभाव तथा जनन अंगों का विशेषरूप से विकसित होना, जीवन चक्र का जटिल होना मुख्य अनुकूलन है।

ii. कार्यिकीय अनुकूलन (Physiological Adaptations)

कार्यिकी अनुकूलन संरचनात्मक अनुकूलनों से सम्बन्धित होते है। प्राणी जिस आवासीय परिक्षेत्र में निवास करता है उसमें अंगों की कार्यिकी उस रूप से अनुकूलित हो जाती है। उदाहरण के तीरपर पक्षियों में भार कम करने के लिए नाइट्रोजन युक्त उत्सर्जी पदार्थों को अरईक अन्त के रूप में त्यागा जाता है।

लवणीय जल में रहने वाले प्राणियोंमें आन्तरिक रसाकर्षण (Osmotic pressure) दाब को नियत्रित रखने के लिए रक्त में अरईया को रोककर सान्द्रता बढ़ाते हैं।

रेगिस्तानी आवास में रहने वाले प्राणियों के भोजन में वसा की मात्रा अधिक होती है। क्योंकि वसा के ऑक्सीकरण से अधिक ऊर्जा व जल मिलते है। इस तरह उपापचयी क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न जल शरीर में जल की कमी को पूरा करती हैं।

कार्यिकी अनुकूलनों के अन्तर्गत सभी स्वत: नियामक क्रियाएँ आती है जिन्हें प्राणी अपने जीवन काल में करता है जिससे परिवर्तित परिस्थितियों में सफलतापूर्वक जीवन यापन कर सके।

iii. रक्षी अनुकूलन (Protective Adaptations)

शत्रुओं से बचाव के लिए प्राणी अपने में जो अनुकूलन विकसित करता है उन्हें रक्षी अनुकूलन कहते है.

a. रंजन (Colouration)
b. अनुहरण (Mimicry)

a. रंजन (Colouration) शरीर का रंग किस प्रकार सुरक्षा में भूमिका निभाता है इसका अध्ययन निम्न प्रकार हो सकता है।
    - **गोपक रंजन** (Concealing Colouration) : कुछ प्राणियों के शरीर का रंग उसके वातावरण के अनुरूप होता है, ताकि वह दूर से अपने आपकों वातावरण में छिपा सके व आसानी से शत्रु को दिखाई न दे। उदाहरण के लिये ऊंट का रंग मिट्टी की तरह का होता है, ध्रुवीय भालू का रंग हिम की तरह सफेद होता है। जेबरा का रंग धारीदार होता है, बाघ का रंग धारीदार होता है ताकि घास में छिपकर शिकार को आसानी से पकड़ सकें।
    - **भयसूचक रंजन** (Warning colouration) : कुछ प्राणियों के रंग गहरे तथा चटकीले होते है और चेतावनी का कार्य करते है। अत: इस प्रकार के जन्तुओं का रंग काला, पीला होता है या उन पर इन रंगों के धब्बे या पट्टियाँ होती है, सम्भवतया वे विषैले होते है। यदि इन रंगों के धारक प्राणी भले ही खतरनाक न हो परन्तु रंगों की विशेषता के कारण शत्रु उन्हें छोड़ देता है। तथा इनकी स्वत: सुरक्षा हो जाती है जैसे प्रवाल सर्प (coral snake) तथा डेनास (Danais) नामक तितली।
    - **चेतावनी संकेत :** खतरे के समय प्राणी विभिन्न प्रकार के चेतावनी संकेत उत्पन्न करते है। खरगोश की सफेद पूँछ सिग्नल उत्पन्न करने का सूचक है। रेटल सांप चलते समय झुनझने के समान आवाज उत्पन्न करता है।

b. **अनुहरण (Mimicry).** सर्वप्रथम हेनरी वाल्टर बेटज ने अनुहरण सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। भिन्न कुलों के सदस्यों के बीच बाह्य दिखावट आकृति व रंग के सादृश्य को अनुहरण

(mimicry) कहते हैं। इसमें नकल या करने वाला प्राणी अनुहारक (mimic) तथा अनुहरण जिसकी नकल उतारी जाती है उसे model कहते है।

यह दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

- **रक्षी अनुहरण** रक्षी अनुहरण द्वारा अनुहारिक (mimic) किसी दूसरे जन्तु या प्राकृतिक वस्तु के रंग रूप या आकार का अनुहरण करता है जिससे शत्रु द्वारा आसानी से नहीं पहचाना जा सकता है।

  उदाहरण : पर्णाभकटि फाइलियम का शरीर एवं पाद पत्ती के समान चपटे होते हैं। इनका रग हरा होता है इन पर पीले रंग के धब्बे होते है जिससे किसी पत्ती पर कवक या डस्ट उगने का भ्रम होता है।

  दूसरा उदाहरण स्टिक इन्सेक्ट का है जो कि एक सूखी टहनी से मिलता-जुलता है। हेटेरेडॉन (Heterodon) वंश का अविषैला सर्प अपने सिर को चपटा करके कुकार मारता है और इस प्रकार विषैले सर्प की भाँति व्यवहार करता है।

  कुछ गोपक रचनाओं (Cryptic Structures) द्वारा भी तितलियाँ व कैटरपिलर शत्रु को धोखा देकर बचे रहते हैं। खतरे का आभास होने पर ये कटि इन धब्बों को प्रदर्शित करते हैं, जिससे भक्षी डर कर दूर भाग जाते है।

- **आक्रामक अनुहरण :** आकर्मक अनुहरण मांस भक्षी प्राणियों में मिलता है जिनकी सहायता से इन्हें शिकार पकड़ने में सहायता मिलती है।

  कुछ मकड़े रंग रूप में उन पुष्पों के समान होते है जिन पर वे वास करते है। इन फूलों में छिपकर ये अपनी शिकार को पकड़ते है।

  कुछ भक्षक शिकार को अपनी ओर आकर्षित करते है ओर स्वयं वातावरण में क़श्य रहता है। अमेरिका का हॉर्न मेंढ़क चुपचाप बैठकर अपने अग्रपाद की अंगुली को हिलाता है। छोटे अन्य प्राणी शिकार के भ्रम में जब इस पर लपकते है तो वे इसके द्वारा पकड़ लिए जाते है।

iv. प्राणि-साहचर्य अनुकूलन (Animal Associations)

किसी एक या विभिन्न समूहों के प्राणी एक दूसरे के साथ मिलकर रहते है। तथा सहकार्मिक सम्बन्ध दर्शाते है।

a. **सामाजिक अनुकूलन** (Social Adaptatins) : चीटियाँ, शहदकी मक्खियाँ तथा ततैया इत्यादि सामाजिक कटि है जो झुंड बनाकर रहते है। प्रत्येक झुड़ मे रानियाँ, ड्रोन तथा श्रमिक भी होते है।

b. **सहभोजी अनुकूलन** (Commensal Adaptations) : इस प्रकार के सम्बन्धों में दो अलग-अलग जातियों के प्राणियों के मध्य इस प्रकार का सम्बन्ध होता है सामान्यत: ये भोजन में एक दूसरे का सहयोग करते है, इस प्रकार के सम्बन्धों का उपयुक्त उदाहरण समुन्द्री एनीमोन हर्मिट केकेड़े के बीच होता है।

c. **सहजीवन** (Symbiosis) : इस प्रकार के सम्बन्धो मे विभिन्न जातियों के प्राणियों मे संबंध अत्यधिक घनिष्ठ होता है वे दोनों एक दूसरे के लिए लाभदायक होते है। इस प्रकार के सम्बन्धों को सहजीवन कहते है। उदाहरण के लिए कई प्राणियों की आहार नाल में अनेक जीवाणु पाए जाते है। दीमक की आहार नाल में कशाभिक प्रोटोजोआ।

d. **परजीविता** (Parasitic Adaptations) ; इस प्रकारके सम्बन्धों मेंदो अलग-अलग जाति के प्राणियों के बीच एक घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है जिसमें एक प्राणी लाभान्वित होता है तथा दूसरे को हानि होती है। इस प्रकार के सम्बन्ध को परजीविता कहते है।

14.4.2 अनुकूलन एवं उद्रिकास (Adaptations and Evolution)

प्रत्येक प्राणी को अपने जीवन में भोजन, सुरक्षा, जनन, उपापचय, जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है इन समस्याओंके निदानपर ही उनका अस्तित्व निर्भरकरता है एवं ये प्राणी अपने को वातावरण के अनुकूल उपयुक्त बनाने का प्रयास करता है। ये अनुकूली परिवर्तन विकासीय परिवर्तनों को दर्शाते है, प्राणियों में नये अनुकूलन जुड़ जाते है।

बोध प्रश्न -3

नोट : (i) हर प्रश्न का उत्तर उसके नीचे छोड़ी हुई जगह में दे।
(ii) अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गऐ उत्तरों से मिलाऐं।

(1) अनुकूलन की परिभाषा दो।

.....

.....

(2) धावक अनुकूलन का एक उदाहरण दो।

.....

.....

(3) परिग्राही पुच्छ किस प्रकार के अनुकूलन का उदाहरण है।

.....

.....

(4) किन्हीं दो उड्डयन अनुकूलनों को लिखो।

.....

.....

(5) अनुहरण के प्रकारो को लिखो।

.....

.....

(6) सहयोगी तथा सहजीवन अनुकूलनों में क्या अंतर है?

.....

.....

(7) उस अनुकूलन का नाम दे जिसमें दो जीव साथ तो रहते है परंतु उनमें एक तो लाभान्वित होता है परन्तु दूसरे को नुकसान होता है।

.....

.....

14.5 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको प्राणियों में पाई जाने वाली विभिन्नताओं तथा पर्यावरण के प्रति उनके अनुकूलनों के बारे में जानकारी मिली होगी। वास्तव में उद्विकासीय प्रक्रिया से गुजरते वक्त प्रत्येक प्राणि को अपने आप को बदलते पर्यावरण के साथ डालना अत्यंत आवश्यक होता है। और इसी दौरान प्राप्त किये गऐ अनुकूलनों के फलस्वरूप वह कभी-कभी इतनी अधिक हो जाती है कि वह प्राणि एक नई जाति को जन्म देता है। उद्विकास का भी यही आधार है।

14.6 शब्दावली (Glossary)

सतंत् :	लगातार (Continuous)
दैहिक :	कायिक (Somatic)
जननीय :	जनन् सम्बन्धी (Germinal)
गुणात्मक :	परिमाण संबंधी; जिन्हें आखों से देखकर ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकें (Substantive)
न्यूनता :	कमी (Deletion or deficiency)
प्रतिलोमन :	घूम जाना (Inversion)
पार्थक्य :	अलग होना (Isolative)
संगमोत्तर :	संगम के पश्चात् (Post-making)
बंध्य जीव :	जो जनन् करने में अक्षम हो। (Sterile)

14.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

कोहली एवं भाटिया - प्राणि विज्ञान (प्राणी विविधता तथा उद्रिकास), रमेश बुक डिपो, जयपुर- नई दिल्ली

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to Self assessment Questions)

बोध प्रश्न - 1

(1) सतत् विभिन्नताऐ।

(2) मनुष्य के हाथ में 6 अंगुलियां।

(3) दैहिक विभिन्नताऐ।

(4) इकाई पढ़े और अपने विवेक से उत्तर दे 1

(5) असुगुणिता

(6) अपने विवेक से उत्तर दे।

(7) पाठ पढिये और उत्तर दीजिऐ।

बोध प्रश्न 2

(1) Dobzhansky डोब्झेन्स्की

(2) केपकोड के उत्तर व दक्षिण भाग।

(3) ऋतुनिष्ठ पार्थक्य।

(4) ड्रोसोफिला

(5) संकरनिम्नता

(6) मूलर संकल्पना तथा डेब्झेन्स्की संकल्पना

(7) पाठ पढे और अपने विवेक से उत्तर दे।

बोध प्रश्न 3

(1) पाठ पढ़े और उत्तर दो।

(2) घोड़ा।

(3) आरोहण अनुकूलन।

(4) अग्रपाद. पंखों में रुपान्तरित एवं वातिल अस्थियां।

(5) रक्षी अनुहरण तथा आक्रामक अनुहरण।

(6) पाठ पढ़े और उत्तर दे।

(7) परजीवी अनुकूलन।

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये :
   i. भ्रूणीय विभिन्नताएँ
   ii. विभिन्नताओं के कारण
   iii. असतत् विभिन्नताएँ एवं उत्परिवर्तन
   iv. संकर बंध्यता
   v. कार्यिक पार्थक्य
   vi. आवासीय पार्थक्य
   vii. भौगोलिक पार्थक्य
   viii. स्थलीय अनुकूलन
   ix. उड्डयन अनुकूलन
   x. अनुहरण
   xi. क्रियात्मक अनुकूलन
2. स्वभावों तथा आवासों के आधार पर अनुकूलन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।
3. पार्थक्य क्या है? विभिन्न प्रकार के पार्थक्यों का वर्णन कीजिये तथा पार्थक्य का जीव उदविकास में महत्त्व समझाइये।
4. विभिन्नताओं से क्या तात्पर्य है। विभिन्न प्रकार की विभिन्नताओं का वर्णन करते हुए उद्रिकास में महत्व समझाइयो

इकाई 15: जीवाश्मिकी (अवशेष विज्ञान), जीवाश्म, पृथ्वी का अपूर्णता भू-वैज्ञानिक विभाजन, भू-अभिलेखों की अपूर्णता

इकाई की रूपरेखा (Out Line of Unit)

15.0 उद्देश्य (Objectives)

15.1 प्रस्तावना (Introuctions)

15.2 जीवाश्मीकी (Palaeontology)

- 15.2.1 जीवाश्मिकी, एक परिचय (Palaeontology, an Introduction)
- 15.2.2 जीवाश्मिकी के उपयोग (Applications of Palaeontology)

15.3 जीवाश्म (Fossils)

- 15.3.1 जीवाश्म निर्माण (Formations of Fossils)
  - 15.3.1.1 निर्जीवीकरण (Pertification)
  - 15.3.1.2 बर्फ परिरक्षण (Preservation in Ice)
  - 15.3.1.3 रेसिन परिरक्षण (Preservation in Resin)
  - 15.3.1.4 पदचिन्हों का परिरक्षण (Preservations of Foot - prints)

15.4 पृथ्वी का भूवैज्ञानिक विभाजन (Geological Time Scales)

- 15.4.1 अजीव महाकल्प (Azoic)
- 15.4.2 आर्कियोजोइक महाकल्प (Archeozoic)
- 15.4.3 प्रोटेरोजोइक महाकल्प (Proterozoic)
- 15.4.4 पेलियोजोइक महाकल्प (Palaeozoic)
  - कैम्ब्रियन काल (Cambrian period)
  - ऑर्डोविशियन काल (Ordovician)
  - सिलूरियन काल (Silurian)
  - डिवोनियन काल (Devonian)
  - कार्बोनिफेरस काल (Carbosniferous Period)
  - मिसिसिपियन (Mississipian)
  - पेनसिल्वेनियम (Pennsylvanian)
  - पर्मियन काल (Permian Period)
- 15.4.5 मीसोजोइक महाकल्प (Mesozoic Era)
  - ट्राइऐसिक काल (Triassic)
  - जुरासिक काल (Jurassic)
  - क्रिटेशियस काल (Cretaceous)
- 15.4.6 सीनोजोइक महाकल्प (Conozoic Era)
  - पेलियोसीन (Palaeocene)
  - तृतीयक काल (Tertiary period)
  - इओसीन (Eocene)
  - ओलिगोसीन (Oligocene)

मीओसीन (Miocene)
प्लाइयोसीन (Pilocene)
चतुर्थ काल (Quarternary period) प्लीस्टोसीन (Pleistocene)
आधुनिक काल (Recent)
15.5 भूवैज्ञानिक आलेख की अपूर्णता (Incompleteness of Fossil Records)
15.5.1 जीवाश्मिभवन में आने वाली कठिनाइयाँ (Difficulties in Fossilization)
15.5.2 जीवाश्मों का नष्ट होना (Destruction of Fossils)
15.5.3 जीवाश्मों को प्राप्त करने में होने वाली कठिनाइयाँ (Difficulties in Exploring the Fossils)
15.6 सारांश (Summary)
15.7 शब्दावली (Glossary)
15.8 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)
15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to Self-assessment Questions)
15.10 अभ्यास प्रश्न (Exercise Question)

15.0 उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ में जीवाश्म तथा उसके निर्माण एवं उपयोगों पर चर्चा की गई है। इस पाठ के अध्ययन के - बाद आप जानेंगे

(i) जीवाश्म क्या है, उनका निर्माण किस प्रकार होता है तथा उनके क्या - क्या उपयोग होते है।

(ii) पृथ्वी का भूवैज्ञानिक विभाजन किन आधारी पर किया जाता है।

(iii) वे कौन से कारण है, जिनसे भू - अभिलखों, (जीवाश्मों) को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

15.1 प्रस्तावना (Introductions)

इस इकाई में हम आपकों जीवाS मो के बारे में बताऐगे, जिसमें ये बताया जाऐगा कि जीवाश्म निर्माण किस प्रकार होता है तथा साथ ही हम इन जीवाS मी का अध्ययन क्यों करते हैं आखिर क्या कारण है कि इन्हें प्राप्त करने के लिए हम अपना धन और समय खर्च करते है , हमारे लिए इनकी क्या उपयोगिता है। साथ ही हम पृथ्वी के भूवैज्ञानिक विभाजन एव भू- अभिलखों के अधूरेपन के कारणों का भी अध्ययन करेगे। इनके द्वारा आपको प्राणियों के उद्विकास को और अधिक आसानी से समझ पाने में सरलता महसूस होगी।

15.2 जीवाश्मिकी (Palaeontology)

15.2.1 जीवाश्मिकी : एक परिचय (Palaeontology an Introduction)

सामान्य शब्दों में जीवाश्मों का अध्ययन ही जीवाश्मिकी कहलाता है। यहाँ एक सवाल और खड़ होता है कि जीवाश्म क्या है। वास्तव में जीवाश्म, प्राकृतिक कारणों से सुरक्षित भूमि के अंदर उपस्थित प्राणि या पादपों के पूर्ण शरीर या शरीर के अवशेष होते है। इस आधार पर हम जीवाश्मीकी दो भागों में बाँट सकते है :

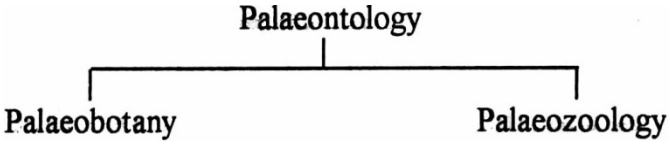

पेलियोबोटेनी (Paleobotany) : इसमें पादपों के जीवाश्मों का अध्ययन किया जाता है।

पेलियोज़ूलोजी (Paleozoology) : इसमें प्राणियों के जीवाश्मों का अध्ययन किया जाता है।

15.2.2 जीवाश्मीकी के उपयोग (Application of Paleontology)

जीवाश्मों का अध्ययन कर हम यह आसानी से पता कर सकते है कि जीवों का उद्विकास किस प्रकार से हुआ होगा। जीवाश्मों के अध्ययन के दारा हम निम्न तथ्यों के बारे में जानकारी। हासिल कर सकते है

(i) जीवाश्मों के अध्ययन से ये पता चलता है कि अधिक पुरानी चट्टानों में मिलने वाले जीवाश्म सरल प्रकार के होते है जबकि नई चददनों में जटिल प्रकार के जीवाश्म प्राप्त तेते है, जो इस बात को इंगित करते है कि जीवों का उद्विकास सरल से जटिल प्रकार की तरफ हुआ है।

(ii) जीवाश्मों की आयु निर्धारण दारा से पता लगाया जा सकता है कि जीव कौन से काल में पाया गया होगा।

(iii) पुराने समय में किस प्रकार के जीव उपस्थित थे, इनकी भी जानकारी प्राप्त होती है।

(iv) जीवाश्मों के आधार पर विभिन्न प्राणियों के मध्य उपस्थित संबंध को भी स्थापित किया जा सकता है।

(v) जीवाश्मों के अध्ययन से किसी युग के जलवायु का अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी स्थान पर रेष्ठियर का जीवाश्म मिलता है तो ये माना जा सकता है कि कभी वहाँ ठंडी जलवायु रही होगी।

15.3 जीवाश्म (Fossils)

अभी तक हमने जीवाश्मीकी तथा उसके उपयोगों के बारे में बढ़ा। इसके बाद हम अध्ययन करेंगे कि जीवाश्म क्या होते है, इनका निर्माण किस प्रकार होता है।

किसी जीव के परिरक्षित भाग को जीवाश्म कहते है इसमें किसी चट्टान पर पाऐ गऐ पद्चिन्ह या फिर किसी पादप की पत्ती की छाप भी शामिल है जिससे किसी भी प्रकार जानकारी हासिल हो सके।

15.3.1 जीवाश्म निर्माण (Formation of Fossils)

वास्तव में जीवाश्म निर्माण की प्रक्रिया कई कारकों पर निर्भर करती है, जरुरी नहीं कि मृत जीवों का जीवाश्मीभवन हो जाऐं। कई बार मृत जीव दूसरे अन्य जीवों के द्वारा खा लिये जाते हैं, या भूमी पर ही उनका विघटन हो जाता है और वे भूमि ये दब नहस्सीं पाते थे अपनी किसी प्रकार की छाप नहीं छोड़ पाते।प्रकृति मे जीवाश्म निर्माण के कई तरीके है , जिनमे से कुछ महत्वपूर्ण हम आपको यहाँ आगे बताने जा रहे है :

(i) **निर्जिवीकरण** (Petrification) : यह जीवाश्म बनने की सबसे अधिक पाई जाने वाली विधि है। सबसे सरल रूप में इसे निम्न पदों के आधार पर समझा जा सकता है : किसी स्थान पर कोई जीव प्राकृतिक या अन्य किन्हीं कारणों से मर जाता है तो धीरे- धीरे उस पर मिट्टी की

पते चढ़ ने लगती है, जबकि कोई अन्य जीव उसे ना खाऐ, नष्ट ना करे या फिर उसका भूमि पर ही विघटन ना हो।

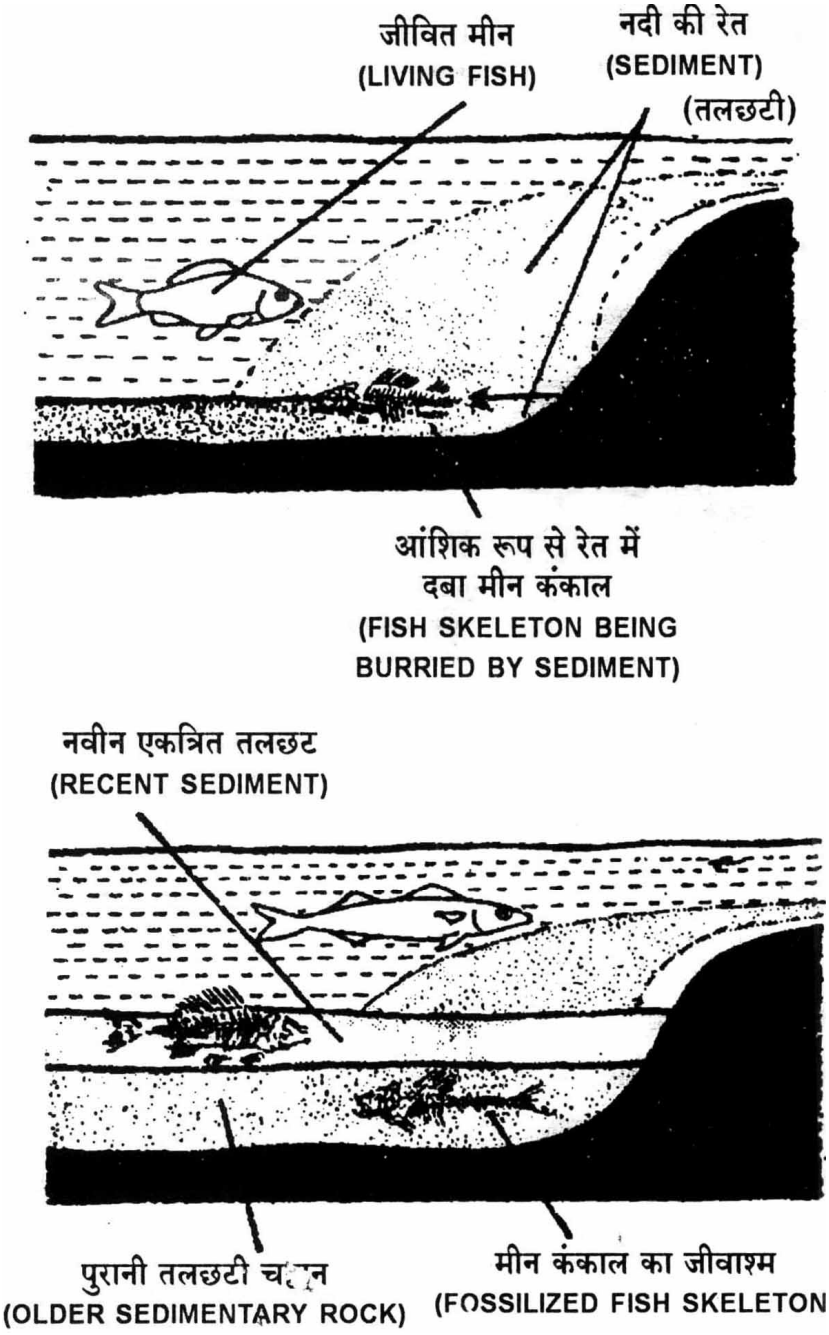

चित्र 15. 1 : अवसादी या तलछटी शैल के जीवाश्म-निर्माण की प्रक्रिया

भूमि में दब जाने पर उसके मृदु अंग जैसे-पेशियां, आतीरक अंग विघटित हो जाते है जबकि दांत, हड्डियाँ आदि परिरक्षित रह जाते हैं तथा शरीर के कठोर हिस्से अपनी पूर्वावस्था के समान ही बने रहते हैं।

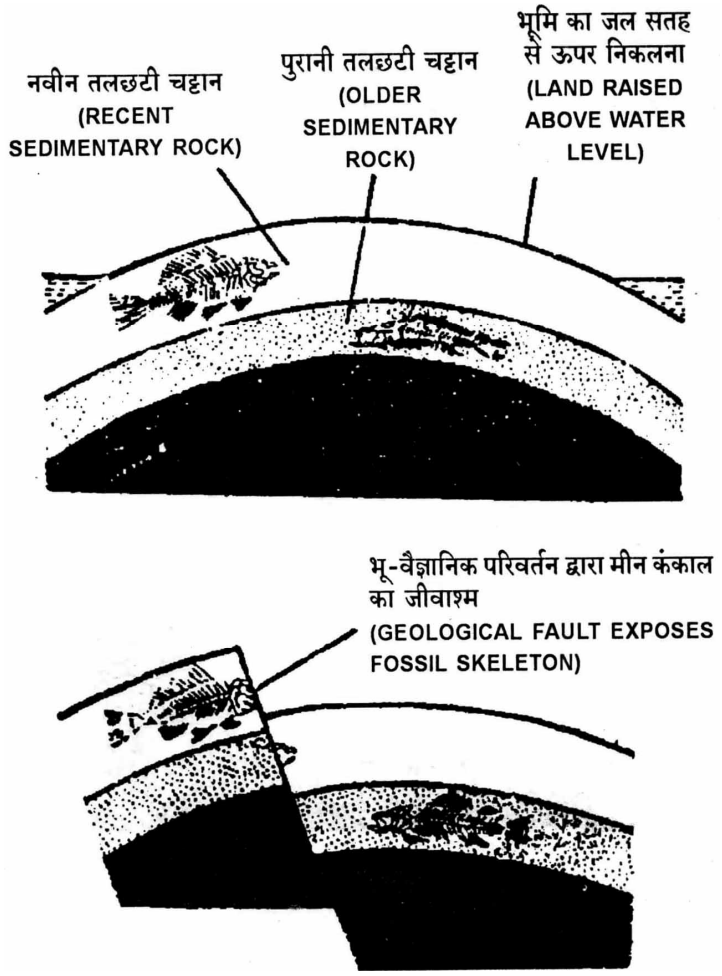

चित्र 15.2 : चट्टान का जल से ऊपर निकलने की प्रक्रिया में जीवाश्म नजर आना

पेट्रीकरण (Petrification) के दारा सामान्यतया कठोर भागों का ही परिरक्षण हो पाता है लेकिन कई बार जब परिस्थितियाँ पूरी तरह अनुकूल होती है तब शरीरके कोमल अंगों में उपस्थित पद्धार्थो का विस्थापन शनैःशनैः कैल्शियम कार्बोनेट, सिलिका या लौह जैसे पद्धार्थों से हो जाता है।

(ii) **बर्फ पीररक्षित जीवाश्म** (Preservation in ice) : बर्फ में दबकर बने हुऐ जीवाश्म हजारों है सालों तक ज्यों के त्यों बने रहते हो इसमें हड्डियों या कठोर भागों के साथ-साथ शरीर के सभी कोमल अंग, यहाँ तककित्वचा भी, सुरक्षित रहती है, क्योंकि विघटनकारी कारक इतने कम तापमान पर बर्फ के अंदर सक्रिय नहीं रह पाते।

(iii) **रेसिन में परिरक्षित जीवाश्म** (Preservation in resin) : कई बार पेड़ों से निकलने वाले चिपचिपे पद्धार्थ जैसे रेजिन में कुछ कटि चिपक कर उसमें बंद हो जाते है, इस प्रकार के जीवाश्म बहुत उत्तम होते है जिनमें कीटों के हर अंग यहाँ तक कि रंग तक परिरक्षित रहते हैं।

(iv) **पदचिन्हों का परिरक्षण** (Preservation of foot prints) : कई बार जीव किसी कीचड़ मुक्त जगह से गुजर कर जाता है और जब अनुकूल परिस्थितियों में ऐसी जगह कठोर चट्टानों में बदलने लगती हैं तो वहां उपस्थित जीवों के वे पदचिन्ह चट्टानों में परिरक्षित रह जाते है।

बोध प्रश्न - 1

नोट 1: (i) प्रश्न का उत्तर उसके नीचे छोड़ी हुई जगह में दे।
(ii) अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गऐ उत्तरों से मिलाऐ।

(1) पादपों के जीवाश्मों के अध्ययन को क्या कहते हैं?

.....

.....

(2) प्राणियों के जीवाश्मों के अध्ययन को क्या कहते हैं?

.....

.....

(3) जीवाश्मिकी की परिभाषा दो।

.....

.....

(4) जीवाश्म निर्माण की प्रमुख विधियाँ कौन-कौनसी है?

.....

.....

(5) जीवाश्म के कोई तीन उपयोग लिखो

.....

.....

15.4 पृथ्वी का भू-वैज्ञानिक विभाजन (Geological Time Scales)

अभी तक हमने जीवाश्मिकी के बारे में पढ़ा जिसके आधार पर उद्विकास के बारे में भी जानकारी हासिल की जाती है, हालांकि उद्विकास को भली भांति समझने के लिऐ ये आवश्यक है कि हम पृथ्वी के काल विभाजनों के आधार पर पादप तथा प्राणियों का अध्ययन करे।

भूवैज्ञानिकों के द्वारा किया गऐ अध्ययनों के आधार पर, चट्टानों और उनके अंदर परिरक्षित जीवाश्मों के आधार पर तथा साथ ही वातावणीय अवस्थाओं के आधार पर पृथ्वी की आयु को विभिन्न महाकल्पों , कल्पो में बाँटा गया है।

किन्हीं भी दो महाकल्पों के मध्य किसी ना किसी प्रकार की भूवैज्ञानिक क्रांति उपस्थित थी जिनके कारण भी दोनों महाकल्पों की जलवायु तथा जीवों में विभिन्नताऐं देखने को मिलती है जो निम्न प्रकार से है :

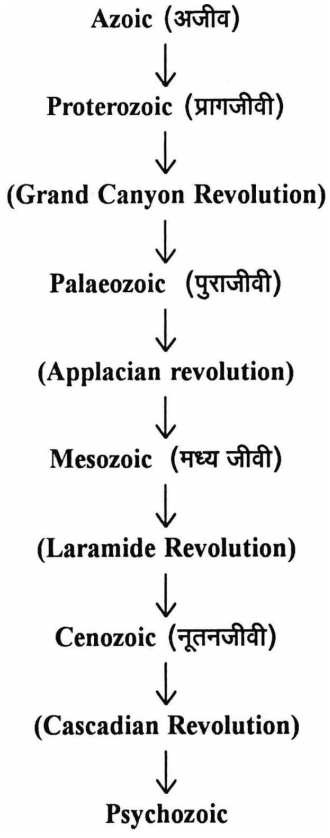

चित्र 15.3

15.4.1 अजीव महाकल्प (Azoic Era)

इस महाकल्प में पृथ्वी पर जीवन उपस्थित नहीं था। इस कारण इस महाकल्प के कोई जीवाश्म नहीं पाऐ जाते। हालांकि ऐसा माना जाता है कि इसमें पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति के लिए आवश्यक अनुकूल परिस्थितियों का विकास हुआ था।

15.4.2 आर्कियोजोइक महाकल्प (Archaeozoic Era)

इस महाकल्प की शुराआत 200 मिलियन वर्ष (2, 000 लाख) पूर्व हुई थी। इस काल में पृथ्वी पर धीरे - धीरे जीवन की उत्पत्ति के लिए परिस्थितियॉ अनुकूल होने लगी थी। इस काल में उपस्थित चट्टाने पृथ्वी में अधिकतम गहराई में पाई जाती है इस महाकल्प में अधिकतर एक कोशिकीय जीवों, जीवाणुओं तथा एल्गी को ही जीवाश्म रूप में पहचाना गया है।

15.4.3 प्रागजीवी महाकल्प (Proterozoic Era)

यह महाकल्प 1800 मिलियन वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ था तथा इसकी अवधि 1000 मिलियन विभाजन, 1 0,000 लाख वर्ष मानी जाती है। इस काल मे जल वाष्प की अधिकता थी जो संघनन क्रिया के फलस्वरूप लगातार पृथ्वी पर बरस रहा था। इस समय के जीवाश्म अपूर्ण तथा अस्पष्ट है, क्योंकि इस काल की चट्टानों पर अत्यधिक ताप व दाब बढ़ने सेवे लगभग नष्ट हो

चुकी है, हालांकि कुछ जीवाश्मों के अध्ययन से इस काल में अकशेरुकी प्राणियों जैसे - रेडियोलेरियन्स, स्पंज, सीलेन्ट्रेट्स, एनेलिड्स प्राणियों की उपस्थिति प्रतीत होती है।

15.4.4 पुराजीवी महाकल्प (Paleozoic Era)

इस महाकल्प की शुरुआत 600 मिलियन वर्ष (प्राचीन जीवन का युग) पूर्व हुई थी तथा इसकी आयुकरीब 370 मिलियन वर्ष मानी जाती है। इसकाल के जीवाश्मजल तथा स्थल पर उपस्थित पादप तथा प्राणी दोनों के ही पाऐ जाते हैं, सरल अध्ययन के लिए इस महाकल्प को पुन: 6 कल्पों में बांटा गया है, जो निम्न प्रकार से है

(i) **कैम्ब्रियन काल** (Cambrian). ये कल्प 600 मिलियन वर्ष पूर्व शुरु हुआ था तथा इसकी अवधि लगभग 100 मिलियन वर्ष मानी जाती है।

इस कल्प में पृथ्वी के अधिकांश हिस्से समुद्री जल से ढके हुऐ थे इस कारण अधिकतर जीव भी समुद्रों तक ही सीमित थे। इस कल्प में Protozoa , Sponges , Coelenterata, Mollusca, echinodermata , तथा कुछ Trilobites जीवों के उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं।

(ii) **आर्डोविशियनकल्प** (Ordovician) इसकल्पकी शुराआत 500 मिलियन (5,000 लाख) वर्ष पूर्व हुई थी तथा इसकी अनुमानित आयु 60 मिलियन (600 लाख) वर्ष थी।

इस कल्प की जलवायु ऊष्ण थी, तथा साथ ही सागर तटों का पानी सूख जाने से शुष्क भूमी का निर्माण होने लगा। इसकल्प में पहली बार कशेरुकी प्राणियों का उद्भव हुआ जो कवचधारी जबड़ा विहीन ओस्ट्रेकोडर्म (Ostracoderm) मछलियों के रूप में थे।

(iii) **सिलुरियन कल्प** (Silurian) : इस कल्प की शुरुआत 440 मिलियन वर्ष पूर्व हुई थी तथा अवधि लगभग 40 मिलियन वर्ष मानी जाती है।

इस कल्प की जलवायु शुष्क प्रकार की थी इसी कल्प में नवीन पर्वत श्रंखलाओं का निर्माण भी हुआ था। तथा साथ ही प्रथम बार स्थलीय पादपों जैसे ferns एव वायवीय श्वसन करने वाले प्राणियों जैसे प्राणियों का विकास Arachnide's प्राणियों का विकास हुआ।

(iv) **डिवोंनियन कल्प** (Devonian Period) ; ये कल्प करीब 406 मिलियन वर्ष पूर्व शुदा हुआ था तथा करीब 60 मिलियन वर्ष तक चला था।

इस कल्प में जलवायु शुष्क प्रकार की थी। ज्वालामुखी क्रियाऐं अधिक थी। इस कल्प में, समुद्रों की सीमाओं में कमी होने से स्थल भाग में वृद्धि हुई। पादप जगत में जिम्नोस्पर्म का उद्विकास इस कल्प में हुआ था। वहीं दूसरी ओर जलीय जन्तु धीरे-धीरे स्थलों की ओर स्थापित होने लगे। इस दौरान कई जीव जैसे बिच्छू, मकडियां, मिलिपीस्स, पंखविहीन कीटो का भी विकास हुआ। जीवाश्म अध्ययन के आधार पर पता चलता है कि इस कल्प में विभिन्न प्रकार की मछलियों पाई जाती है, अत: इन्हें मल्म कल्प (age of fishes) भी कहा जाता है।

(v) **कार्बनी कल्प** (Carboniferous period) : इस कल्प में उत्तरी गोलार्द्ध की ओर कोयले का निर्माण होने की वजह से कार्बनीकल्प (Carbonifeous) नाम दिया गया है :

इस कल्प को दो भागों मे बांटा गया

(A) मिसिसिपियन कल्प (Lower Carboniferous (Mississipian Period)

(B) पेनसिल्वेनियम (Upper Carboniferous (Permian Period)

(A) **मिसिसिपियन कल्प** (Lower Carboniferous (Mississipian Period) इस काल की शुरुआत 345 दस लक्ष (million) वर्ष पूर्व हुई थी, जबकि इसकी अवधि करीब 25 दस लक्ष अथवा 250 लाख (million) वर्ष आकी गई हैं। इस काल में जलवायु उष्ण तथा शुष्क थी। पृथ्वी का अधिकांश भाग पादप जगत से परिपूर्ण था, जिनमें जिम्नोस्पर्म की अधिकता थी। प्राणि- जगत में शार्क, विभिन्न उभयचर तथा पंख युक्त कीटों की बहुतायत थी।

(B) **पेनसिल्वेनियम (Upper Carboniferous (Pennsylvanian Period) :** ये काल 320 million वर्ष पूर्व शुरू हुआ था। इसकी अवधि करीब 40 million वर्ष थी।

इस काल की जलवायु सामान्यतया नमीयुक्त थी, इस समय अत्यधिक कोयले का निर्माण हुआ था। पादप जगत में काष्ठीय पादप सामान्य रूप से पाऐ जाते थे। जीवों में उभयचरों का आधिपत्य देखा गया। ठीक इसी काल में 'Seymouria' जो कि सरीसृपों का पूर्वज माना जाता है, का जीवाश्म भी पाया गया है।

(vi) **पर्मियन कल्प** (Permian) : इस काल की शुराआत 280 million अथवा 2800 लाख वर्ष पूर्व हुई थी, ये Paleozoic Era का अंतिम कल्प है, जिसकी अवधि 50 millon अथवा 500 लाख वर्ष मानी गई है

इस काल की जलवायु शुष्क तथा ठंडी थी, जिसमें पृथ्वी की सतह पर कई प्रकार के परिवर्तन हुऐ तथा पर्वतों का निर्माण हुआ। इस कल्प में अत्यधिक कठोर काष्ठीय पादपों का विकास हुआ। स्थलीय जीवों में अत्यधिक विभिन्नताएं उत्पन्न हुई। इस काल में पहला सरीसर्प - cotylosaurs उत्पन्न हुआ तथा साथ ही स्तनीभांति सरीसृप (mammal - like reptile) Therapsids का भी निर्माण हुआ था।

15.4.5 मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic Era)

इस महाकाल की शुरुआत 230 million 2300 लाख वर्ष पूर्व हुई थी। उस समय पृथ्वी की जलवायु गर्म व शुष्क थी। इस महाकल्प में अधिकतर पादप तथा जंतु संघों का विकास हुआ। इस काल में अधिकतर प्राणि सरीसर्प ही थे उनमें भी विशालकाय सरीसर्प - डाइनोसोर्स का साम्राज्य था जिस कारण इस महाकल्प को "सरीसृपों का काल' ' भी कहते हैं। अध्ययन की दृष्टि से इस महाकल्प को तीन कल्पों में बांटा गया हैं:

(1) **ट्राइऐसिक कल्प** (Triassic) : इस कल्प का प्रारम्भ 230 million 2300 लाख वर्ष पूर्व - हुई थी तथा ये करीब 115 million वर्ष तक उपस्थित था।

इस कल्प में गर्म तथा शुष्क प्रकार की जलवायु मिलती हैं। पादप जगत में जिम्नोस्पर्म की अधिकता थी। प्राणियों में विशालकाय सरीसर्प तथा अण्ड़े देने वाले स्तनधारी जीवों का विकास हुआ।

(ii) **जुरैसिक कल्प** (Juraasic Period) : यह कल्प 180 million , अथवा 1800 लाख वर्ष पूर्व शुरु हुआ था तथा इसकी अवधि लगभग 45 million वर्ष मानी गई है।

इस कल्प की जलवायु उष्ण तथा आर्द्र थी तथा साथ ही अत्यधिक वर्षा होने के कारण वनस्पतियाँ प्रचुर मात्रा में पाई जाती थी। इस काल में पहली बार फूल युक्त पौधे Angiosperm का उद्भव हुआ। प्राणी जात मे पक्षियो , छिपकलियो तथा मगरम्च्छो का विकास हुआ। इसी कल्प मे सरीसृप पक्षी के मध्य की योजक कड़ी "आर्कियोप्टेरिक्स" का भी उद्भव हुआ था।

(iii) **क्रिटेसियस कल्प** (Cretaceous) ; इस कल्प की शुरुआत 132 million वर्ष पूर्व हुई थी तथा इसकी अवधि 65 million वर्ष थी।

इस कल्प में जलवायु उष्ण तथा मृदुल प्रकार की पाई जाती थी। पादपों में एन्सियोस्पर्म का आधिपत्य था। जंतु जगत के अंतर्गत इस कल्प के अंत में डायनोसोर्स खत्म हो गये थे तथा सांप, मार्सुपिएल्स एवं यूथीरीयन प्राणियों का उद्‌विकास हुआ॥

15.4.6 नूतनजीवी महाकल्प (Coenzoic Era)

इस महाकल्प की शुराआत 63 million वर्ष (630 लाख) पूर्व हुई थी तथा ये आज तक विद्‌यमान है। इस महाकल्प में सभी विशालकाय सरीसृपों का अंत हो गया। तथा उनके स्थान पर स्तनधारी जीवों का विकास हुआ॥ इसी कारण इसे "स्तनधारियों का युग" भी कहा जाता है। इस महाकल्प को आगे दो कल्पों में बांटा गया है :

(i) तृतीयक कल्प (Tertiary Period)

(ii) चतुर्थ कल्प (Quarternary period)

(i) **तृतीयक स्थ्य** (Teritiary Period) : तृतीय कल्प में जलवायु प्रारम्भ में गर्म थी जो बाद में धीरे-धीरे ठंडी होती चली गई और अंत में पृथ्वी पर अलग-अलग स्थानों पर विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाने लगी। अध्ययन के लिए इस कल्प को पाँच युगों (Epoch) मे विभाजित किया गया है।

(A) **पेलियोसीन युग** (Palaeocene Pene) : इस युग का प्रारम्भ 63 million वर्ष पूर्व हुआ था, इसकी आयु लगभग 5 million वर्ष मापी गई।

हालांकि इस युग के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है लेकिन ऐसा माना जाता है कि इस युग की जलवायु स्तनधारी प्राणियों के विकास के लिए अनुकूलतम थी।

(B) **इओसीन युग** (Ecocene) : लगभग 58 million वर्ष पूर्व शुरू हुए इस युग की आयु 22 million वँर्ष आकी गई है।

इस युग की अधिकांश जलवायु उष्ण कटिबंधीय प्रकार की थी। इस युग में एंजियोस्पर्म बहुयायत से पाऐ जाते थे। प्राणियों में प्लेसेण्टल स्तनधारी जीवों जैसे चूहे, सूअर, बंदर आदि का उद्भव हुआ तथा साथ ही आधुनिक चिड़ियाओं का भी विकास हुआ॥

(C) **ओलिगोसीन युग** (Oligocene) : इस युग की शुरुआत 36 million वर्ष पूर्व हुई थी तथा इसकी अवधि 11 million वर्ष रही है।

इस युग में वातावरण अधिक मृदुल तथा ठंडा हो गया। स्तनधारी प्राणियों में ओर अधिक विविधता बढ़ी। इस समय घोड़ों में 3 अंगुलियाँ पाई जाती थी।

(D) **मिओसिन युग** (Miocene) : मे युग 25 million वर्ष पूर्व शुरू होकर करीब 13 million वर्षों तक चला। इस युग में ज्वालामुखी अत्यंत सक्रिय थे। भूमि में अत्यधिक हलचलों के फलस्वरूप भूमध्य सागर एवं हिमालय पर्वत का निर्माण भी हुआ॥ प्राणि-जगत की विविधता में वृद्धि हुई। Carnivores , ungulates , rodents , elephant , bats, whales , dolphins का विकास इसी युग में हुआ॥

(E) **प्लायोसीन युग** (Pilocene) : यह युग तृतीय कल्प का अंतिम युग है, जो 13 million वर्ष पूर्व शुरु होकर करीब 1 million वर्ष पूर्व ही खत्म हुआ है अर्थात् ये युग 12 million वर्ष की अवधि वाला था।

इस युग की जलवायु आधुनिक जलवायु के समान ही थी, जिसमें महाद्वीपों के आधुकि रुपरेखा, घास के मैदानों तथा मरुस्थलों का विकास हुआ। इस युग की सबसे खास बात ये स्थायी कि इसमें सीधा चलने वाला "आस्ट्रेलोपिथेकस" का उद्भव हो गया था, जो मानव के पूर्वज के रूप में माना जाता है।

(ii) **चतुर्थ कल्प** (Quarternary period) : ये कल्प "अति-नूतन युग" के रुप में माना जाता है, जो मात्र 1 million, वर्ष पुराना है। इसी युग में मानव का विकास हुआ, अधिकतर सभ्यताओं का उदय हुआ। मानव सीधा खड़ा होकर चलने लगा, अपने हाथों तथा पैरों का सदुपयोग करना सीखा और अपने सबसे बड़ा हथियार अर्थात् "बुद्धि" का सर्वाधिक उपयोग करने लगा। इस कारण इस युग को "मानव युग" भी कहा जाता है। अध्ययन को सहज बनाने हेतु इस कल्प को पुन: दो युगों में बांटा गया है

(A) प्लीस्टोसीन युग (Pleistocene)

(B) आधुनिक युग (Recent Epoch)

(A) **प्लीस्टोसीन युग** (Pleistocene) : ये युग 1 million वर्ष पहले शुरु होकर लगभग 10,000 वर्ष पूर्व ही खत्म हुआ है। इस युग में बर्फ पिघली जिससे समुद्र के जल का स्तर ऊंचा उठा तथा साथ ही झीलों का भी निर्माण हुआ।

इस युग में वृहद आकार के स्तनधारी जीवों जैसे हाथी, मेमथ विकसित हुऐ। साथ ही मनुष्यों में सामाजिक संगठन का विकास हुआ तथा मानव जाति धीरे-धीरे शेष प्राणियों से श्रेष्ठता हासिल करने लगी।

(B) **आधुनिक युग** (Recent Epoch) : इस युग की शुराआत 10,000 वर्ष पूर्व ही हुई है, जो आज तक चल रहा है इस युग में मानव की आधुनिकतम प्रजाति Homo sapiens sapiens का उद्भव हुआ जो अन्य सभी प्राणियों की तुलना में प्रभावी थी। इसयुग को Holocene (नूतनतम) या psychozoic पष्ठ के नाम से भी जाना जाता हैजिसमें मानव ने अपनी बुद्धि का उपयोग चरम पर किया है और उसी के दम पर आज सभी ओर राज कर रहा है, परन्तु ऐसा मात्र 1 दिन, एक साल या एक सदी में नहीं हुआ वरन् ऐसा होने में करोड़ों, अरबों वर्ष लगे हैं और ऐसा होने के लिए उद्विकास एक नहीं कई महत्वपूर्ण तथ्यों को दर्शाता है।

बोध प्रश्न - 2

नोट : (i) हर प्रश्न का उत्तर उसके नीचे छोड़ी हुई जगह में दें।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अंत मे दिये गऐ उत्तरों से मिलाऐ।

(1) पृथ्वी की अनुमानित आयु कितनी मानी गई है?

.....

.....

(2) Applacian revolution किन दो महाकल्पों के बीच हुई थी?

.....

.....

(3) कौन से महाकल्प में पृथ्वी पर जीवन उपस्थित नहीं था?

.....

.....

(4) मल्म कल्प (Age of fishes) किसे माना गया है?

.....

.....

(5) सरीसृपों' का' काल किसे कहा जाता हैं ?

.....

.....

(6) स्त्न्धरियों के युग के नाम से किसे जाना जाता हैं 7'

.....

.....

(7) मानव युग का नाम लिखो।

.....

.....

(8) डायंनोंसोंर्स का' विलोपन' किस काल में हुआ ?

.....

.....

(9) पहले स्तनी 'का उद्भव' कब हुआ था ?

.....

.....

(10) आर्कीओप्टेरिक्स (सरीसर्प व पक्षी की योजक कड़ी) का उद्भव कब हुआ?

.....

.....

आशा है अध्याय के इस चरण तक आपकों उद्विकास को समझने में कफि सहायता मिली होगी। परन्तु प्राणियों के उद्विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है कि हम जीवाश्मों का अध्ययन कर सही निष्कर्ष तक पहुंच पाऐ और उन्हें कड़ियों के रूप में जोड़ते चले जाऐ। लेकिन कई बार जीवाश्मों का मिलना या उनके द्वारा किसी निष्कर्ष तक पहुंच पाना दुष्कर प्रतीत होता है। आखिर ऐसा क्यों होता है ये जानने के लिए अध्याय को आगे की ओर बढ़ाते है

15.5 भूवैज्ञानिक आलेख की अपूर्णता (Imperfection of Geological Record)

जीवाश्मों के अध्ययन के द्वारा उद्विकास की प्रक्रिया को समझने में तथा उसे चरण पद्ध रूपसे जानने में मदद मिलती है, लेकिन जैसा कि अध्याय में पहले भी बताया जा चुका है कि सभी मृत जीव-जीवाश्म नहीं बन पाते हैं, जीवाश्मी भवन के लिए सदैव अनुकूल परिस्थितियाँ उपलभ्ध नहीं हो पाती। कई बार जीवाश्मीभवन हो तो जाता है लेकिन लंबे समय तक वे परिरक्षित नहीं रह पाते

और भूमिका के दबाव से नष्ट हो जाते है, वही दूसरी ओर जीवाश्मों को प्राप्त करने में भी कई प्रकार की कठिनाइयां अनुभव होती है, जिससे बहुत ही कम जीवाश्म प्राप्त होते है। इस प्रकार की घटनाओं का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत करते है.

(i) जीवाश्मीभवन में आनेवाली कठिनाइयाँ।

(ii) जीवाश्मों का नष्ट होना।

(iii) जीवाश्मों को प्राप्त करने में होने वाली कठिनाईयाँ।

15.5.1 जीवाश्मी भवन में आने वाली कठिनाइयाँ

सदैव जीवाश्मों के निर्माण में अनुकूल परिस्थितियाँ उपलडध ना होने से जीवाश्मी भवन नहीं हो पाता, जैसे :

(A) मृत्यु के बाद सभी जीवाश्म नहीं बन पाते है। कुछ जीवों को अन्य मांसाहारी जीव खा जाते है या अपमार्जकों दारा नष्ट हो जाते है। इसके अलावा उनका वायुवीय अपघटन भी हो जाता है।

(B) साधारणतया जीवों के शरीर के कठोर भागों का ही जीवाश्मीभवन हो पाता है, हालांकि बहुत से जीव जैसे : Protozoans , Coelenterates , worms, helminthes में कठोर भाग नहीं होते है,जिससे उनका जीवाश्मीभवन नहीं हो पाता।

(C) ऐसा माना जाता है कि जीवाश्मीभवन के सर्वाधिक अवसर समुद्री जीवों में उसके बाद स्वच्छ जलीय जीवों को तथा सबसे कम अवसर स्थलीय जीवों को प्राप्त होते है।

(D) पृथ्वी के इतिहास में सभी कालों में जीवाश्मीभवन की अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध नहीं थीं, जिससे उस विशेष काल में जीवाश्मीभवन नहीं हो पाया।

15.5.2 जीवाश्मों का नष्ट

जीवों के जीवाश्म बन जाने के उपरांत कई बार प्राकृतिक विघटनकारी कारकों के कारण जीवाश्म नष्ट हो जाते है जैसे :

(A) वे जीवाश्म जो पृथ्वी कों अधिक गहराई में पाई जाते है, उनमें अत्यधिक ताप व दाब ना सहन कर पाने से विघटन उत्पन्न हो जाता है तथा वे नष्ट हो जाते है।

(B) नदियों के बहाव के कारण बड़ी चट्टानों के लगातार रगड़ खाने से वे धीरे- धीरे घिसकर रेत में बदलने लगती है, जिससे उनमें उपस्थित जीवाश्म भी नष्ट हो जाते हैं।

(C) कई बार भूकम्पों, ज्वालामुखी के फटने या अत्यधिक तनावों से चटटानें क्लक जाती है, जिससे भी जीवाश्म नष्ट हो जाती है।

15.5.3 जीवाश्मों को प्राप्त करने में होने वाली कठिनाइयाँ

जीवाश्मों के बन जाने, तथा उनके पूर्ण रूप से परिरक्षित रह जाने के बावजूद भी काई बार कठिनाइयों का सामना जीवाश्म विज्ञानियो को महसूस करनी पड़ती है, जिसके कारण वे जीवाश्म प्राप्त नहीं कर पाते हैं जैसे :

(A) पृथ्वी के गहराई में उपस्थित चट्टानों को खोद कर निकाल पाना संभव नहीं होता जिससे उनमें उपस्थित जीवाश्म प्राप्त नहीं हो पाते।

(B) समुद्री की अत्यधिक गहराई में उपस्थित जीवाश्मों को प्राप्त करना दुष्कर कार्य प्रतीत होता है।

(C) भूवैज्ञानिकों के लिए हर जगह खुदाई करना संभव नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर किसी भू-भाग पर प्राणियों व पादपों का निवास है या वहाँ मनुष्य की विकसित आबादी उपस्थित हो तो वहां खुदाई नही की जा सकती जबकि वहाँ जीवाश्मों के प्राप्त होने की पूरी संभावना हो।

(D) ऊँची पहाड़ियों पर पहुंच पाना और जीवाश्मों का पता करना भी टेड़ा काम होता है।

(E) कई बार जल्दबाजी या अज्ञानतावश की गई खुदाई से भी जीवाश्म नष्ट हो जाते है।

उपरोक्त वर्णित बिन्दुओं के अंतर्गत अब आपकों उन कारणों का भी पता चल गया होगा जिससे जीवाश्म या तो बन नहीं पाते या फिर उन्हें प्राप्त करना संभव नहीं होता। जिससे उद्विकास का अध्ययन करते समय बीच की कई कड़ियाँ छूट जाती है।

बोध प्रश्न - 3 (Self - assessment Questions)

नोट : (i) हर प्रश्न का उत्तर उसके नीचे छोड़ी हुई जगह में दें।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गऐ उत्तरों से मिलाऐ।

(1) भूवैज्ञानिक आलेखों की अपूर्णता से अभिप्राय: है।

.....

.....

(2) जीवाश्मीभवन में आने वाली किन्हीं तीन कठिनाइयौ को लिखो।

.....

.....

(3) किन कारणों से जीवाश्म बनने के बावजूद भी नष्ट हो जाते है?

.....

.....

(4) जीवाश्मों को प्राप्त करने में होने वाली कठिनाइयों को लिखो।

.....

.....

15.6 सारांश (Summary)

इस पाठ में आपने जीवाश्म -निर्माण, उनकी उपयोगिता, पृथ्वी का भूवैज्ञानिक विभाजन एवं भूअभिलेखों की अपूर्णता के बारे में पढ़ा। पुरातन समय की अवधारणाऐं स्थापित करने में जीवाश्मों का बहुत योगदान है युगों का निर्धारण करने या कौनसे युग मे किस प्रकायू के जीव उपस्थित थे इनका पता आसानी से लगाया जा सकता है। इस आधार पर उद्विकास को भी समझा जा सकता है।

जीवाश्मीभवन किस प्रकार होता है, ये उस समय के वातावरण, जलवायु तथा अनुकूल परिस्थितियों पर निर्भर करता है, किसी भी जीवाश्म को प्राप्त करने के उपरांत जीवाश्मविज्ञानी उस दौर में पाऐ जाने वाले जीवों एवं उस समय की जलवायु के बारे में पता करते हैं। आजकल

की उच्च तकनीक के द्वारा तो किसी जीव के जीवाश्म (ढांचे के रूप में) मिलने पर उसके संपूर्ण आकृति वह कैसा दिखता होगा, इसका भी अनुमान लगाया जा सकता है।

पृथ्वी पर पाऐ जाने ताले इन्हीं अवशेषों तथा भूशैल अध्ययनों के आधार पर पृथ्वी के इतिहास को भी कई भागों में बांटा गया है। पाठ में आपने इन्हीं भागों को महाकल्प, कल्प तथा युगों में पढ़, जिन्हें भूवैज्ञानिकों तथा जीवाश्म विज्ञानियों ने अपने निष्कर्षो के आधार पर तैयार किया। इन्हीं निष्कर्षों के आधार पर उद्विकास की निरन्तरता को समझाया जा सकता है। यदि सभी जीवाश्म उपस्थित हो तथा उन जीवाश्मों को प्राप्त किया जा सकता हो तो उद्यवइकास की संपूर्ण प्रक्रिया को समझा या समझाया जा सकता है, लेकिन जैसा कि आपने पढ़ा कि कई कारकों के द्वारा सभी जीवाश्म प्राप्त नहीं हो पाते है, जिस कारण उद्विकास की कई कड़ियों का अध्ययन संभव नहीं हो पाया। हालांकि उपलब्ध जीवाश्मों के आधार पर भी हमने पादपों तथा प्राणियों के उद्विकास को काफी हद तक सुविधाजनक रूप मे समझ लिया है, जिसमें सबसे ऊपर हम अर्थात् मानव है।

15.7 शब्दावली (Glossary)

उद्विकास (Evolution) : जीवों का क्रमिक विकास

जीवाश्म (Fossils) : जीवों के अवशेष

जीवाश्मीकी (Palaeontology) : जीवाश्मों का अध्ययन

जीवाश्मविज्ञानी (Palaeontologist) : जीवाश्मों का अध्ययन करने वाले

जीवाश्मीभवन (Fossilization) : जीवाश्मों के निर्माण की क्रिया

महाकल्प (Era) : पृथ्वी के इतिहास को महाक्लों में बाटा गया है

कल्प (Periods) : महाकल्पों को कल्पों में विभाजित क्यिा गया है।

युग (Epochs) : कल्पों को पुन: युग में बांटा गया है।

15.8 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. Discovering fossils : How to find and identify remains of the prehistoric : part - 1 , By Frank A . Gralia , Donald Stuart Miller (1990) Stakepale Books, Mechanicsburg PA.
2. The origin of species by mean of Natural Selection or the Preservation of favoures Races in the syrggle for life.By Charles Darwin (2000) and J.W.Burrow, Admant Media Corporation,Elibron Classics Series, London.
3. Simply Science Fossils , By Melissa Steward (2003) Compass Point Books; USA
4. Fossils (Early Bird Earth Science), By Sally M.Walker (2006); Lerner Publishing Group ; USA

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers of Self - assessment Questions)

बोध प्रश्न - 1

(1) पेलियोबोटेनी Palaeobotany

(2) पेलियोज़ूलोजी Palaeozoology

(3) जीवाश्मों के अध्ययन को जीवाश्मी की कहते है।

(4) निर्जिवीकरण Petrification,Ice-Preservation,Resin preservation,Footprint preservation

(5) (i) उद्‌विकास को समझा जा सकता है।
(ii) पुरातन जीवों के बारे में जानकारी मिलती है।
(iii) काल निर्धारण किया जा सकता है।

बोध प्रश्न - 2

(1) लगभग 6 अरब वर्ष

(2) Paleozoic - Mesooic era के मध्य

(3) अजीव महाकल्प में (Azoic era)

(4) Devonian period

(5) Mesozoic मध्यजीवी महाकल्प

(6) Coenozoic नूतनजीवी महाकल्प

(7) Quarternary period of Coenozoic नूतनजीवी महाकल्प का चतुर्थक कल्प

(8) Creataceous period

(9) Triassic period

(10) Jurassic period

बोध प्रश्न - 3

(1) पाठ पढ़िये और उत्तर दीजिए।

(2) पाठ पढ़िये और उत्तर दीजिए।

15.10 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. जीवाश्म क्या है? प्रकृति में इनका निर्माण कैसे होता है?
2. जीवाश्म पर एक निबंध लिखिये।
3. पृथ्वी का भू-वैज्ञानिक विभाजन कल्प स्तर तक करते हुए उस कल्प में पाये जाने वाले प्राणियों की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।

इकाई 16: विलुप्त जीवों का अध्ययन : डाइनोसोर्स, आर्कियोप्टेरिक्स

इकाई का रूपरेखा (Out - line of Unit)

16.0 उद्देश्य (Objectives)

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

16.2 डायनोसोर (Dinosaurs)

16.2.1 भौतिक परिस्थितियाँ (Physical Conditions)

16.2.2 स्वभाव तथा आवास (Habit and Habitat)

16.2.3 परिमाण (Size)

16.2.4 वर्गीकरण (Classification)

- सॉरिश्चिया (Saurischia)
  - थीरोपोडा (Theropoda)
  - सॉरोपोडा (Sauropoda)
- ऑर्निथीश्चीया (Ornithischia)
  - आर्निथोपोडा (Ornithopoda)
  - स्टीगोसॉरिया (Stegosauria)
  - सीरेटोप्सिया (Ceratopsia)

16.2.5 विलुप्त होने के कारण (Causes of Extinction)

16.3 आर्कियोप्टेरिक्स (Archeopteryx)

16.3.1 सामान्य लक्षण (General Charactrstics)

16.3.2 सरीसर्प समान लक्षण (Reptilian Characters)

16.3.3 पक्षी समान लक्षण (Avian Characters)

16.4 सारांश (Summary)

16.5 शब्दावली (Glossary)

16.6 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

16.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to Self Assessment Questions)

16.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

16.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में मुख्यतया उन जीवों के बारे में बताया गया है, जो कि विलुप्त हो चुके हैं। हालांकि कभी ये जीव पृथ्वी पर जीवित मौजूद थे, लेकिन आज इनके अवशेष ही मिलते हैं, जिनके आधार पर ही इनके बारे में हमें जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। इस इकाई में :

(i) हम डायनोसोर्स के बारे में अध्ययन करेंगें जो कभी पृथ्वी पर राज किया करते हैं। ये प्राणि वृहद आकार के थे, जो जल, थलतथा नभ तीनों जगह विद्यमान थे, परन्तु प्राकृतिक कारणों से विलुप्त हो गये।

(ii) आगे इकाई में आर्कियोप्टेरिक्स के बारे में पढ़ेंगे। जिसे सरीसर्प तथा पक्षी के मध्य की योजक कड़ी माना जाता है।

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में आपकों उन जीवों के बारे में (डायनोसोर्स तथा आर्कियोप्टेरिक्स) पढने को मिलेगा, जो कि आज विलुप्त हो चुके है। जैसा कि पिछली इकाई में आपने पढ़ा कि जीवाश्म क्या है तथा उनके आधार पर उद्विकास को किस प्रकार समझा जा सकता है। इसी उद्विकास की प्राक्रया नें कुछ जीव ऐसे भी है जो पूरी तरह से विलुप्त हो गये हालांकि कभी ऐसे जीव पृथ्वी पर प्रभावी रूप से पाये जाते थे। इनके अध्ययन से आपको इनके बारे में जानने व समझने को मिलेगा।

इस इकाई में सर्वप्रथम डायनोसोर्स के बारे मेंबताया गया है, जिसमें आपको इनके इतिहास, प्रकारों तथा आखिर वे कौनसे कारण थे कि इतने बड़े, तथा प्रभावी जीव पृथ्वी से विलुप्त हो गये को जानने का मौका मिलेगा। वही सरीसर्प तथा पक्षियों के मध्य की योजक कड़ी "आर्कियोप्टेरिक्स" के बारे में भी बताया गया है, जिसमें दर्शाया गया है कि इसे योजक कड़ी के रूप में क्यों माना जाता है। सरीसर्प तथा पक्षियों के वे कौनसे लक्षण है, जो इस जीव में पाऐ जाते हैं।

16.2 डायनोसोर (Dinosaurs)

आज से लगभग 20 करोड (200 million) वर्ष पूर्व पृथ्वी पर डायनोसोर्स पाये जाते हैं। इन्हें भयावह छिपकलियाँ (Terrible lizard) के नाम से भी जाता है। इनकी उत्पत्ति मीजोजॉइक महाकल्प (Mesozoic era) में हुई थी तथा लगभग 10 करोड़ (100 million) वर्ष तक इन्होंने पृथ्वी पर राज किया। हालांकि आज ये पूरी तरह से विलुप्त हो चुके है, लेकिन आज भी मगरमच्छ तथा पक्षी इनके वर्तमान जीवित सम्बन्धियों के रूप में मौजूद है।

Friedrich Von Huene के अनुसार डायनोसोर्स की उत्पत्ति कोटाइलोसोरिया Cotylosaur प्राणियों से हुई है, जिसका उद्भव कार्बनी कल्प (Carboniferous period) में हुआ था।

16.2.1 भौतिक परिस्थितियाँ

जब डायनोसोर्स का उद्भव हुआ उस समय जलवायु गर्म तथा नमीयुक्त थी। भूमि पर घने जंगल तथा दलदल मौजूद थे। जिस समय डायनोसोर्स अपनी उपस्थिति बढ़ा रहे थे उसी समय जलवायु अर्द्धशुक प्रकार की थी, जिसके कारण डायनोसोर्स को फलने फूलने में सर्वाधिक सहायता मिली।

16.2.2 स्वभाव तथा आवास (Habit and Habitat)

प्रारम्भ में डायनोसोर्स छोटे आकार के प्राणियों के रूप में उद्भव हुऐ। ये शीतरक्त धारी थे। ये अपनी चारों टांगों पर दौडते थे। इनके अग्रपादों में नरवर पाये जाते थे, जिससे चीरने-फाड़ने में आसानी होती थी। डायनोसोर्स को उनके खाने की आदतों के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है (i) मांसभक्षी (Carnivorus) ये अपने पिछली टांगों पर तेज दौड़ लगाते थे तथा अपनी नरवरयुक्त अग्र पदो को शिकार को पकड़ने , चीरने मे कम लेते थे। (ii) शाकाहारी (Herbivorus) ये अपनी चारों टांगों पर धीर-धीरे चला करते थे।

16.2.3 परिमाण

डायनोसोर्स विभिन्न आकारा / परिमाण में पाऐ जाते थे। यद्यपि जीवाश्मों के आधार पर सबसे छोटा डायनोसोर Compsognathus (2.5 feet) तथा सबसे बड़ा डायनोसोर (Gigantosaurus) (120 feet) था। Gigantosaurus का अनुमानित भार 40 टन आका गया है।

16.2.4 वर्गीकरण

डायनोसोर्स को मुख्यत: दो प्रमुख गणों (order) में बांटा गया है, जिन्हें आगे पुन: उपगणों मे विभेदित करते हुऐ निम्न प्रकार रखा गया है:

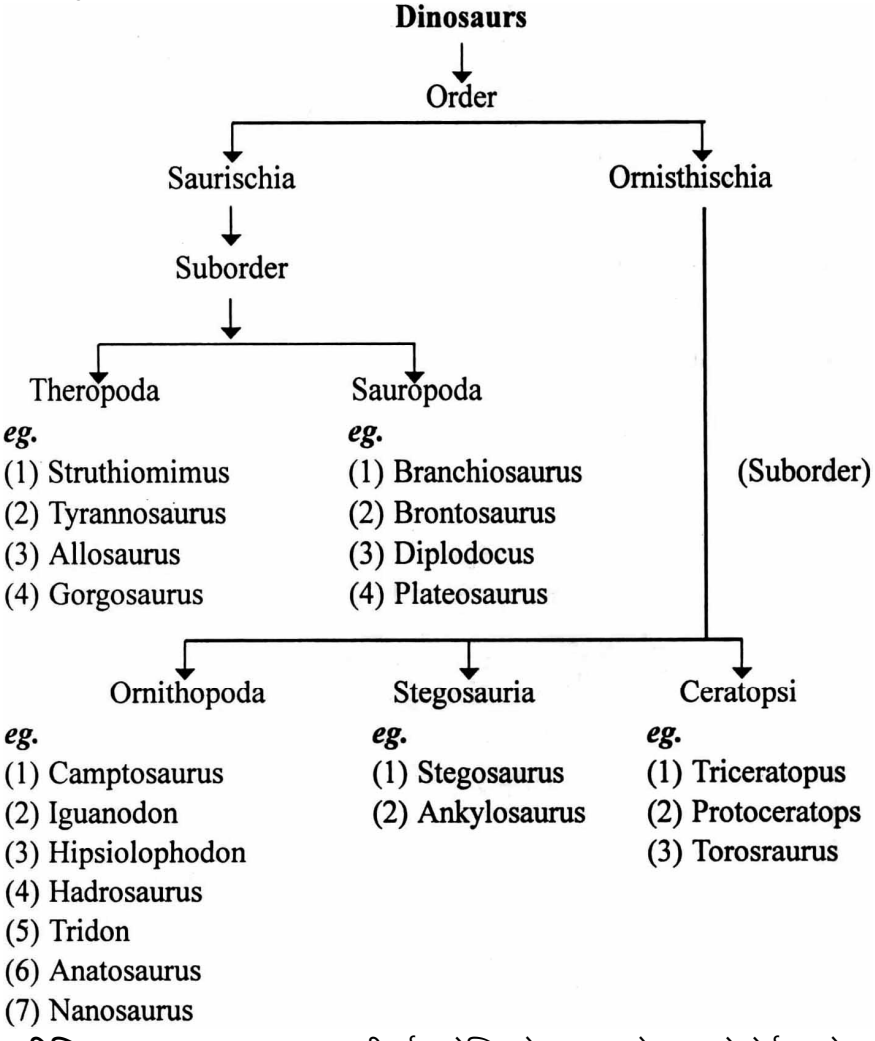

(1) **सारिश्चिया** (Saurischia) : (सरीसृर्प श्रोणि मेखला वाले डायनोसोर्स). ये मुख्यतया मांसाहारी जीव थे, जिनमें द्विपाद गमन पाया जाता था। इसमें त्रिअरिक प्रकार की श्रेणि मेखला पाई जाती थी, जो कि सरीसर्प प्रकार की थी। मांसभक्षी होने के कारण इनके जबड़ों में नुकीले दांत पाऐ जाते थे (चित्र A)।

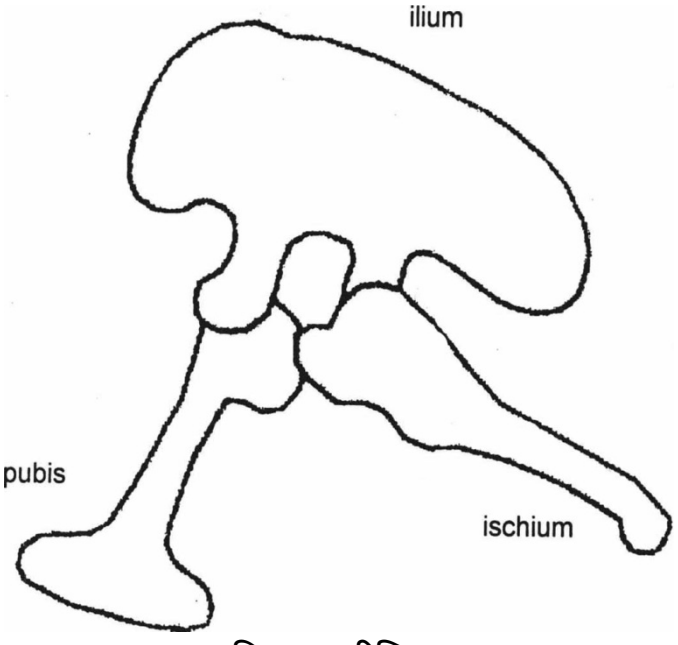

चित्र A: सारिश्चिया

सारिश्चिया (Saurischia) को आगे दो उपगणों में बांटा गया हैं

(i) **थीरोपोडा** (Theropoda) जूरासिक (Jurassic) तथा क्रिटेशियस (Cretaceous) क्लप में पाऐ जाते थे। इनमें ग्रीवा लंबी थी तथा द्विपाद गमन पाया जाता था। उदाहरण- टाइरेनोसॉस (Tyrannosaurus) इसे अब तक का सबसे बड़ा स्थलीय मांसाहारी जीव माना जाता है। इसकी लंबाई 50 feet, ऊँचाई 18-20 feet थी। अनुमानत: ये लगभग 8-10 ton वजन का प्राणि था (चित्र 16.1)।

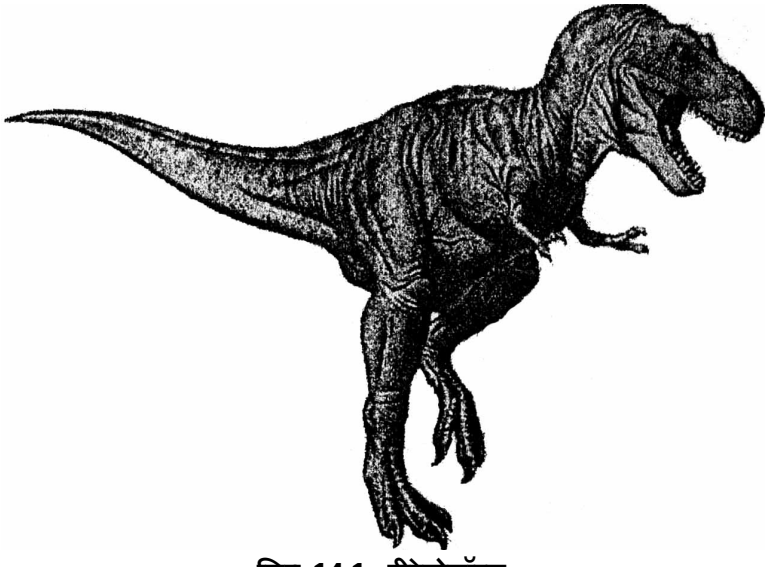

चित्र 14.1: टीरेनोसॉरस

एलोसॉरस (Allosaurus) : यह लंबाई में करीब 35 feet था। इसके मजबूत पश्चपाद दौड़ने के लिए अनुकूल थे, जिस पर तीन नरवरयुक्त अंगुलियां पाई जाती थी। अग्रपाद छोटे थे। इसके जबड़े मगरमच्छ के समान थे, जिस पर तीखे दांत पाऐ जाते थे (चित्र 16. 2)।

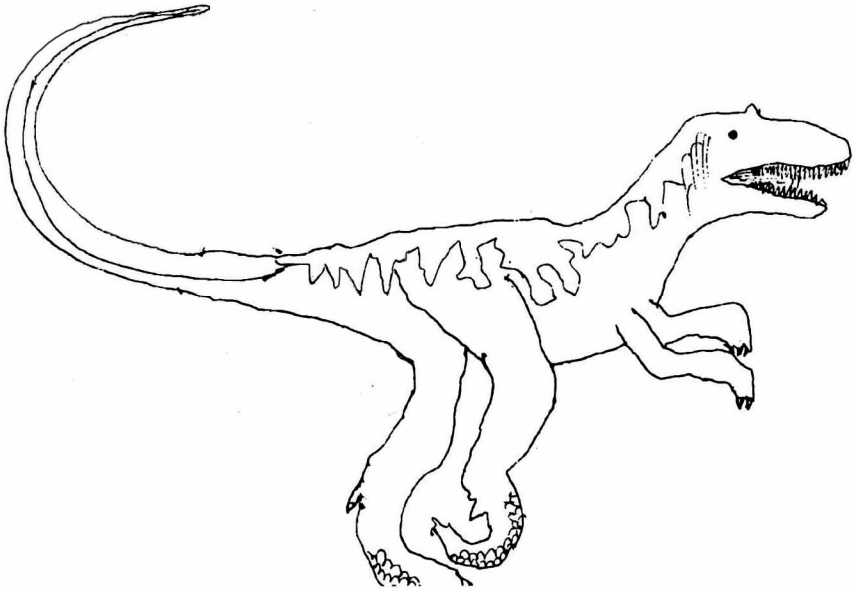

चित्र 16.2 : एलोसॉरस

(ii) **सॉरोपोडा** (Saurapoda). Triassic कल्प के अंत में कुछ डायनोसोर्स पादपों पर निर्भर रहने लगे, जिन्हें आज Saurischia गण के Saurapoda उपगण में रखा जाता है। ये चार पादों पर चलते थे। इनके आकार में बहुत वृद्धि हुई जिनमें लंबी ग्रीवा तथा पुच्छ शरीर का मुख्य भाग थी। उदाहरण- **ब्रेकियोसॉरस (Bra - nchiosaurus)** ये सबसे बड़ा तथा भारी डायनोसोर था। इसका वजन लगभग 50 टन था। ये जमीन पर ज्यादा भ्रमण ना करके अपना अधिकांश समय पानी के अंदर गुजारते थे तथा अपने सिर को श्वास के लिए जल की सतह पर निकाल कर रखते थे (चित्र 16.3)।

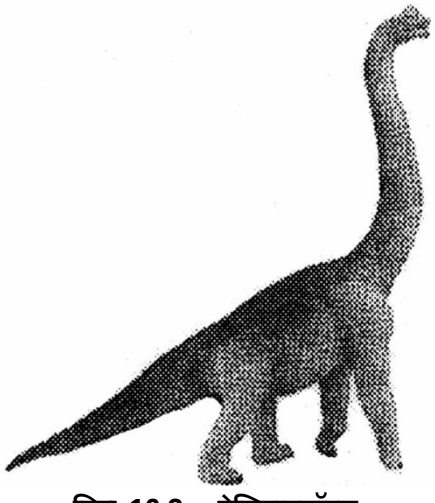

चित्र 16.3 : ब्रेक्याएसॉरस

ब्रोन्टोसॉरस (Brontosaurus) : इसकी लंबाई करीब 70 फीट तथा वजन लगभग 30 टन था। इसकी ग्रीवा तथा पुच्छ अधिक लंबे थे हालांकि इसका सिर काफी छोटा होता था। इसका अधिकांश समय पादपों को चबाने में ही बीतता था। अपनी लंबी पूंछ का उपयोग दुश्मनों को दूर रखने में करता था (चित्र 16. 4)।

डिप्डोडोकस (Dipdodocus) : सभी डाइनोसॉर्स में सबसे लंबा (87. 5 फीट) ये डायनोसोर वजन में हल्का था। इसकी लंबी ग्रीवा पर छोटा सा मुँह स्थित था, जो इसे पानी में आराम करते समय सतह से ऊपर श्वास लेने में मदद करता था (चित्र 16. 5)।

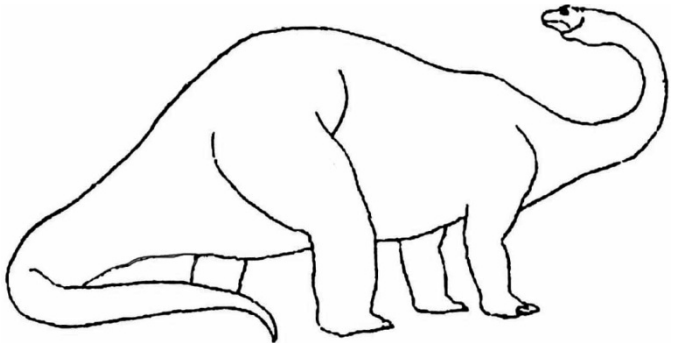

चित्र 16.4 : ब्रोन्टोसोरॉस

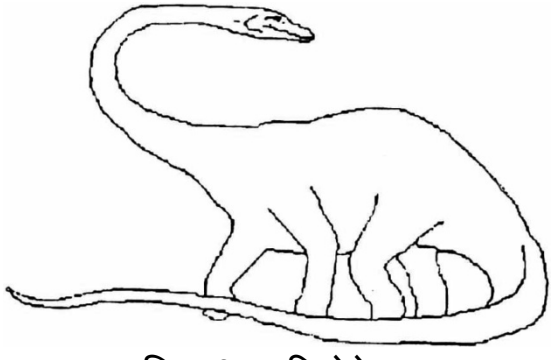

चित्र 16.5 : डिप्डोडोकस

(2) **आर्निथिश्चीया** (Ornithischia) : (पक्षियों के समान श्रोणिमेखला वाले डायनोसोर्स) ये शाकाहारी प्राणि थे, जो अपनी सभी चारों टांगों पर चला करते थे। इस गण के कुछ जीवों में दांत पत्ती के समान पाये जाते थे, जबकि अन्य में दांत विलुप्त हो गये और पक्षियों के समान चोंच की उत्पत्ति हो गई।

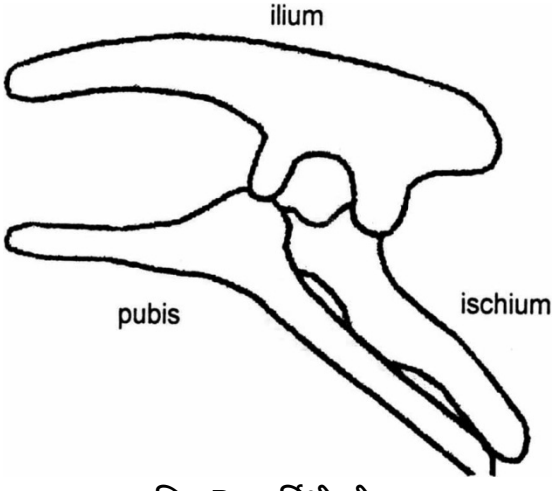

चित्र B: आर्निथीश्चीया

Ornithischia को पुन : तीन उपगणों में बांटा गया है.

(i) **ऑर्निथोपोडा** (Ornithopoda) : इनमें दांत चपटे या चोंच नुमा पाऐ जाते थे, इस कारण इन्हें duck, billed - dinosours भी कहते हैं। उदाहरण - कोंप्टोसोरस (Comptosaurus) : इनके मुंह का अग्रसिरा चोंच नुमा था, जो पौधों को तोड़ ने के काम आता था। इनमें द्विपाद गमन पाया जाता था हालांकि अशन के समय ये चतुष्पादीय गमन उपयोग में लाते थे (चित्र 16.6)।

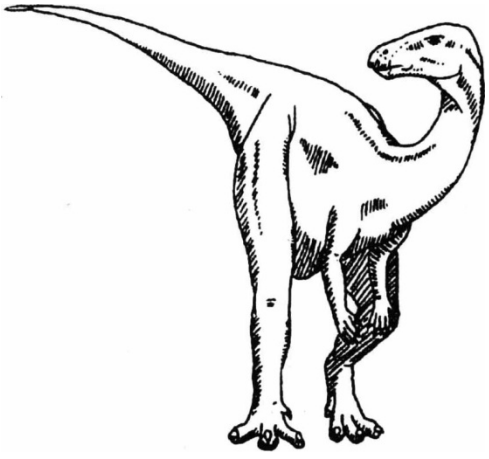

चित्र 16.6: ऑर्निथोपोडा

इगुवानोडॉन (Iguanodon) : यह आकार में बड़ा तथा भारी डायनोसोर था। जो अपनी मजबूत पश्च पादों की सहायता से द्विपाद गमन करता था इसकी ग्रीवातथा पूंछ लंबी तथा मजबूत थी। इसके पादों में चार अंगुलियां पाई जाती थी (चित्र 167)।

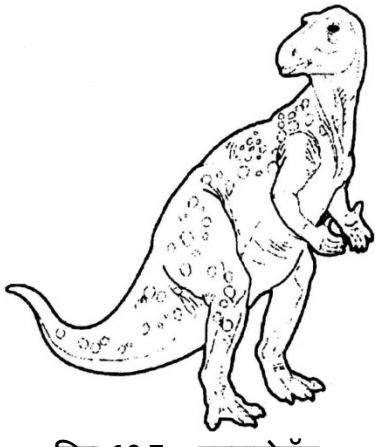

चित्र 16.7 : इगुवानोडॉन

हिप्सिओलोफोडॉन (Hipsiolophodon) : यह आकार में छोटा था तथा अपना अधिकांश समय वृक्षों पर ही गुजारा करता था (चित्र 16.8)।

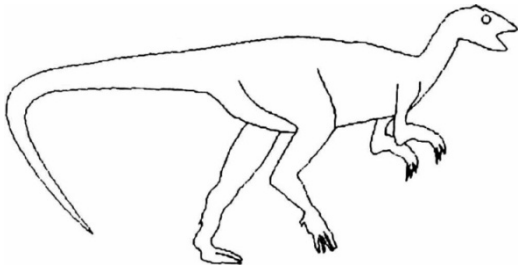

चित्र 16.8: हिप्सिओलोफोडॉन

एनाटोसॉरस (Anatosaurus) : इनकी लबाई लगभग 30 feet थी। पश्च पाद तेज दौड़ने के लिए उपयुक्त थे। अग्र पादों में चार अगुलियाँ पाई जाती थी (चित्र 16.9)।

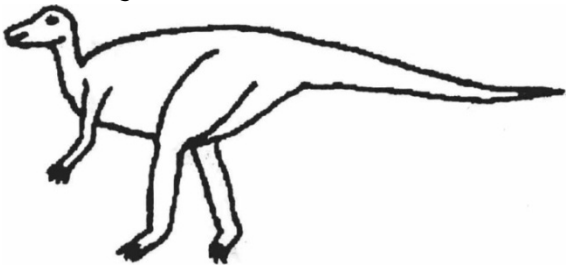

चित्र 16.9 : एनाटोसॉरस

(ii) **स्टीगोसॉरिया** (Stegosauria) : इस उपगण में उपस्थित डायनोसोर्स में चतुष्पादी गमन पाया जाता था। इनके शरीर पर कवच उपस्थित था जो इन्हें सुरक्षा प्रदान करता था। उदाहरण- स्टीगोसॉरस (Stegosaurus) : इसकी पीठ पर दो कतारों में विन्यासित भारी पीट्टकाऐं पाई जाती थी। इसकी पुच्छ में चार तीखें कटक उपस्थित थे। इसके अग्रपाद छोटे थे, हालांकि ये चारों टांगों पर चलता था। अग्रपाद छोटे होने के कारण इसका मुंह धरातल तक आसानी से पहुँच जाता था, जो भोजन प्राप्त करने में सहायक था (चित्र 1610)।

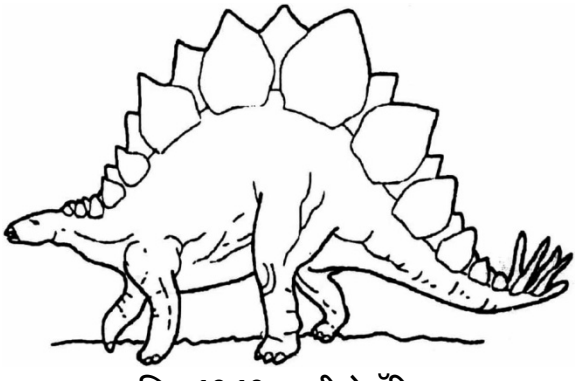

चित्र 16.10 : स्टीगोसॉरिया

एनकाइलोसोरिया (Ankylosauria) : इसकी पीठ कछुऐं के समान भारी अस्थिल पट्टिकाओं द्वारा पकी थी। इसकी देह की सतह से लम्बे-लम्बे कंटक निकले रहते थे, जो इसकी छोटी टांगों को सुरक्षा प्रदान करते थे (चित्र 16.11)।

चित्र 16.11:एनकाइलोसोरिया

(iii) **सिरेटोप्सिया** (Ceratopsia) : इनको श्रंगीय डायनोसोर्स भी कहा जाता है। इनमें भी गमन चतुष्पादीयप्रकार का पाया जाता था। उदाहरण-ट्राइसिरेटोप्स Triceratops : आकार में 30 फीट लम्बा शाकाहारी डायनोसोर था। इसके सिर पर तीन सींग पाऐ जाते थे तथा साथ ही एक अस्थिल आवरण इसके सिर तथा ग्रीवा भाग को सुरक्षा प्रदान करता था (चित्र 16.12)।

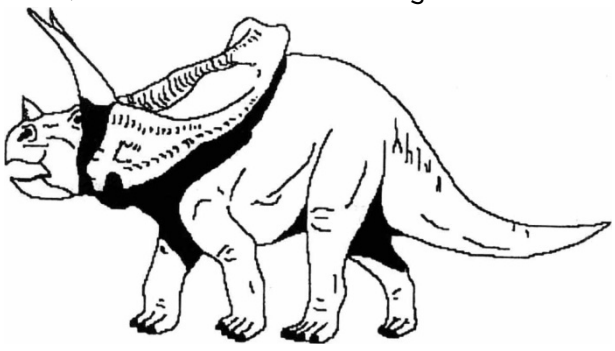

चित्र 16.12 : सीरेटोप्सिया

प्रोटोसिरेटॉप्स (Protoceratops) : इसकी लम्बाई लगभग 5 - 6 feet थी। श्रंगीय मुख वाला यह डायनोसोर शाकाहारी था (चित्र 16.13)।

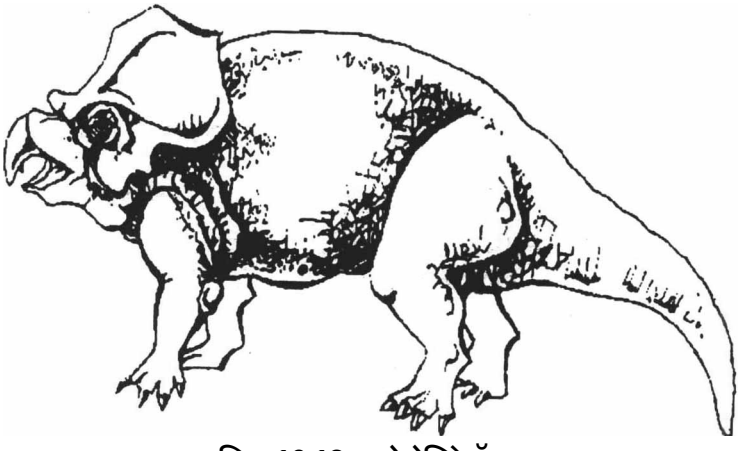

चित्र 16.13 : प्रोटोसिरेटॉप्स

अब तक आपको डायनोसोर्स के बारेमें काफी जानकारियाँ मिल गई होगी। जुरासिक (Jurrasic) काल में पृथ्वी पर इनका वर्चस्व सभी ओर था, परन्तु क्रिटेशियस (Cretaceous) काल के अंत तक ये पूरी तरह से विलुप्त हो गये। इनके विलुप्त होने के पीछे क्या कारण थे स्पष्ट नहीं हैं। फिर भी वैज्ञानिकों ने इनके लिए कई प्रकार के मत दिये।

16.2.5 डायनोसोर्स के विलुप्त होने के कारण

(1) समय के साथ धीरे-धीरे वातावरण में परिवर्तन हो रहा था। वातावरण ठंडा व शुष्क होने लगा जिससे कई जलाशय सूख गये।

(2) बदलते वातावरण में डायनोसोर अपने आप को अनुकूल नहीं बना पाऐ।

(3) भारी भरकम शरीर होने के कारण इन्हें भोजन की अधिक आवश्यकता होती होगी, संभव है भोजन की पर्याप्त आपूर्ति ना होने से भी ये विलुप्त हो गये हो।

(4) डायनोसोर भारी भरकम, सुस्त प्रकृति के तथा कमजोर दिमाग वाले प्राणि थे, जो जीवन संघर्ष में लगातार पिछड़ते गऐ।

(5) अन्तरजातीय या अन्तराजातीय संघर्ष के कारण विलुप्त हो गऐ हो।

बोध प्रश्न - 1

नोट : (i) हर प्रश्न के नीचे छोड़ी हुई जगह का इस्तेमाल अपने उत्तर देने के लिए करें।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाऐ।

(1) डायनोसोर किस काल में पाऐ जाते थे?

.....

.....

(2) सरीसर्प प्रकार की श्रोणि मेखला किस गण के सदस्यों में पाई जाती थी?

.....

.....

(3) Duck billed dinosaur किस गण के सदस्यों को कहा जाता है?

.....

.....

(4) किसी एक श्रंगीय डायनोसोर का उदाहरण दो।

.....

.....

(5) पक्षी प्रकार की श्रोणि मेखला किस गण के सदस्यों में पाई जाती है?

.....

.....

(6) डायनोसोर के विलुप्त होने के कोई दो कारण लिखो।

.....

.....

(7) डायनोसोर्स का वर्गीकरण गण तथा उपगणों तक करते हुए सउदाहरण समझाइये।

.....

.....

अभी तक आपने विलुप्त जीवों डायनोसोर्स के बारे में अध्ययन किया। इकाई के अगले अक में हम "ऑर्कियोप्टेरिक्स" के बारे में पढ़ेगे। ये भी उद्विकास के दौरान विलुप्त हो गया जीव है जो सरीसर्प तथा पक्षियों के मध्य की योजक कड़ी के रूप में माना जाता हैं।

16.3 आर्कियोप्टेरिकस (Archeopteryx)

ऐसा माना जाता कि पक्षियों का उद्भव सरीसर्प प्राणियों से हुआ है। उद्विकास की इसी कड़ी में आर्कियोप्टेरिक्स वह प्राणि है जो सरीसर्प एव पक्षी के मध्य की योजक कड़ी है जिसके अध्ययन

के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सरीसृप, पक्षियों के पूर्वज थे। पक्षियों का सर्वाधिक पुराना जीवाश्म **आर्कियोप्टेरिक्स लिथोग्राफिका** है जो 1860 में जर्मनी में मिला था।

चित्र 16.14: आर्कियोप्टेरिक्स जीवाश्म-बर्लिन

चित्र 16.15 आर्कियोप्टेरिक्स: एक प्रतिरूप

16.3.1 सामान्य लक्षण

(i) इस विलुप्त प्राणि का आकार कौए के बराबर था।

(ii) इसके शरीर की आकृति छिपकली के समान थी तथा साथ ही शरीर के ऊपर पर उपस्थित थे।

(iii) इसका मुख चोंच के रूप में उपस्थित था, जिसमें दांत पाऐ जाते थे।

(iv) इनमें कपाल बड़ा था तथा कपालीय अस्थियाँ पक्षियों की तरह समेकित थी।

(v) अंसमेखला में कोराकाइड तथा स्केपुला अस्थियाँ उपस्थित थी। श्रोणि मेखला इलियम, इश्चियम तथा प्युबिस तीन स्वतंत्र अस्थियों द्वारा बनी थी।

(vi) पश्चपाद में टिबिया-फिबुला अस्थियाँ उपस्थित थी तथा साथ ही चार नरवर युक्त अंगुलियाँ भी पाई जाती थी।

(vii) इसका कशेराक दण्ड 10 ग्रीवा कशेरुकाओं, 12 वक्षीय कशेरुकाओं तथा लम्बर कशेरुकाओं, 6 सैक्रल कशेरुकाओं एवं 20 पुच्छीय कशेरुकाओं में बंटा होता था।

(viii) कशेरूकायें उभयगर्ती प्रकार की पाई जाती थी।

(ix) इसमें छिपकली के समान एक लंबी पूंछ पाई जाती थी, जिसमें 20 स्वतंत्र मुक्त कशेरुक उपस्थित थे।

(x) इसकी पूंछ के दोनों ओर पूँछ पिच्छ (Caudal feather) पाऐ जाते थे।

16.3.2 सरीसर्प समान लक्षण

(i) शरीर की आकृति छिपकली के समान थी।

(ii) शरीर शल्कों से ढका था।

(iii) मुँह में दांत उपस्थित थे, जो समदन्ती तथा गर्तदन्ती प्रकार के थे।

(iv) इनमें लंबी पूँछ पाई जाती थी। पाइगोस्टाइल अनुपस्थित था।

(v) अस्थियाँ ठोस होती थी, जिनमें वायु स्थान अनुपस्थित थे।

(vi) उभयगर्ती प्रकार की अस्थियाँ पाई जाती थी।

(vii) इनमें एक शीर्ष युक्त वक्षीय पसलिया पाई जाती थी, जिन में अंकुशी प्रवर्ध नहीं पाया जाता था।

(viii) अग्रपादों में नरवरयुक्त तीन अंगुलियाँ पाई जाती थी।

(ix) ग्रीवा तथा उदरीय पसलियाँ स्वतंत्र प्रकार की होती थी।

16.3.3 पक्षी समान लक्षण

(i) शरीर पर बाह्यकंकाल के रूप में पर पाऐ जाते थे।

(ii) उड्डयन हेतु अग्रपादों का रूपान्तरण पंखों में हो गया था।

(iii) अग्रपाद पंखों में रेमिजेज (Remiges) तथा पूंछ में रेक्ट्रिसेस (Rectrces) प्रकार के पर उपस्थित होते थे।

(iv) जबडे चोंच रूपी थे।

(v) कपाल mono - condylic प्रकार का था।

(vi) इनमें नेत्र कोटर बड़े थे, जिनमें अस्थि-वलय पाया जाता था।

(vii) मेरवलाऐं पक्षियाँ के समान थी।

(viii) पश्चपाद में टिबिया तथा फिबुला स्वतंत्र थी एव टार्सोमेटाटार्सस पाई जाती थी।

उपरोक्त वर्णित लक्षणों के आधार पर अब आपको भी पता चल गया होगा कि आर्कियोप्टेरिक्स को सरीसर्प तथा पक्षियों के मध्य की योजक कड़ी क्यों कहा जाता है, तथा साथ ही ये भी प्रमाणित होता है कि पक्षियों का उद्भव सरीसर्पो से ही हुआ है।

बोध प्रश्न - 2

नोट : (i) हर प्रश्न के नीचे छोड़ी हुई जगह का इस्तेमाल अपने उत्तर देने के लिए करें।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाऐ।

(1) किस जीवाश्म को सरीसर्प तथा पक्षी के मध्य की योजक कड़ी के रूप में माना जाता हैं

.....

.....

(2) सर्वप्रथम आर्कियोप्टेरिक्स का जीवाश्म कहाँ पाया गया।

.....

.....

(3) आर्कियोप्टेरिस की पूंछ में कितनी कशेराकाऐं पाई जाती थे।

.....

.....

(4) अर्कियोप्टेरिक्स में किस प्रकार के कशेरुक पाऐ जाते थी।

.....

.....

(5) आर्कियोप्टेरिक्स के कोई तीन पक्षी समान लक्षण दो।

.....

.....

(6) आर्कियोप्टेरिक्स के कोई तीन सरीसर्प समान लक्षण लिखों

.....

.....

16.4 सारांश (Summary)

इस इकाई में आपने उद्‌वविकास के दौरान विलुप्त हो चुके जीवों के बारे में पढ़ा। और लोगों को विदित है कि जरुरी नहीं उद्‌वविकास के दौरान सभी जीव जीवित रहे। पर्यावरण से निरन्तर होती हमारी प्रतिस्पर्धा में वे जीव जो अपने आप को अनुकूल नहीं बना पाते है, वे मृत्यु को पाते है। लेकिन इनके जीवाश्मों के आधार पर प्राप्त हुऐ निष्कर्षों से प्राणियों के उद्‌विकास को भलीभांति समझ सकते हैं।

16.6 शब्दावली (Glossary)

योजक कड़ी (Connecting Link) : दो भागों को मिलाने वाली

द्‌विपाद गमन (Bipedal locomotion) : दो पैरों पर चलनेवाले

चतुष्पाद गमन (Ouadrupedal) : चार पैरों पर चलनेवाले

कंटक (Spines) : कांटे

16.6 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. Evolution of the vertebrates Colbert , E.H John Wiley and Sons Inc. New York.
2. The life of Vertebrates J.Z Young , Oxford at the Clarendon Press London.

16.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to Self Assessment Questions)

बोध प्रश्न - 1

(1) ट्राइऐसिक से क्रिटेसियस काल तक
(2) सरिश्चिया
(3) ऑर्निथोपोडा
(4) ट्राईसिरेटोप्स
(5) आर्निथीश्चीया
(6) पाठ पढ़िये और उत्तर दीजिऐ
(7) पाठ पढ़िये और उत्तर दीजिऐ

बोध प्रश्न 2

(1) आर्कियोप्टेरिक्स
(2) जर्मनी मे
(3) 20 पुच्छिय कशेरुकायें
(4) ऊभयगर्ती
(5) पाठ पढ़िये और उत्तर दीजिये
(6) पाठ पढ़िये और उत्तर दीजिये

16.8 अभ्यास प्रश्न (Exercise Readings)

1. डायनोसोर के उद्विकास पर निबन्ध लिखिये।
2. डायनोसोर के विलुप्ति के प्रमुख कारण बताइये।
3. आर्कियोप्टोरिक्स में पाये जाने वाले रेप्टीलियव सविनय लक्षणों को लिखिये।